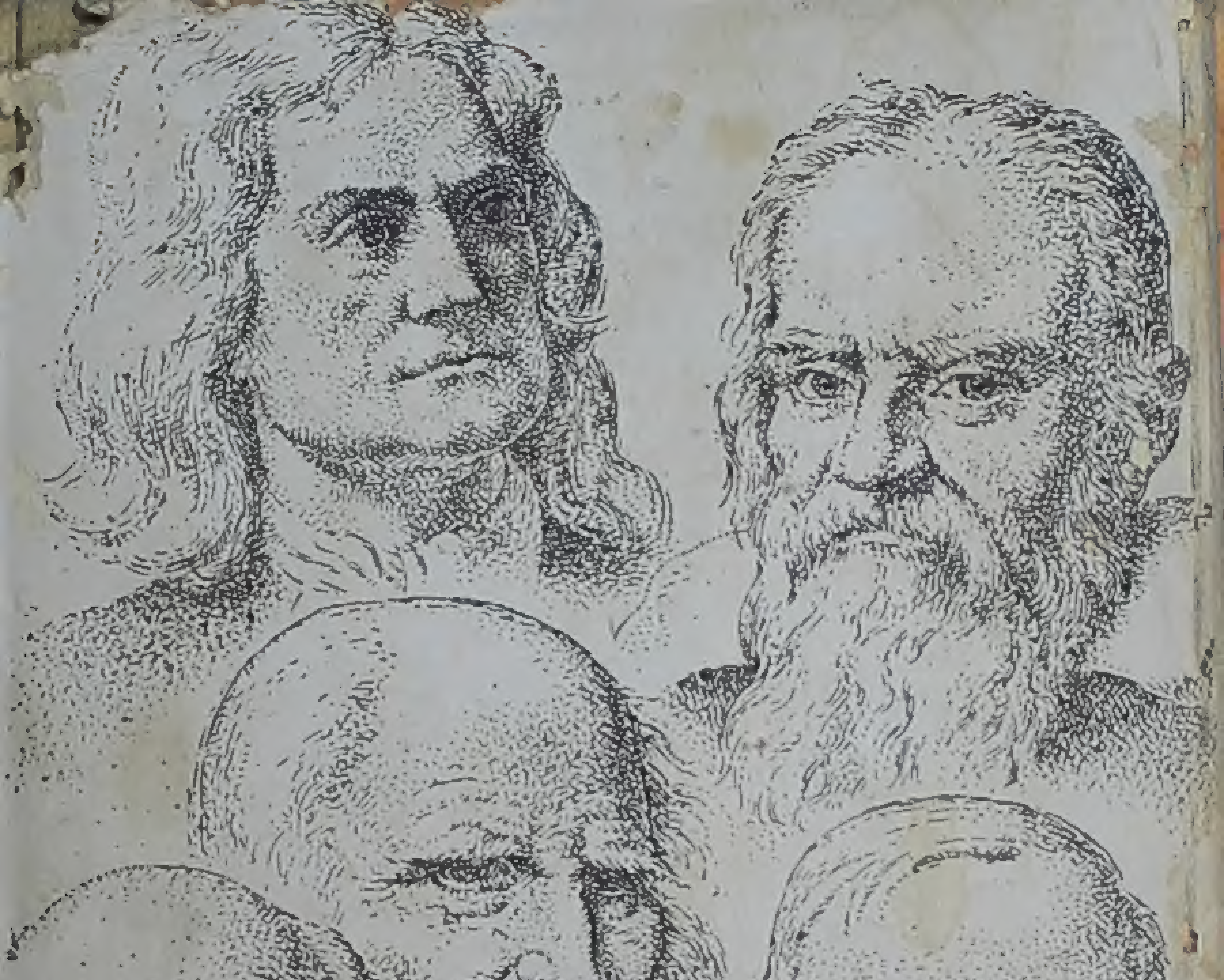


विज्ञान का संक्षिप्त इतिहास

विज्ञान का
संक्षिप्त इतिहास

मूल लेखक
सर डब्ल्यू० सी० डैम्पियर
एस-सी० डी०, एफ० आर० एस०

अनुवादक
प्रो० कृष्णानन्द द्विवेदी एम० एस-सी०

यु ग प्र का श न
१ फ़ैज़ बाज़ार, दिल्ली

प्रकाशक—ब्रह्मवीर गुप्त, बी० ए०
युग प्रकाशन
१, फैज बाजार, दिल्ली

मूल्य ६।)
१९५१ ई०

मुद्रक—गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस, दिल्ली

मूल पुस्तक के लेखक की भूमिका

जिस शीघ्रता से मेरी बड़ी पुस्तक—विज्ञान का इतिहास और दर्शन तथा धर्म से उसका सम्बन्ध—के तीन संस्करणों की मांग हुई है उससे पता चलता है कि इस पुस्तक में वर्णित विषयों में बहुत से लोगों की दिलचस्पी है। परन्तु बहुतों को इसका दर्शन वाला अंश क्लिष्ट प्रतीत हुआ है और उन्होंने विज्ञान के विकास की सरलतम और सीधी कहानी की मांग की है।

अन्य विषयों से विज्ञान के सम्बन्ध की पूर्णरूप से उपेक्षा असम्भव है। परन्तु यदि हम चाहें तो उन विषयों के केवल प्रत्यक्ष प्रभावों का उल्लेख कर वर्णन को सीमित बना सकते हैं। पदार्थ की रचना के सम्बन्ध में कल्पना करने के अतिरिक्त यूनानी परमाणुवादियों ने उसकी सहायता से जीवन के एक यांत्रिक सिद्धान्त को भी विकसित किया। इसके विपरीत प्लैटो के दर्शन ने अरस्तू द्वारा संशोधित होने पर भी, सहज धारणाओं एवं तर्कमूलक निष्कर्षों पर इतना जोर दिया कि अनुभवमूलक प्रायोगिक विज्ञान के प्रादुर्भाव के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि तैयार हो सकी। न्यूटन और उसके नवीनतम अनुयायियों के लिए अनन्त आकाश ईश्वर की महानता का प्रमाण था, परन्तु न्यूटन के कार्य ने वाल्टेयर तथा अठारहवीं शताब्दी के अन्य अविश्वासियों पर दूसरा ही प्रभाव डाला। प्राकृतिक-वरण के नवीन आधार पर प्राचीन विकासवाद के डार्विन द्वारा प्रतिपादित रूप ने मानव जाति के विकास के एक अन्य सम्भव

प्रकार की ओर ही संकेत नहीं किया बल्कि जीव-शास्त्र की सीमा के बाहर बहुत दूर तक विकासवादी धारणा का प्रसार किया। पूर्वकाल में स्थापित सामञ्जस्य ने जिस दार्शनिक निर्धारणवाद की सम्भावना की ओर संकेत किया था, भौतिक विज्ञान में हुई नवीन क्रांति ने उसके प्रमाणों को निस्तेज कर दिया। ऐसे व्यापक प्रभावों का उल्लेख अनिवार्य है। हाँ, दर्शन के अधिक विवरणपूर्ण पहलुओं की उपेक्षा की जा सकती है।

दो उद्देश्यों से प्रेरित होकर मैंने विज्ञान का यह संक्षिप्त इतिहास लिखा है—प्रथम उद्देश्य, सामान्य पाठक की सहायता करना है जो यह जानना चाहता है कि विज्ञान जिसने उसके जीवन को इतना अधिक प्रभावित कर रखा है अपने वर्तमान महत्वपूर्ण स्थान को कैसे प्राप्त कर सका है; दूसरा उद्देश्य है विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति। जहाँ ऊँची कक्षा के उन विद्यार्थियों को जिनके मुख्य पाठ्य विषय वैज्ञानिक हैं, अपने विषयों को मानव दृष्टिकोण से देखना चाहिये और अन्य विषयों के प्रकाश में उनका स्थान निश्चित करना चाहिये, वहाँ साहित्य के विद्यार्थियों के लिए भी, इसके पहले कि वे सम्यक् रूप से शिक्षित कहे जा सकें, विज्ञान का कुछ ज्ञान आवश्यक है। मेरा विश्वास है कि दोनों वर्गों के लिए, यदि वे एक दूसरे को भली-भांति समझना चाहते हैं, विज्ञान का इतिहास सबसे उत्तम मार्ग है। यह इतिहास उस रहस्यमय विश्व को समझने के लिये मानव द्वारा किये गए प्रयत्नों की कहानी है जिसमें वह अपने को पाता है। यही नहीं, कुछ दिनों से यह विचार बल पा रहा है कि अध्ययन के आरम्भिक दिनों में ही किसी क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त करने का प्रयास हानिप्रद हो सकता है। इस विचार के लोग उन अनुसंधानकर्ताओं को भी सम-तुलित शिक्षा

देने के पक्ष में हैं जो किसी विशेष अध्ययन में संलग्न हैं। मुझे आशा है यह छोटी पुस्तक उन अध्यापकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी जो मेरे विचारों से सहमत हैं और बहुत से पाठकों को बड़ी पुस्तक के अध्ययन के लिए प्रेरित करेगी।

डब्ल्यू० सी० डी०

निवेदन

लगभग तीन वर्ष पूर्व डा० कोठारी ने सर डैम्पियर की 'ए शार्टर हिस्ट्री आव साइन्स' का हिन्दी में अनुवाद करने के लिए मुझे प्रेरित किया था। मुझे पुस्तक बहुत पसंद आई और मैंने अनुभव किया कि हिन्दी भाषा-भाषी विद्यार्थियों और पाठकों के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। इसलिये मैंने पुस्तक का अनुवाद कर डाला।

अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के हिन्दी पर्यायों के लिए मैंने मुख्यतः काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली से सहायता ली है। जब तक ऐसे शब्दों की कोई सर्वस्वीकृत एवं प्रामाणिक तालिका अस्तित्व में नहीं आती तब तक इस सम्बन्ध में अनिश्चितता तथा अनियमितता का होना स्वाभाविक है। ऐसी तालिका जितनी शीघ्र बन जाय उतना ही अच्छा है। इससे हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का सृजन सुगम और सरल हो जायगा।

पुस्तक के प्रकाशन का सारा श्रेय श्री इन्द्रनारायण गुर्टू को है। इसके लिए उन्हें जितना भी धन्यवाद दूँ थोड़ा है। अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी डा० कोठारी ने विषय-प्रवेश लिखने की कृपा की है इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। भूमिका लिखने के लिए मैं डा० मजूमदार का अत्यंत कृतज्ञ हूँ।

कृष्णानन्द द्विवेदी

विषय-प्रवेश

हिन्दी-राष्ट्रभाषा स्वीकार कर ली गई है। इसलिये सब विषयों पर और विशेषकर विज्ञान पर शीघ्रातिशीघ्र प्रामाणिक पुस्तकें लिखी जानी चाहियें। मौलिक पुस्तकों की रचना में विलम्ब होना स्वाभाविक है। इस बीच अन्य भाषाओं की उत्कृष्ट पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद होना अत्यावश्यक है।

श्री द्विवेदी ने सर डैम्पियर की प्रसिद्ध पुस्तक 'ए शॉर्टर हिस्ट्री ऑव साइन्स' का हिन्दी में अनुवाद कर हिन्दी साहित्य की अमूल्य सेवा की है। उन्होंने अपने कार्य को उत्तरदायित्व के साथ निभाया है। अनुवाद में मूल पुस्तक की आत्मा की रक्षा ही नहीं की गई है; बल्कि भाषा-सौष्ठव एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से उसकी तुलना मूल पुस्तक से की जा सकती है।

विज्ञान के छात्रों के लिये ही नहीं अपितु प्रत्येक विद्यानुरागी के लिये यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। जो लोग वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी ही लिखना चाहते हैं वे इससे लाभ उठा सकेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी-जगत् में इस पुस्तक का उचित स्वागत और आदर होगा।

२४ जनवरी, ५१

डॉक्टर आर० सी० मजूमदार

डीन, फैकल्टी ऑव साइन्स, देहली यूनिवर्सिटी

विषय-सूची

पुस्तक में प्रयुक्त कुछ अँगरेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय

Aberation अपेरण
Absolute परम
Absorb शोषण करना
Acceleration वेग वृद्धि
Alternately एकान्तर क्रम से
Alternating current प्रत्यावर्तक धारा
Amplitude दोलन विस्तार
Asymmetry असममिति
Atom परमाणु
Acid अम्ल
Action क्रिया
Affinity, Chemical रासायनिक प्रीति
Alchemy कीमिया
Alkali क्षार
Apparatus उपकरण
Balanced सम-तुलित
Band धारी
Centrifuge केन्द्रापसारक
Characteristic लक्षक
Charge आवेश
Catalytic agent प्रवर्तक
Chain शृंखला
Coefficient गुणक
Coil वेष्ठन
Compound यौगिक पदार्थ
Continuity अविरतता
Critical चरम
Crystal मणिभ
Curvature वक्रता
Cylinder बेलन
Crust पपड़ी
Degree of freedom स्वातंत्र्य संख्या
Dielectric constant वैद्युतांगण अंक
Dimension घात
Dissociate विघटित होना
Dissipation क्षय
Dynamics गति विज्ञान
Elasticity स्थिति स्थापकता
Electricity विद्युत्
Electrolysis विद्युत् विच्छेदन
Electrode विद्युत् द्वार
Energy शक्ति

Equivalent weight संयोजन भार
Equilibrium साम्य
Essence सार
Flame ज्वाला
Fluorescent प्रतिदीप्त
Force बल
Formula सूत्र
Ferment खमीर उठना
Freezing point हिमांक
Gravitation गुरुत्वाकर्षण
Hydrostatics द्रव-स्थिति-विज्ञान
Hypothesis अनुमान
Inclined plane आनत धरातल
Inorganic अकार्बनिक
Isomerism तुल्यावयवता
Induction उपपादन
Inertia जड़त्व
Interference व्यतिकरण
Inversely Proportional उत्क्रमानुपाती
Isotope समस्थानीय
Kation ऋण आयन
Kinetic गत्यात्मक
Latent गुप्त
Lever उत्तोलक
Luminiferous तेजोवाही
Mass पदार्थ मात्रा
Mean मध्यमान
Mechanics यंत्र विज्ञान
Membrane झिल्ली
Microscope सूक्ष्म दर्शक
Milky way आकाश गंगा
Molecule अणु
Momentum आवेग
Muscle पेशी
Nascent नवजात
Nucleus केन्द्रक
Organic कार्बनिक
Optics प्रकाश विज्ञान
Orbit कक्ष
Oxidation आक्सीकरण
Oscillation दोलन
Osmotic Pressure अभिसारक दबाव
Parabola परवलय
pendulum दोलक
Phase कला
Phenomenon घटना
Phosphorescent स्फुरक
Pigment वर्णक
Plane समतल
Plumbline साहुल सूत्र

Polarisation ध्रुवन
Potential विभव
Power सामर्थ्य
Prism समपार्श्व
Radiation विकीरण
Radio active रेडियो धर्मी
Radical मूलक
Reflection परावर्त्तन
Refraction वर्त्तन
Ring कुण्डली
Relative आपेक्षिक
Relativity अपेक्षावाद
Repel प्रतिसारित करना
Resistance प्रतिरोध
Retina कृष्ण पटल
Reversible उत्क्रमणीय
Rigidity दृढ़ता
Satellite उपग्रह
Sediment तलछट
Series माला
Specific heat आपेक्षिक ताप
Spectrum वर्णपट
Surface पृष्ठ
System पद्धति
Table सारिणी
Temperature तापक्रम
Transformer परिणामक
Transverse wave अनुप्रस्थ तरंग
Ultra Microscope अति सूक्ष्म दर्शक
Ultra Violet नील लोहितोत्तर
Uniform समरूप
Vacuum शून्य
Velocity वेग
Venus शुक्र
Vertical ऊर्ध्वतन
Vertex शीर्ष
Vibration कम्पन
Volume आयतन
Vortex भंवर
Wave length तरंग दैर्घ्य

भूमिका लेखक

डाक्टर डी० एस० कोठारी
ऑनरेरी प्रोफ़ेसर ऑव फिजिक्स, देहली यूनिवर्सिटी,
साइन्टिफिक ऐडवाइज़र, मिनिस्ट्री ऑव डिफेन्स

सर डैम्पियर की सुविख्यात पुस्तक 'ए शॉर्टर हिस्ट्री ऑव साइँस' का हिन्दी में सुन्दर अनुवाद करके श्री द्विवेदी ने भारत में विज्ञान-प्रसार कार्य को आगे बढ़ाया है और हिन्दी साहित्य की ठोस सेवा की है। इन पृष्ठों में कही गई कहानी जो इस हिन्दी अनुवाद में बहुत से पाठकों को पहले-पहल उपलब्ध हो रही है जितनी रोचक है उतनी ही महत्त्वपूर्ण भी है। जैसा विज्ञान के श्रेष्ठ इतिहासकार सार्टन ने कहा है 'विज्ञान का इतिहास ही एक ऐसा इतिहास है जो मानव जाति की प्रगति को चित्रित कर सकता है। सच तो यह है, विज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी क्षेत्र में प्रगति का निश्चित एवं सर्व-स्वीकृत अर्थ ही नहीं है।'

इस पुस्तक में निरीक्षण और प्रयोगमूलक वैज्ञानिक प्रणाली के उद्भव, विकास एवं उत्कर्ष का वर्णन बहुत संक्षेप में परन्तु आकर्षक स्पष्टता के साथ किया गया है। मानव जाति के इतिहास में वैज्ञानिक प्रणाली एक नई परन्तु शक्तिशाली वस्तु है। दो सौ वर्षों से कम समय में ही इसने हमारे भौतिक वातावरण को पूर्णतया परिवर्तित कर दिया है तथा संसार और उसकी समस्याओं के प्रति हमारे दृष्टिकोण को भी कम प्रभावित नहीं किया है।

विज्ञान के अनुशीलन के लिये साहस, श्रद्धा, नम्रता, अनुशासन, आत्मालोचन एवं यथार्थ-प्रियता की आवश्यकता होती है। सत्यान्वेषण के लिये पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। परन्तु जिस आलोचनात्मक एवं निःस्पृह अन्वेषण-परम्परा को हमने आधुनिक विज्ञान का सामान्य अंग मान लिया है उसे अपने लिये यह स्थान प्राप्त करने में तीन सौ वर्ष लगे हैं। यह वैज्ञानिक परम्परा जिसका विज्ञान की प्रगति के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है और जो उसके लिये अत्यन्त आवश्यक है, बाहर से थोपी नहीं जा सकती। प्रत्येक ऐसे देश में जो विज्ञान का प्रचार और उसकी

सहायता से अपनी भौतिक और सांस्कृतिक उन्नति चाहता है, इस परम्परा का स्वाभाविक और स्वतन्त्र विकास होना चाहिये। इस प्रसंग में पालियानी के विचार उल्लेखनीय हैं। वे कहते हैं 'वे लोग जो उन देशों में गये हैं जहाँ वैज्ञानिक जीवन का आरम्भ हो रहा है उस संघर्ष से परिचित हैं जिसका सामना वैज्ञानिक परम्परा के अभाव के कारण आरम्भिक कार्यकर्ताओं को करना पड़ता है। कहीं प्रोत्साहन के अभाव में अन्वेषण-कार्य रुका रहता है तो कहीं उचित मार्ग-प्रदर्शन न होने से वह उच्छृङ्खल हो जाता है। खोखली ख्याति जो साधारण सफलताओं या कोरी आत्मश्लाघा पर आधारित होती है, छत्रक की भांति फैलती है। नियुक्तियों और अनुसंधान के लिये आर्थिक सहायता देने में राजनीतिज्ञ और उद्योगपति हद दर्जे की धांधली करते हैं। स्थानीय प्रतिभा का भाण्डार कितना भी विशाल हो ऐसे वातावरण में वह अच्छी तरह फल-फूल नहीं सकती।'

(साइन्टिफिक मन्थली (यू० एस० ए०), वाल्यूम ६०, १९४५)

यहाँ विज्ञान के विषय में प्रचलित इस निर्मूल धारणा का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि आज का विज्ञान कल के विज्ञान का खण्डन करता है और आने वाले कल का विज्ञान आज के विज्ञान का खण्डन करेगा। यह धारणा नितान्त भ्रम-पूर्ण और भद्दी है। विज्ञान—यथार्थ विज्ञान—सदा बढ़ने वाला और निरन्तर प्रगति करने वाला एक जीवित ढाँचा है। यह सत्य है कि नये ज्ञान के प्रकाश में पूर्व धारणाओं और सिद्धान्तों में परिवर्तन करना आवश्यक होता है। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण और मैक्स्वेल का चल सिद्धान्त इसके उदाहरण हैं। परन्तु स्मरण रहे, यह परिवर्तन ढाँचे को अधिक दृढ़ और सुन्दर बना देता है। कल के सिद्धान्त आज के सिद्धान्तों के जनक हैं। विज्ञान एक

ऐसी धारा के समान है जो जैसे-जैसे अग्रसर होती है वैसे-वैसे अधिक वेगमय और विस्तृत होती जाती है।

हमारे लिये यह समझना अत्यन्त आवश्यक है कि किन परिस्थितियों में विज्ञान की प्रगति हुई है और कैसे वातावरण में अबाध एवं फलप्रद वैज्ञानिक कार्य सम्भव है। विज्ञान के इतिहास का अध्ययन करने से यह समझना हमारे लिये सुगम हो जाता है। इसलिये उन लोगों के लिये जो विज्ञान में रुचि रखते हैं और उनके लिये भी जिनकी रुचि अभी तक उसमें नहीं है, प्रस्तुत पुस्तक निश्चय ही बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

डी० एस० कोठारी

दिल्ली
२० जनवरी, ५१



प्लेट 1

आइज़क न्यूटन

विज्ञान का संक्षिप्त इतिहास

पहला अध्याय

विज्ञान का आरम्भ

इतिहास से पूर्व—विज्ञान क्या है ? विज्ञान का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द, साइंस, लैटिन के सायर शब्द से बना है जिसका अर्थ है, जानना, सीखना। इस प्रकार सम्पूर्ण ज्ञान का समावेश इसके अन्तर्गत होना चाहिये। परन्तु परम्परा के अनुसार, यह शब्द केवल एक सीमित अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। प्रकृति के सम्बन्ध में नियमित ज्ञान ही, विज्ञान के अन्तर्गत आता है। भाषा, अर्थ शास्त्र, राजनीतिक इतिहास आदि का समावेश इसमें नहीं किया जाता।

दो भिन्न उद्‌गम स्थानों से निकल कर, विज्ञान की दो धारायें आरम्भ ही से प्रवाहित होती रही हैं। प्रथम धारा हथियारों और औजारों के क्रमिक-विकास और निर्माण से सम्बन्ध रखती है, जिनके द्वारा मनुष्य अपने जीवन निर्वाह की सामग्री, सरलतापूर्वक और सुरक्षित रूप में प्राप्त करने में समर्थ होता है। दूसरी धारा उन विश्वासों से सम्बन्ध रखती है जिनके द्वारा मनुष्य आश्चर्यमय ब्रह्माण्ड के रहस्यों को समझने का प्रयत्न करता है। हथियारों और औजारों की निर्माण-कला इतनी जटिल होती है कि आरम्भ में किसी सिद्धान्त द्वारा उसकी समस्याओं को सुलझाना सम्भव नहीं है। यह कला केवल आगे चलकर उपयोगी विज्ञान का रूप ग्रहण करने में समर्थ होती है। इसलिये इस कला को विज्ञान न कह कर हस्तकौशल कहना अधिक उपयुक्त होगा। दूसरी धारा जो आरम्भ में केवल विश्वासों से सम्बन्धित थी, ऐतिहासिक काल में ज्ञान और सत्य के विशुद्ध अन्वेषण की द्योतक हो गई। इसी धारा के पथ का अनुसरण, इस पुस्तक का मुख्य विषय है।

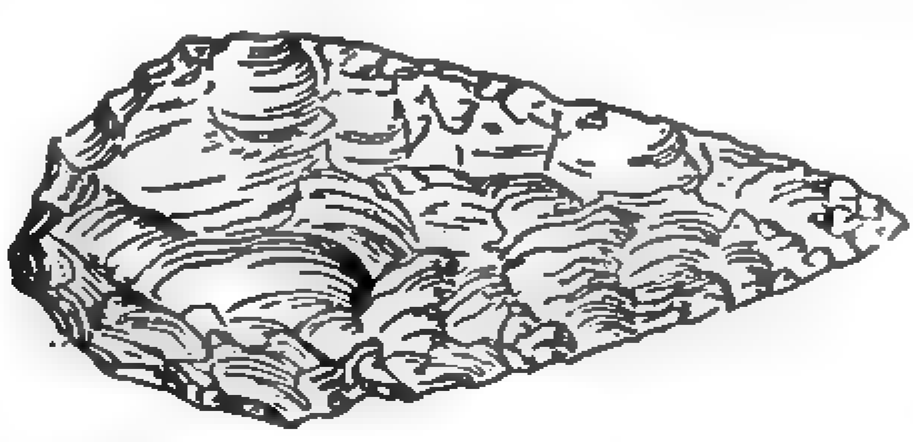
यदि हम यह जानना चाहते हैं कि विज्ञान का आरम्भ कब और किन अवस्थाओं में हुआ तो यह आवश्यक है कि हम भू-गर्भ विद्या विशारदों तथा मानव-शास्त्रवेत्ताओं द्वारा, प्रारम्भिक मनुष्य के सम्बन्ध में मालूम किये गये तथ्यों पर विचार करें । उपर्युक्त दो प्रकार के विज्ञान-वेत्ता क्रम से पृथ्वी को रचना और उसके इतिहास का, तथा मनुष्य के सामाजिक और भौतिक गुणों का अध्ययन करते हैं।

ऐसा सोचा जाता है कि कई सौ करोड़ वर्ष पूर्व, पृथ्वी की ऊपरी परत द्रव से ठोस अवस्था में परिवर्तित हुई होगी । वर्तमान अनुमान के अनुसार यह घटना लगभग १६० करोड़ वर्ष पूर्व घटित हुई । उस घटना के बाद का समय, भूगर्भ शास्त्रवेत्ताओं द्वारा छः भागों में विभाजित किया गया है । (१) आर्चियन, पिघले हुए पदार्थ से बनी हुई आग्नेय चट्टानों का समय; (२) आरम्भिक या पैलीजोइक, जब जीवन का प्रथम-प्रथम विकास हुआ । (३) द्वितीय या मेसोजोइक,(४) तृतीय, (५) चतुर्थ, (६) आधुनिक । पृथ्वी की तहों में पाई जाने वाली प्रत्येक काल की एकत्रित मिट्टी के स्थान का निर्धारण कर, उपर्युक्त कालों की आयुओं की परस्पर तुलना की जा सकती है । परन्तु प्रत्येक काल की आयु निश्चित रूप में मालूम करना असम्भव है ।

मानव शास्त्रवेत्ताओं के एक समूह का विचार है कि मनुष्य की हस्त-कला के प्रथम चिह्न तृतीय काल की चट्टानों में पाये जाते हैं। आधुनिक प्रमाण, इस विचार का अनुमोदन करते हैं। मानव-अस्तित्व के आदि चिह्न, कठोर पत्थरों से बने हुये भद्दे औज़ार और हथियार हैं । ये औजार दस लाख से लेकर एक करोड़ वर्ष पूर्व के प्रतीत होते हैं । स्मरण रहे यह समय पृथ्वी की पूर्ण आयु की तुलना में नगण्य सा है । ये औजार और हथियार पृथ्वी तल पर, नदियों के कछारों में तथा गुफाओं में पाये जाते हैं। इंजिनियरों तथा अन्वेषकों द्वारा भी, ये खुदाई करते समय पृथ्वी के विभिन्न भागों में पाये गये हैं । प्राथमिक मनुष्य के निवास-स्थान के प्रकारों में गुफाओं का भी एक स्थान

था। सबसे पुराने पत्थर के औजार जिन्हें इयोलिथ कहते हैं, और जल प्रवाह तथा पृथ्वी की आन्तरिक हलचल से अपने आप बने हुए पत्थर के औजार-सदृश टुकड़ों में भेद करना बहुत ही कठिन है। परन्तु उनके बाद वाले औजार जिन्हें पैलीयोलिथ कहते हैं, निःसन्देह कृत्रिम हैं और मनुष्य द्वारा बनाये गये हैं।

इयोलिथ काल की जो संदेहास्पद है, उपेक्षा करने के बाद प्रस्तरयुग को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रचीन प्रस्तरयुग काल का मनुष्य पत्थरों को फोड़कर अपने औजारों का निर्माण करता था। वह जानवरों का शिकार करता था, परन्तु उन्हें पालता नहीं था। वह खेती भी करना नहीं जानता था। प्रस्तर-युग के दूसरे भाग, नवीन प्रस्तर युग का मनुष्य एक भिन्न तथा ऊँची जाति का प्राणी था। ऐसा प्रतीत होता है कि यही जाति पश्चिमी यूरोप में फैल गई थी। इस जाति के लोग जानवर पालते थे और खेती करना भी जानते थे। मिट्टी के बर्तन तथा पत्थर, कड़ी चट्टानों, हड्डी, सींग और हाथी दांत के चमकदार औजार बनाने में भी ये लोग कुछ अंश तक दक्ष थे। संसार के कुछ भागों में नियोलिथ-काल का मनुष्य ताम्र को पिलघाने तथा टिन मिला-कर उसे कड़ा करने की क्रिया भी सीख गया। इस प्रकार कांसा-युग का आरम्भ हुआ धातु-विज्ञान की नींव पड़ी। कांसा-युग के बाद लोह युग आया; सम्भवतः इसका कारण यह था कि लोहा अधिक मात्रा



पूर्व प्रस्तर युगीय चकमक पत्थर के उपकरण

में पाया जाता था और इससे बने हुये हथियार युद्ध के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध हुये।

प्रस्तर-युग पर पुनः विचार करते हुये, हम जैसे जैसे ऊँची सतहों और बाद को चट्टानों की ओर बढ़ते हैं, वैसे वैसे प्रस्तर के औजारों की भिन्नता बढ़ती जाती है तथा उनकी निर्माण कला उच्च कोटि की होती जाती है। युद्ध या शिकार के समय गिरे हुये हथियार बहुत कम संख्या में पाये जाते हैं। परन्तु कभी कभी संयोग से हम प्राथमिक मनुष्य के निवास स्थानों पर पहुंच जाते हैं और इस प्रकार वहाँ फर्श पर पड़े हुये औजारों और हथियारों को अधिक संख्या में प्राप्त करने में सफल होते हैं। जले हुये पत्थर इस बात की ओर संकेत करते हैं कि प्रस्तर युग का मनुष्य अग्नि का आविष्कार करने में समर्थ हो चुका था। जानवरों और पौधों के अवशेष उस काल के जलवायु की सूचना देते हैं।

असह्य शीत, आतप और वर्षा से त्राण पाने के लिये आरम्भ में ही प्राथमिक मनुष्य ने गुफाओं को अपना निवास स्थान बना लिया था। ये गुफायें हमारे लिये एक प्रकार की संग्रहालय हैं। इनमें केवल औजार और हथियार ही नहीं पाये जाते, बल्कि इनकी दीवारों पर प्राथमिक मनुष्य द्वारा अंकित चित्र भी पाये जाते हैं। ये चित्र प्राचीन प्रस्तर काल से अंकित किये जाने लगे। इन चित्रों द्वारा हम कुछ अंश तक यह जान सकते हैं कि आज से लाखों या करोड़ों वर्ष पूर्व मानव किस प्रकार का जीवन व्यतीत करता था। यही नहीं, ये चित्र उन मनुष्यों के विचारों और विश्वासों पर भी प्रकाश डालते हैं।

आरम्भिक प्राचीन प्रस्तर युग की सभ्यतायें, जो चतुर्थ काल के आरम्भ से लेकर अंतिम हिम-युग के आरम्भ तक अस्तित्व में रहीं, निश्चय ही बहुत समय तक मनुष्य के विकास के लिये उत्तरदायी रहीं। इस समय के दौरान में, क्रमशः, संस्कृति में सुधार होता रहा। कम-से-कम उन भागों में तो, जहाँ आज इंगलैण्ड और फ्रांस स्थित हैं, यह सुधार अवश्य हुआ।

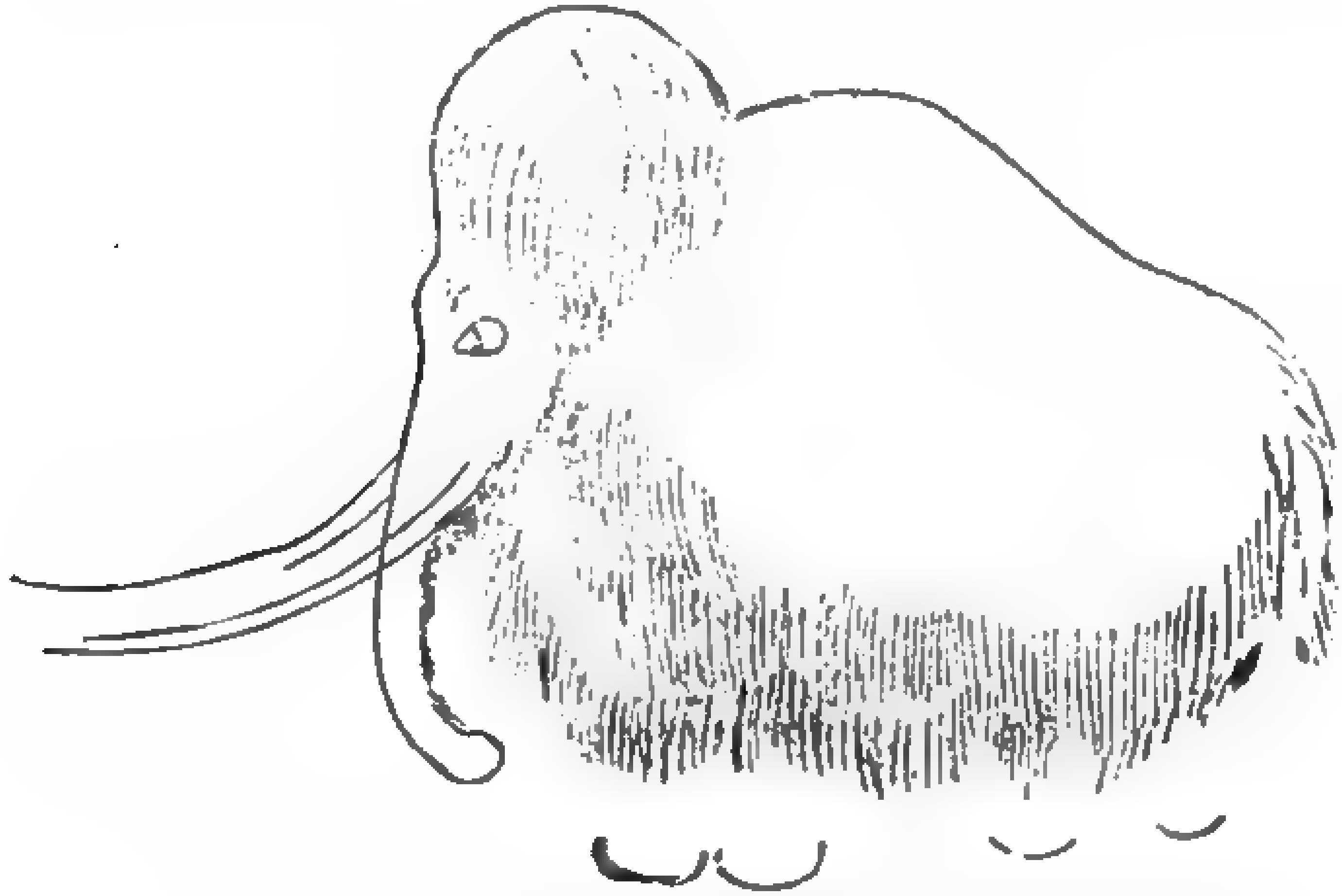
मध्य प्राचीन प्रस्तर युग मोस्टेरियन सभ्यता से सम्बन्धित है। लेस-फीज़ीज़ के पास स्थित मोस्टीयर स्थान पर इस सभ्यता का पता लगा, इसीलिये इसका उपयु क्त नाम रखा गया। नीन्डथंल स्थान के पास एक मनुष्य जाति का पता लगा और उसका नाम नीन्डथंल जाति रखा गया। इसी जाति ने उपयु क्त मोस्टेरियन सभ्यता को विकसित किया था। यह जाति निम्न कोटि की थी और ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह जाति मानव विकास की सर्व स्वीकृत शृंखला से सम्बन्धित नहीं है। मोस्टेरियन काल के असह्य शीत ने मनुष्य को अपेक्षाकृत अपना अधिकांश समय गुफाओं और कंदराओं में व्यतीत करने के लिये बाध्य किया। इस प्रकार उस काल के बहुत से औजार उन गुफाओं में सुरक्षित रह सके। इन औजारों से पता चलता है कि उस काल के मनुष्य पत्थरों से अलग हुये छिलकों को गढ़ कर अपने औजार बनाते थे। परन्तु निम्न प्राचीन प्रस्तर युग के अधिकांश औजार छिले हुये पत्थरों के टुकड़ों के केन्द्रीय भाग के बने हुये हैं।

अंतिम प्राचीन प्रस्तर युग का मनुष्य या अर्ध मनुष्य अंतिम हिम-युग के शीततम काल के बीतने पर, फ्रांस में प्रकट हुआ, यद्यपि हड्डियों और चित्रों में रेन्डियर (बड़ी सींगों वाला हिरन जो यूरप, अमेरिका और एशिया के उत्तरी ठंडे भागों में पाया जाता है) और स्टैग [एक प्रकार का हिरन] का मिश्रण इस बात की ओर संकेत करता है कि जलवायु अभी बहुत ठंडी थी। अंतिम प्राचीन प्रस्तर युग की मनुष्य जाति, मानवीय विकास की दृष्टि से पूर्व वाली सब जातियों से उच्चतर थी। यह जाति घरेलू सामान बनाने में कुशलता प्राप्त करने लगी थी। हड्डी का उद्योग धंधा निश्चित रूप से विकसित हो चुका था और फ्लिंट पत्थर को तराशने की कला में काफी सुधार हो गया था। मैग्डालेनियन, अंतिम प्राचीन प्रस्तर युग की मिट्टी में, आंख वाली सूई तथा दो फल वाले हड्डी के बने बर्छे [मछली के शिकार के लिए] पाये गये हैं। ये तथा अन्य

औजार और हथियार इस बात की ओर संकेत करते हैं कि हस्त कौशल में निश्चित रूप से सुधार हो चुका था।

गुफाओं की दीवारों पर पाये जाने वाले प्राचीनतम चित्र भी उसी काल के प्रतीत होते हैं। इन दीवारों पर मनुष्यों तथा घोड़ा और भैंसा आदि जानवरों के चित्र पाये जाते हैं। उस समय विचरण करने वाले विशालकाय जानवर भी, जिनका वंश नष्ट हो चुका है, इन चित्रों के विषय हैं। कुछ रेखा चित्र दैत्यों और जादूगरों के प्रतीत होते हैं और ये चित्र उस काल के मनुष्यों के विश्वासों पर प्रकाश डालते हैं।

इन विश्वासों के सम्बन्ध में और अधिक निश्चित धारणा बनाने के लिये हम इनकी तुलना यूनानी, और लैटिन लेखकों द्वारा वर्णित आरम्भिक ऐतिहासिक काल के मनुष्यों के विश्वासों से तथा वर्तमान समय में पाई जाने वाली जंगली जातियों के विश्वासों से कर सकते हैं। इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन से सम्बन्धित बहुत-से प्रमाणों को



एक कंदरा की दीवार पर किसी विशालकाय जीव का चित्र

फ्रेज़र ने अपनी पुस्तक 'गोल्डेन बाऊ' में एकत्रित किया है। इन प्रमाणों द्वारा वह बन में रहनेवाली 'डियना' जाति की उन धार्मिक प्रथाओं और पूजा-विधियों का रहस्य समझने में समर्थ हुआ है जो यूनानी और रोमन सभ्यता के युग में भी, रोम नगर के निकट अलवन पहाड़ियों में स्थित नेमी कुंज में प्रचलित थीं और जो और भी पहले के असभ्य युग की देन थीं। नेमी कुंज में, पुरोहित और राजा एक ही व्यक्ति होता था और वह तब तक शासन करता था जब तक कोई अधिक शक्तिशाली और कुटिल व्यक्ति उसे मार कर स्वयं राजा नहीं बन जाता था।

इस भयंकर और दुखद प्रथा का रहस्य उद्घाटन करने के उद्देश्य से फ्रेज़र ने, पृथ्वी के विभिन्न भागों और विभिन्न कालों में प्रचलित प्रथाओं और विश्वासों पर विहंगम दृष्टि डाला है। उसने क्रम से जादू, जादू द्वारा प्रकृति नियंत्रण, प्रकृति में पाये जाने वाले जीवात्माओं और देवताओं, मनुष्याकृत देवताओं, वनस्पति और उपज के देवताओं, पैदावार के लिये मनुष्य-बलिदान, जादूगरों के राजा बनने, समय-समय पर राजाओं के बलिदान, विशेषकर, जब पैदावार मारी जाती थी या और कोई दुर्घटना होती थी, तथा कला के, प्रारम्भिक विज्ञान में परिवर्तित होने का, विवेचन किया है। कुछ मानव शास्त्र वेत्ताओं का विचार हैं कि जादू ही से, एक ओर धर्म की और दूसरी ओर विज्ञान की उत्पत्ति हुई। परन्तु फ्रेज़र का मत है कि जादू ने धर्म को, और धर्म ने विज्ञान को जन्म दिया। एक दूसरे मानव शास्त्र वेत्ता, रिवर्स, के अनुसार जादू और आरम्भिक धर्म का उदय साथ-साथ उस भय और रहस्य भावना से हुआ जिससे बहुत काल तक प्राथमिक मनुष्य अपने आस-पास के वातावरण को न समझने के कारण, आरम्भ में अभिभूत रहा था। जादू इस विश्वास पर आधारित है कि प्रकृति, नियमों के अनुसार कार्य करती है तथा सम्यक् रूप से सम्पादित कृत्यों द्वारा, इन नियमों का प्रयोग, प्रकृति पर अधिकार करने के लिये किया जा सकता है। इस प्रकार जादू, प्राकृतिक नियमों से सम्बन्धित एक अवैज्ञानिक कला है। जादू की एक शाखा के अनुसार

समान कारण सर्वदा समान प्रभाव उत्पन्न करते हैं। चूँकि, मेंढक जब बोलते हैं तब वर्षा होती है इसलिये मेंढक की बोली बोल कर इच्छानुसार कभी भी वर्षा कराई जा सकती है। इसी विश्वास के कारण अवर्षण काल में, जंगली मनुष्य मेंढक का वेष बनाकर उसकी बोली बोलता है। इस प्रकार की नकल के असंख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। एक दूसरी शाखा के अनुसार यदि एक वस्तु एक बार भी किसी व्यक्ति के संपर्क में आ जाय, तो उस वस्तु और उस व्यक्ति में सर्वदा के लिये सहानुभूति-पूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। किसी मनुष्य के कपड़ों को, और विशेषकर उसके शरीर के किसी भाग को—उसका बाल या नख—अपने पास रखकर, उस मनुष्य पर अधिकार किया जा सकता है। यदि आप उसके बाल को जलायें तो वह भी जलने लगेगा।

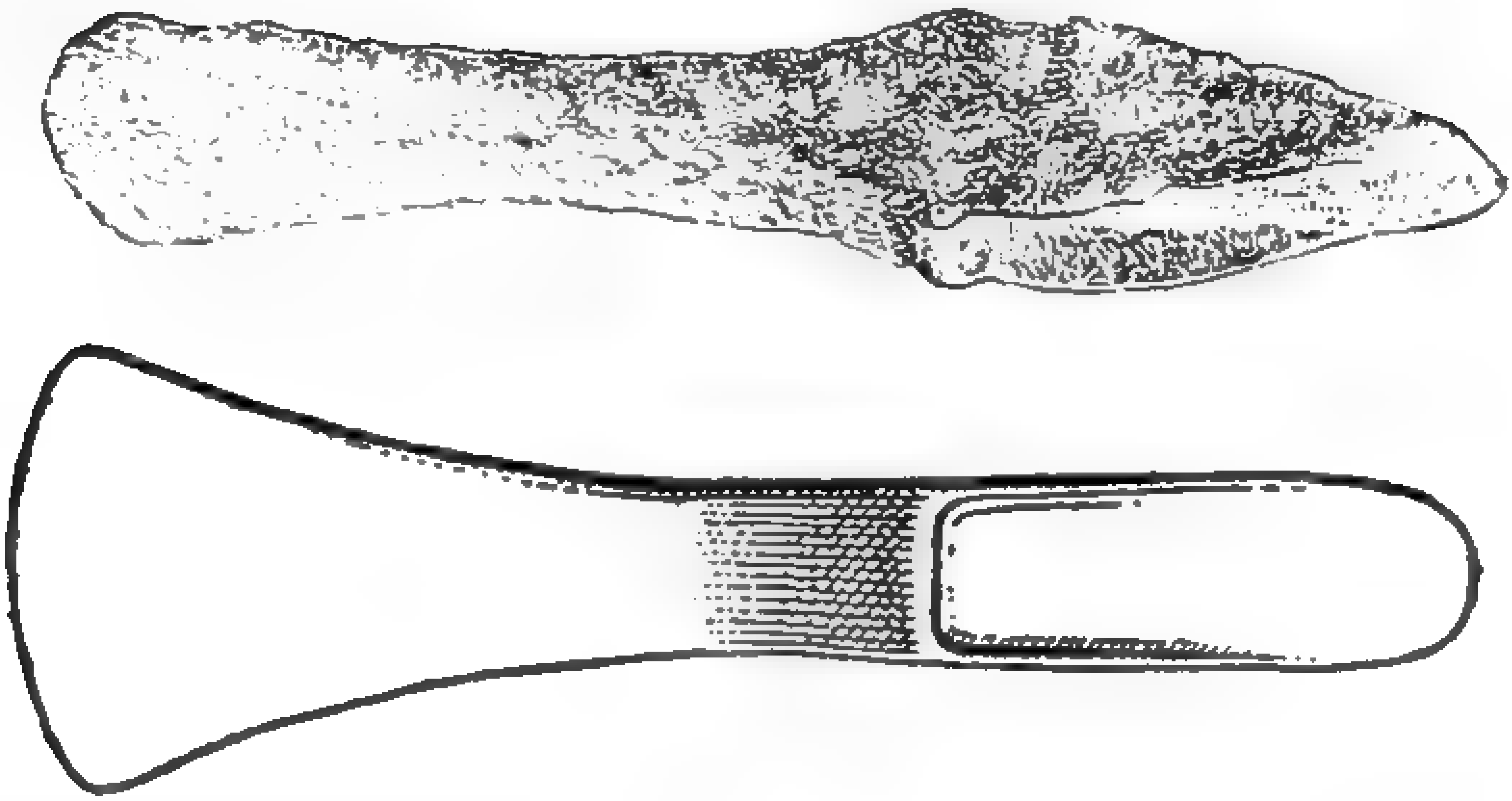
ये क्रियायें जादूगर को बहुत आगे बढ़ाने में असमर्थ हैं। संयोग-वश इन क्रियाओं द्वारा इच्छित और प्रत्याशित फल कभी-कभी प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु प्रायः वे असफल ही सिद्ध होती हैं। फिर भी मान लीजिये संयोगवश जादूगर कार्य-कारण के किसी यथार्थ सम्बन्ध को मालूम कर लेता है। उदाहरण के लिये वह लकड़ी के दो टुकड़ों को रगड़ कर अग्नि का चमत्कार उत्पन्न करने में सफल होता है। इस प्रयोग द्वारा वह एक यथार्थ तथ्य सीख जाता है जिसे वह इच्छानुसार किसी समय भी दुहरा सकता है। जहां तक इस सम्बन्ध का प्रश्न है वह जादूगर, वैज्ञानिक कहा जा सकता है। परन्तु यदि जादूगर इच्छित फल प्राप्त करने में कई बार असफल हो तो उसके निराश अनुयायी उसे छोड़ देते हैं और कभी-कभी तो उसे मार डालते हैं। इन अनुयायिओं का विश्वास इस बात पर से उठ जाता है कि मनुष्य प्रकृति को वश में कर सकता है, और वे अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये, काल्पनिक देवताओं और दैत्यों को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार, वे प्राथमिक धर्म के एक प्रकार में पदार्पण करते हैं। इसी बीच, दूसरी तरफ, अग्नि का आविष्कार, जानवरों का पालना, अन्न का उत्पादन,

औजारों की निर्माण कला में क्रमिक सुधार, तथा अन्य बहुत-सी साधारण कलाओं का विकास, इन सबने अपेक्षाकृत कम रोमांचक परन्तु निश्चित रूप में, विज्ञान की उत्पत्ति के लिये एक दूसरा क्षेत्र तैयार कर दिया। जादू, धर्म और विज्ञान में परस्पर जो भी सम्बन्ध हो—और यह सम्बन्ध विभिन्न कालों और स्थानों में भिन्न-भिन्न हो सकता है—परन्तु इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इनमें बहुत ही घनिष्ट और वास्तविक सम्बन्ध है। अज्ञान की स्वच्छ और स्वस्थ भूमि पर, विज्ञान अंकुरित और बड़ा नहीं हुआ; विपरीत इसके, वह जादू और अन्ध-विश्वास के एक ऐसे अस्वास्थ्यकर जंगल में अंकुरित और विकसित हुआ जो बार बार उसकी वृद्धि को रोकने का, कभी असफल और कभी सफल, प्रयत्न करता रहा।

नवीन प्रस्तर-काल का मनुष्य, प्रगति पथ पर कुछ आगे बढ़ा हुआ प्रतीत होता है। उस काल की प्रस्तर-रचनायें, जिनमें एक निर्देशक प्रस्तर उगते हुये सूर्य के स्थान का निर्देश करता था, केवल धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये नहीं, बल्कि आकाशीय तथ्यों को मालूम करने के लिये भी, निर्मित की जाती थीं।

प्रागैतिहासिक काल की कब्रों से कभी-कभी बड़े महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते हैं। मृत व्यक्तियों को गाड़ने की प्रथा नवीन प्रस्तर-काल के अन्त तक प्रचलित थी। मृतकों को जलाने की प्रथा कांसा युग में प्रकट हुई। यह प्रथा, मध्य यूरप में, जहाँ जंगलों से जलाने के लिये लकड़ी आसानी से मिल जाती थीं, बहुत प्रचलित थी। अच्छी तरह बने हुये पत्थर के औजार प्रायः कब्रों में रख दिये जाते थे। ये औजार केवल उस काल की कला का ही पता नहीं देते हैं, बल्कि उस काल के लोगों के इस विश्वास की ओर भी इशारा करते हैं, कि ये औजार मृत व्यक्ति की आत्मा के लिये दूसरी दुनिया में उपयोगी और सहायक सिद्ध होंगे।

जंगली जाति का दृष्टिकोण चाहे वह प्रागैतिहासिक और प्राचीन काल की हो, चाहे आधुनिक काल की, निश्चय ही बुद्धिवाद पर आधा-



मध्य कांस्य युग के कांस्य उपकरण

रित नहीं होता। जब जंगली मनुष्य अपने मृत पिता को स्वप्न में देखता है तो वह इस सम्बन्ध में तर्क नहीं करता। वह स्वप्न को ज्यों का त्यों, और वास्तविक रूप में स्वीकार कर लेता है। वह सोचता है कि उसका पिता किसी न किसी रूप में जीवित है। उसकी जीवित माता की तरह वह पार्थिव रूप में भले ही न हो, आत्मा या छाया जैसे सूक्ष्म रूपों में ही सही, उसके पिता का अस्तित्व मृत्यु के पश्चात् भी विद्यमान् अवश्य है। लोक और परलोक की प्रकृति में कोई भिन्नता नहीं है। इन दोनों में केवल यही अन्तर है कि एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म है।

कांसा-युग के आरम्भ के साथ, हम एक ऊंची सभ्यता के युग में प्रवेश करते हैं। यह सभ्यता धातु के प्रयोग के कारण अस्तित्व में आ सकी। हम इस युग में कुल्हाड़ी और छुरे तथा उनसे प्रसूत बर्छे और तलवार एवं दीपक जैसे घरेलू सामान पाते हैं। मनुष्य निश्चय ही उस युग को पार कर गया है जब वह केवल पत्थर के ही औजार इस्तेमाल करता था। कांसा का स्थान जैसे ही लोहा लेता है, हम ऐसे काल में

प्रवेश करते हैं जिसका इतिहास, पत्थर मिट्टी तथा चमड़े पर लिखे गये तथ्यों को एकत्रित कर, जाना जा सकता है।

इतिहास का ऊषः काल—ऐसा प्रतीत होता है कि प्राथमिक कृषि तथा औद्योगिक कलाओं के साथ, स्थिर जीवन का आरम्भ बड़ी नदियों—नील, दजला, फरात और सिंध के निकट आरम्भ हुआ। चीन की आरम्भिक सभ्यता का उदय भी उसकी बड़ी नदियों के आस-पास हुआ होगा। नदियों के पास रहने वाले उपर्युक्त लोगों के सम्पर्क में, कहीं-कहीं पर अपने मवेशियों के साथ घास के मैदानों और मरु-उद्यानों में घूमने वाली भ्रमण-शील जातियां भी रहती थीं। भ्रमण-शील जातियों में, परिवार ही सामाजिक इकाई होता है। इस परिवार में दास भी सम्मिलित होते हैं और परिवार का शासक पिता होता है। साधारण समयों में ये पारिवारिक इकाइयाँ एक दूसरे से अलग-अलग रहती थीं, और प्रत्येक परिवार अपने जानवरों के लिये आवश्यक चारे की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूमा करता था। प्राचीन बाइबिल में हम भ्रमण-शील जातियों के जीवन का बहुत ही स्पष्ट वर्णन पाते हैं:—

"और लाट भी, जो ऐब्रम के साथ गया, मवेशियों और तम्बुओं के साथ था। और भूमि उन दोनों का भार एक साथ सम्भालने में असमर्थ थी। और ऐब्रम ने लाट से कहा—'क्या तुम्हारे सम्मुख सम्पूर्ण भूमि नहीं है ? मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं, तुम मुझसे अलग हो जाओ। अगर तुम बाईं ओर जाओगे तो मैं दाहिने हाथ की ओर जाऊँगा, या अगर तुम दाईं ओर जाओगे तो मैं बाईं ओर जाऊँगा।"

उपर्युक्त प्रकार की पृथक् भावना तथा प्रथा द्वारा सभ्यता या विज्ञान का विकास सम्भव नहीं था। किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति, उदाहरणार्थ खतरनाक जंगली जानवरों के शिकार या दूसरी जातियों के साथ युद्ध के लिए ही विभिन्न परिवारों में सहयोग हो पाता था। परन्तु कभी-कभी अधिक दिन तक वर्षा न होने या जलवायु में स्थायी परिवर्तन हो जाने के कारण, घास नहीं उग पाती थी और घास के मैदानों तथा

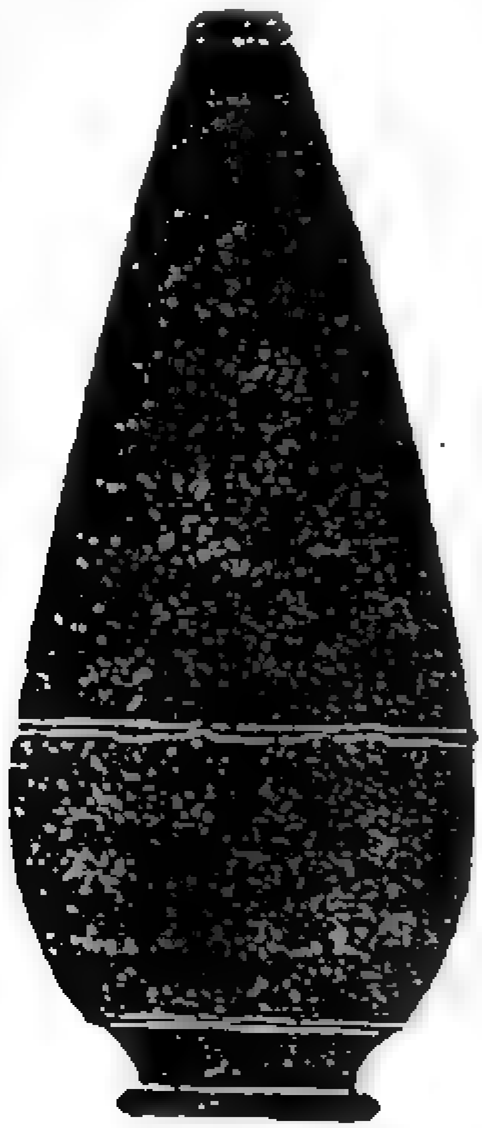
मरु-उद्यानों में रहना असम्भव हो जाता था। ऐसी परिस्थिति में ये भ्रमणशील जातियाँ स्थायी जीवन व्यतीत करने वाली जातियों के प्रदेशों पर धावा बोल देती थीं। अरब की सेमिटिक तथा ईरान की सीमा पर रहने वाली असीरियन जातियों और एशिया और यूरप के पास के मैदानों में निवास करने वाली तथाकथित आर्य-जातियों द्वारा किये गए ऐसे कितने ही आक्रमणों के उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

प्रकट है कि भ्रमणशील जातियों से कला या उपयोगी विज्ञान के विकास की आशा करना व्यर्थ है। परन्तु प्राचीन बाइबिल के, जो यहूदियों का पवित्र ग्रंथ होने के कारण आज भी सुरक्षित है, आरम्भिक अध्यायों में केवल भ्रमणशील जातियों के जीवन का ही वर्णन नहीं है बल्कि उसके बाद के अध्यायों में निकट तथा मध्यपूर्व में स्थापित राज्यों—मिश्र, सीरिया, बेबिलोनिया तथा असीरिया—से सम्बन्धित दंतकथाओं का भी उल्लेख है। प्राचीन इमारतों, मूर्तियों तथा प्रस्तर-लेखों के आविष्कार एवं प्राचीन अवशेषों जैसे राजकीय कब्रों की खुदाई से प्राप्त आधुनिक ज्ञान के लिए उपर्युक्त दंतकथाएँ विषय-प्रवेश का काम करती हैं। उपर्युक्त साधनों द्वारा प्राप्त ज्ञान दो अनिश्चित आधारों पर अवलम्बित है। एक अनिश्चितता प्राचीन काल की सब सामग्रियों और प्रमाणों के वर्तमान काल तक सुरक्षित रहने से और दूसरी अनिश्चितता उन प्रमाणों को ढूंढ निकालने तथा उनका सही अर्थ समझने से सम्बन्ध रखती है।

प्रस्तर युग के अंतिम काल से ईजियन समुद्र के तटों और द्वीपों पर भूमध्य सागरीय जाति निवास करती रही है। इस जाति के लोग छोटे कद, लम्बे सर और काले या भूरे रंग के होते हैं। ऐतिहासिक काल के पूर्व सभ्यता में जो कुछ भी प्रगति हो सकी, उसका श्रेय इसी जाति को प्राप्त है। यूरप के मध्य भाग और विशेषतया पर्वतीय प्रदेश में अल्पाइन जाति के लोग निवास करते थे और अब भी करते हैं। यह जाति यूरप में पूर्व दिशा से आई। इस जाति के लोग मजबूत तथा

मझोले कद और रंग के होते हैं। इनका सर चौड़ा और गोल होता है। उत्तर में बाल्टिक समुद्र के किनारे नार्डिक जाति के लोग निवास करते हैं। इनका रंग गोरा, कद लम्बा और सर भी लम्बा होता है।

मिश्र—मिश्र, एक दूसरे से बहुत ही भिन्न दो भागों में विभाजित है—एक डेल्टा, जहाँ अत्यन्त उपजाऊ कीचड़ से ढके समतल प्रदेशों के बीच से होकर नील नदी समुद्र में प्रवेश करती है और दूसरा घाटी, जो उस सुले भाग में नदी के दोनों ओर मीलों तक विस्तृत है, जिसमें नील नदी पश्चिमी रेगिस्तान के रेत और पूर्वी समुद्र तट की चट्टानी पहाड़ियों के बीच अपना रास्ता बनाती है।



मिश्र के आरम्भिक मिट्टी के बर्तन

नील नदी की घाटी में तथा उसके किनारे कई स्थानों पर प्राचीन प्रस्तर काल के औजार पाये जाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि पृथ्वी की परतों के निर्माण के आरम्भ काल से ही मनुष्य वहाँ निवास करते रहे हैं। उसके बाद नवीन प्रस्तर-काल के मनुष्य अपने अपेक्षाकृत अच्छे औजारों और मिट्टी के बर्तनों के साथ निवास करते रहे। जब मुलायम मिट्टी एक पात्र के रूप में परिवर्तित कर दी जाती है और उस रूप को अग्नि द्वारा स्थायित्व प्रदान कर दिया जाता है, तब एक नई कला अस्तित्व में आती है। यह कला निश्चय ही पत्थर के हथियार और पात्र बनाने की कला से उच्च कोटि की है तथा एक वास्तविक आविष्कार और सभ्यता की ओर एक लम्बा कदम है। पत्थर के हथियार और पात्र बनाने में कल्पना की कोई विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती और केवल मामूली काट-छाँट द्वारा इच्छित वस्तुएं गढ़ी जा सकती हैं।

ईसा से लगभग ३००० वर्ष पूर्व राजाओं के प्रथम वंश से मिश्र का इतिहास आरम्भ होता है। इससे भी पूर्व काल का हाल थोड़ा-बहुत पवित्र होरस, तथा उसके अनुयायियों की दंतकथाओं जैसी कहानियों द्वारा मालूम किया जा सकता है। चित्रलिपि, जिसमें मिश्र की बहुत-सी लिखित सामग्री सुरक्षित है, अलेक्जेंड्रिया के पूर्व रोसेटा नामक स्थान पर १७९९ में ब्राउसार्ड द्वारा पाये गए एक पत्थर पर प्रथम-प्रथम पढ़ी जा सकी। इस पत्थर पर पंचम टालमी एपिफेन्स की आज्ञा, चित्र-लिपि, डिमाटिक लिपि (चित्र-लिपि का एक सूक्ष्म रूप) और यूनानी लिपि इन तीनों लिपियों में अंकित है। इस प्रकार वे चित्र-लिपियाँ चैम्पोलियन तथा यंग द्वारा पढ़ी जा सकीं और तराशे हुए पत्थरों तथा पत्तियों पर जो मिश्र के शुष्क जलवायु में खराब नहीं होतीं, अंकित मिश्र की लिखित-सामग्रियों का अध्ययन आरम्भ हुआ।

मिश्र का प्रथम ऐतिहासिक राजा, जिसके अस्तित्व के सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं हैं, मीनस (३१८८–३१४१ ई० पू०) था। उसने सम्पूर्ण मिश्र पर अपना राज्य स्थापित किया और मेम्फिस नगर का निर्माण करवाया।

इस प्रथम वंश के शासन-काल में भी मुख्य-मुख्य घटनाओं को जैसे नील नदी की बाढ़ की ऊँचाई आदि को अंकित कर लिया जाता था। इस प्रकार की अंकित सामग्री चतुर्थ वंश के शासन-काल में बहुतायत से मिलती है। आकाशीय तथ्यों के आधार पर स्थित पिरामिड (एक प्रकार की रचना जिसका निचला भाग चौकोर या त्रिभुजाकार होता है, परन्तु ऊपरी भाग नुकीला होता है) चौथी और बारहवीं पीढ़ी के बीच बनाये गए। परन्तु व्यावहारिक कलाओं के उन्नतम् उदाहरण १५०० और १३५० ई० पू० के बीच अठारहवीं पीढ़ी में प्रकट होने लगते हैं।

मिश्रवालों का विश्वास था कि प्रत्येक कला और विज्ञान की उत्पत्ति दैवी शक्तियों द्वारा होती है। इस सम्बन्ध में चन्द्र-देव (थाथ) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मिश्र-निवासियों का विश्वास था कि चन्द्र-देव ही दिवसों और वर्षों में समय को नापते हैं तथा मन्दिरों और पूजा-गृहों में, आकाशीय घटनाओं को अंकित करने के लिए 'रात के पहरेदार' नियुक्त करते हैं।

अंकगणित में दशमलव पद्धति का प्रयोग प्रथम पीढ़ी में ही होता था। परन्तु अंकों के स्थानीय मान तथा शून्य और १ तथा १० के बीच के अंकों के चिह्नों का आविष्कार नहीं हो सका था। किसी संख्या का मान १ को उतने ही बार लिख कर प्रकट किया जाता था। भिन्नों को भी इकाइयों द्वारा प्रकट किया जाता था। उदाहरणार्थ $\frac{३}{४}$ को $\frac{१}{२}$ $\frac{१}{४}$ के रूप में लिखा जाता था। ये इकाई भिन्नें यौगिक भिन्नों के पूर्ण रूप से प्रचलित होने के बाद भी बहुत दिन तक प्रयुक्त होती रहीं।

सरकारी पंचाङ्ग के अनुसार साल में ३६५ दिन होते थे। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मिश्र वाले इस तथ्य से परिचित थे कि साल लगभग ३६५$\frac{१}{४}$ दिन का होता है। सरकारी गणना का स्वाभाविक परिणाम यह था कि प्रत्येक वर्ष का आरम्भ ऋतु के अनुसार पिछड़ता जाता था। उदाहरणार्थ वर्ष का आरम्भ एक समय यदि वसंत के आरम्भ में होता था तो लगभग २४० वर्ष बाद साल का आरम्भ दो मास पूर्व

हेमन्त के शुरू में ही हो जाता था। इस प्रकार यह चक्र लगभग १५०० वर्ष में पूरा होता था, अर्थात् इतने समय के बाद साल की शुरुआत



मिश्र की एक रानी रथ में यात्रा करती हुई

पुनः उसी ऋतु, वसंत, के आरम्भ में होती थी। इस काल को एक युग कहते थे। पूजा-गृहों में ३६० दिन का ही साल होता था क्योंकि शेष पांच दिन, पांच मुख्य देवताओं के जन्म-दिन मनाने में खर्च हो जाते थे। इस पंचाङ्ग के कारण वर्ष-गणना में और भी गड़बड़ी होती थी। कई पंचाङ्गों के कारण रोमन काल के आरम्भ होते-होते वर्ष-गणना में बहुत अव्यवस्था आ गई थी, परन्तु जूलियस सीज़र ने, सोसिजीनस की सलाह से एक नये पंचाङ्ग जूलियन पंचाङ्ग की स्थापना की, जिसके अनुसार एक वर्ष ३६५¼ दिन का होता था अर्थात् प्रत्येक चतुर्थ वर्ष ३६६ दिन का होता था। यह वर्ष वास्तविक वर्ष से कुछ बड़ा था। तेरहवें पोप ग्रेगरी ने १५८२ ई० में इसे ठीक किया। इंगलैंड में उपर्युक्त वर्ष १७५२ में, प्रत्येक ३०० वर्ष के बाद एक वर्ष छोड़कर ठीक किया गया।

नील नदी की बाढ़ के कारण ज़मीन प्रायः पानी से ढक जाया करती थी और इसलिए नई सीमा-रेखाओं की आवश्यकता पड़ा करती थी। इस आवश्यकता ने रस्सी की सहायता से ज़मीन नापने की कला को जन्म दिया। यही कला आगे चलकर यूनानियों द्वारा ज्यामिति-विज्ञान में परिवर्तित हो गई।

नक्षत्रों को विभिन्न मण्डलों में रखा जाता था। ये मंडल विभिन्न देवताओं के बोधक थे और इसलिये छतों और काफिन (एक सन्दूक जिसमें मृत व्यक्ति रखा जाता है) के ढक्कनों पर अंकित किये जाते थे। ब्रह्माण्ड की कल्पना एक आयताकार सन्दूक के रूप में की जाती थी। इस सन्दूक के फर्श के बीच मिश्र स्थित समझा जाता था। आकाश चार पर्वत-शृंगों पर संभला हुआ था और नक्षत्र आकाश से तारों द्वारा लटकाये हुये दीपक थे। पृथ्वी को घेरकर एक नदी बहती थी। जिसमें एक नाव चलती रहती थी। सूर्य, इसी नाव में स्थित समझा जाता था।

मिश्र निवासियों का वैद्यक में भी काफी दख़ल था। बहुत-से पत्ते

ऐसे पाये गए हैं जिन पर औषधि सम्बन्धी लेख अङ्कित हैं। इन लेखों के बीच बीच में जादू का भी वर्णन है। प्रथम औषधि शास्त्रवेत्ता, जिसका नाम आज भी ज्ञात है, आई-एम-हाटप 'वह जो शांति में आता है' था। अपनी मृत्यु के बाद वह औषधि का देवता बन गया। मृत व्यक्तियों के शरीरों को सुरक्षित रखने की प्रथा ने स्वभावतः शरीर शास्त्र एवं शल्य शास्त्र का मार्ग प्रशस्त कर दिया। ईसा से २५०० वर्ष पूर्व भी इन शास्त्रों से सम्बन्धित तथ्यों को पत्थर और लकड़ी पर चित्रों को खोदकर स्पष्ट किया जाता था। रोगों का उपचार अंधविश्वास के स्थान पर युक्ति संगत प्रणाली द्वारा अधिकाधिक मात्रा में होने लगा। फिर भी मानसिक रोगों के उपचार के लिए लोग प्रेत-विद्या विशारदों की ही शरण में जाते थे क्योंकि लोगों का विश्वास था कि तंत्र-मंत्र की सहायता से वे दुष्ट प्रेतात्माओं को रोगी के शरीर से निकाल देंगे।

प्राचीन मिश्र ने यांत्रिक कलाओं में बहुत उन्नति की थी। पिरामिडों का महान् निर्माण कार्य आज भी आश्चर्य का विषय है। कर्नाक और फिली के निकट पाए गये मंदिरों के ध्वंसावशेष उच्च कलात्मक निपुणता के प्रमाण हैं। पाये गए औजारों में सेटस्कायर, लेवल्स और प्लम्ब रेखायें उल्लेखनीय हैं। वजन मालूम करने के लिए डंडा वाला तराजू इस्तेमाल किया जाता था। बहुत-से बाट पाये गए हैं परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि देश के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न इकाइयाँ प्रचलित थीं। करघे का एक चित्र पाया गया है जो १२०० ई० पू० का है। इससे यह सिद्ध होता है कि उस काल में कताई भी होती थी। चौथी पीढ़ी की एक कब्र में एक समुद्री जहाज का तथा घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले पहियेदार रथों के चित्र पाये गए हैं।

स्पष्ट है कि प्राचीन मिश्र में विज्ञान विभिन्न आवश्यकताओं जैसे उपयोगी कलाओं, भवन-निर्माण कला, उद्योग-धंधा, औषधि तथा घरेलू उपयोग की वस्तुओं की पूर्ति का साधन मात्र था। परन्तु साधन और सहायक के रूप में भी उसे पर्याप्त सफलता मिली। दूसरे भू-भागों पर भी

मिश्र का बहुत प्रभाव पड़ा था। विशेषकर मिनोन-युग में क्रीट पर और बाद में यूनान पर उसका अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव पड़ा था। यूनान में मिश्र का उपयोगी विज्ञान सत्य के विशुद्ध अन्वेषण में रूपान्तरित हो गया। पारसी सम्राट् साइरस के पुत्र कैम्बिसिस ने मिश्र पर विजय प्राप्त की और उसे पददलित किया। तीसवीं पीढ़ी ४०० ई० पू०, अंतिम स्थानीय पीढ़ी थी और एक दूसरे विजयी वर्बर, ओचस, ने मिश्र की शेष श्री को भी नष्ट कर दिया। अलेक्जेन्डर ने जब मिश्र में प्रवेश किया तो लोगों ने उद्धारक के रूप में उसका स्वागत किया। उसने अलेक्जेन्ड्रिया नगर की स्थापना की और यही नगर आगे चलकर एथन्स के बाद संसार का बौद्धिक केन्द्र बना। ३० ई० पू० क्लेयोपेट्रा के शासन के पश्चात् मिश्र, रोमन साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया।

बेबिलोनियाँ—दजला और फ़रात के बीच के भू-भाग को बेबिलोनिया कहते हैं और बेबिलोन, जिसका अब केवल ध्वसांवशेष ही बाकी बचा है, बहुत दिनों तक इस देश की विशाल राजधानी रहा। और भी बहुत-से शहर थे। प्राचीनतम् शहरों में चैल्डीस वंश का 'उर' शहर उल्लेखनीय है। यहीं से अपनी यात्रा के लिये अब्राहम ने प्रस्थान किया था।

इस देश के दो भाग थे। ऊपरी भाग में घास के मैदान और रेगिस्तान थे; परन्तु निचला भाग नदियों की लाई हुई मिट्टी और कीचड़ का बना था। इसी भाग पर उस देश के निवासियों की समृद्धि निर्भर थी। पश्चिम में अरब, और पूर्व में ईरानी पर्वतों की निचली पहाड़ियों पर स्थित असीरिया देश था।

इस देश का प्रथम नाम सुमेर था और इसके प्राचीनतम् निवासी ऐतिहासिक काल में सुमेरियन नाम से प्रसिद्ध थे। बाद में चलकर ये लोग अरब की आक्रमणकारी सेमाइट तथा असीरियन जातियों के साथ मिल गए। इस देश में प्रायः ज़ोर की आंधियाँ और बाढ़ें आया करती हैं। एक ऐसी ही दुर्घटना की स्मृति 'नोह' और 'प्रलय' की दंतकथा

के रूप में आज भी सुरक्षित है। उग्र और भयंकर प्रकृति के समान ही बेविलोनिया के देवता भी मनुष्य के शत्रु थे।

बेविलोनिया निवासी भी मिश्रवालों की तरह ब्रह्माण्ड की कल्पना एक सन्दूक के रूप में करते थे। पृथ्वी फर्श थी। केन्द्र में हिम था जहाँ से फरात नदी निकलती थी। पृथ्वी के चारों ओर एक पानी से भरी खाई थी। उसके बाद पर्वत थे जो आकाश को संभाले हुए थे। इन कल्पनाओं की अपेक्षा उनके आकाशीय निरीक्षण कहीं अधिक उपयोगी थे। बड़ी-बड़ी ईंटों पर अंकित लेखों द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि २००० ई० पू० भी इस प्रकार के निरीक्षण किये जाते थे। ६०० ई० पू० सूर्य और चन्द्रमा के आपेक्षिक स्थानों का निर्धारण किया जा सकता था और इस प्रकार ग्रहणों के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करना सम्भव था।

इस प्रकार के निश्चित ज्ञान के आधार पर, अतिशयोक्तिपूर्ण तथा भ्रमात्मक ज्योतिष विद्या की स्थापना की गई। लोगों का विश्वास था कि नक्षत्र मनुष्य के कार्यों का नियंत्रण करते हैं। कैल्डीयन काल के ज्योतिषी विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। जादूगर तथा तांत्रिक चिकित्सकों का कार्य करते थे।

गेहूँ और जौ वहाँ की स्थानीय उपज थी। इनकी खेती बहुत प्राचीन काल में ही आरम्भ हो चुकी थी। इस तथ्य ने पंचांग का निर्माण आवश्यक बना दिया। दिन को समय की इकाई मानने के लिए मनुष्य को प्रकृति ने विवश कर दिया है। लगभग ४००० ई० पू० ऋतुओं के एक चक्र में महीनों की संख्या मालूम करने का प्रयत्न किया गया था। दिन को घंटा, मिनट और सेकण्ड में विभाजित किया गया था और एक सीधी छड़ी द्वारा समय मालूम किया जाता था। सूर्य, चन्द्रमा तथा पांच ज्ञात ग्रहों के नाम पर सात दिनों का नामकरण किया गया था। इस प्रकार सप्ताह समय की एक दूसरी इकाई हो गया।

परन्तु शायद सब से महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सफलता यह थी कि लोगों

ने मापों की निश्चित इकाइयों की आवश्यकता अनुभव की और २५०० ई० पू० राजाज्ञा से लम्बाई आयतन और वज़न की इकाइयाँ प्रकाशित की गईं। लम्बाई की इकाई अंगुली (लगभग ¾ इं०) थी। ३० अंगुल का एक क्यूबिट, १२० क्युबिट की एक पैमायशी जंजीर और १८० जंजीरों का एक लीग (६.६५ मील) होता था।

सुमेर निवासी भी गणित और इंजिनियरिंग का कुछ ज्ञान रखते थे। संख्याओं के पहाड़ों, वर्गों और घनों की तालिका बनाने में वे समर्थ थे। दशमलव और द्वि-दशमलव प्रणाली का प्रयोग होता था। ६० का विशेष महत्त्व था क्योंकि यह दोनों प्रणालियों के संयोग का परिणाम था और इसीलिए घंटा और मिनट दोनों ६० भागों में विभाजित किये गए थे। भूमि की नाप में प्रयुक्त होनेवाली सरल आकृतियाँ, तथा गणित-सूत्रावलियाँ ज्यामिति के विकास में सहायक हुईं। खेतों, शहरों और उस समय में ज्ञात संसार के भी चित्र खींचे जाते थे। परन्तु यह सब बातें जादू की भावना से ओतप्रोत थीं। ये भावनाएँ आगे चलकर यूरप को भी प्रभावित करने में समर्थ हुईं। शताब्दियों तक यूरोपीय विचारधारा, बेबिलोनिया में प्रचलित इन विश्वासों से प्रभावित रही कि कुछ विशेष संख्याएँ दैवी-शक्ति से सम्पन्न होती हैं और ज्यामिति की आकृतियों द्वारा भविष्य में घटने वाली घटनाओं का ज्ञान पहले ही प्राप्त किया जा सकता है।

चीन और भारत—चीन की प्राचीन सभ्यता, मिश्र और बेबिलोनिया की प्राचीन सभ्यताओं की समकालीन है। परन्तु बहुत दूर होने के कारण, चीन का इन दोनों देशों से उस समय कोई सम्बन्ध नहीं था चीन की कुछ दंतकथाएँ २७०० ई० पू० तक की चर्चा करती हैं परन्तु ऐतिहासिक प्रमाण केवल २००० ई० पू० से ही मिलने लगते हैं। मिट्टी के सुन्दर पात्र तथा कांसा के बर्तन शांग-वंश, १७५० से ११२५ ई०पू०, के समय पाये जाते हैं परन्तु लोहे के हथियार प्रथम प्रथम लगभग ५०० ई० पू० प्रयुक्त किये गये। स्मरण रहे, यूरप में लोहे के हथियार इससे

बहुत पहले ही अस्तित्व में आ चुके थे। १०० ई० पू० तक रान तथा अन्य देशों से चीन का व्यापार सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। चाऊ वंश के समय (११०० से २५० ई० पू०) कृषि तथा सिंचाई जैसी उपयोगी कलाओं के साथ, चीन की सभ्यता एक ऊँचे धरातल पर पहुँचने में समर्थ हुई।

चीन का प्राचीनतम् धर्म 'टेववाद' जादू से बुरी तरह जकड़ा हुआ था। ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में कनफ्यूसियस ने अपेक्षाकृत एक विशुद्ध मत का प्रतिपादन किया। उसने एक संस्था की भी स्थापना की जहाँ धार्मिक और साहित्यिक कलाएँ अलग-अलग लगती थीं। बुद्ध की शिक्षायें चीन में ६४ ई० में पहुँची। आगे चलकर चीन को कागज की स्वतंत्र ईजाद तथा दिक् सूचक यंत्र में प्रयुक्त होनेवाले चुम्बक के आविष्कार का श्रेय प्राप्त हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि भारत की सभ्यता का उदय ईसा से ३००० वर्ष पूर्व सिंधु नदी की घाटी में हुआ। बाहर से आये हुये आर्य, भारत के उत्तरी भाग में वहाँ के कृष्णवर्ण वाले मूल निवासियों के साथ मिल गए। आर्यों की सभ्यता और भाषा को मूल निवासियों ने भी स्वीकार कर लिया। दशमलव प्रणाली बहुत पहले ही से प्रचलित थी परन्तु अंक व्यवस्था जो आज भी सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित है तृतीय शताब्दी में आविष्कृत हुई। यह व्यवस्था पूरब में अरबों द्वारा पहुँची। इसीलिये वहाँ के लोग आज भी इन अङ्कों को 'अरबी अङ्क' कहते हैं। धार्मिक तथा दार्शनिक क्षेत्र में गौतम बुद्ध का नाम (५६० से ४८० ई० पू०) उल्लेखनीय है। उनके काल में प्रसिद्ध चिकित्सकों द्वारा औषधि-शास्त्र की कई पद्धतियाँ स्थापित की गई थीं।

भारत में एक प्रकार के अस्पष्ट परमाणु-सिद्धान्त का प्रतिपादन भी किया गया था। सम्भव है इस क्षेत्र में यूनान के परमाणु-वादियों का भारतीय दार्शनवेत्ताओं पर प्रभाव पड़ा हो। ईसा से एक या दो शताब्दी पूर्व परमाणु कल्पना का विस्तार काल-क्षेत्र में भी किया गया। इस

सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व केवल क्षण-भर रहता है। दूसरे क्षण उसका स्थान एक दूसरी वस्तु, जो प्रथम वस्तु की यथार्थ प्रतिरूप होती है, ले लेता है। इस प्रकार प्रत्येक वस्तु क्षणिक अस्तित्वों की एक माला है अर्थात् काल भी परमाणु-परक है।

क्रीट और माइसेनिया—पूर्वी भूमध्य सागर की सभ्यता के सम्बन्ध में सबसे अधिक विश्वस्त ज्ञान हमें क्रीट में नोसस स्थान पर सर आर्थरइवान्स द्वारा किए गए अन्वेषणों और अनुसन्धान-कार्यों से प्राप्त हो सका है। क्रीट के पौराणिक राजा 'मिनस' के नाम से प्रसिद्ध, 'मिनोन सभ्यता' क्रीट में ही अंकुरित और पल्लवित हुई। आरम्भिक मिनोन सभ्यता, मिश्र की पहली से लेकर छठी पीढ़ियों की समकालीन प्रतीत होती है। मध्य मिनोन बारहवें और अन्तिम मिनोन अठारहवें वंश (१६००—१४०० ई० पू०) की समकालीन रही होगी। ऐसा मालूम पड़ता है कि क्रीट और मिश्र के बीच व्यापार तथा अन्य कारणों से निरन्तर आवागमन होता रहता था।

क्रीट की लिपि मिश्र की लिपि से मिलती जुलती है परन्तु दोनों एक दूसरे के बिल्कुल अनुरूप नहीं हैं। प्राचीनतम् काल के प्राप्त चित्र-अक्षर भी (चित्रों द्वारा व्यक्त अक्षर) ध्वन्यात्मक अर्थ से युक्त होने में समर्थ हो चुके थे। ये अक्षर अभी तक पढ़े नहीं जा सके हैं। परन्तु अन्य साधनों और सूत्रों द्वारा हम क्रीट के सम्बन्ध में बहुत कुछ जान सके हैं। उदाहरणार्थ पहाड़ी दर्रों को पार करने वाली, कुशल इंजिनियरों द्वारा बनाई गई सड़कों, राज-प्रासादों में यांत्रिक, जलीय तथा स्वच्छता सम्बन्धी उपयोगी विज्ञान; उस समय की पोशाक के परिचायक, दीवारों पर खींचे गए चित्रों, हथियारों, कवचों तथा अश्व-चालित हल्के रथों के चिह्न क्रीट की सभ्यता पर काफी प्रकाश डालते हैं।

नोसस का राज-प्रासाद, १४०० ई० पू०, गृह युद्ध अथवा बाहरी शत्रुओं द्वारा नष्ट कर दिया गया। यह बात ध्यान देने योग्य है कि लगभग उसी समय मिश्र पर समुद्र पथ से ऐसे लोग आक्रमण कर रहे

थे जो यूनान पर हमला करने वाली ऐचियन जाति से मिलते-जुलते थे।

पूर्वी भूमध्य सागरीय सभ्यता के अवशेष माइसेनिया के आस-पास भी पाये गए हैं। यह सभ्यता भी क्रीट की सभ्यता के समान है। १४०० ई० पू० ईजियन समुद्र के समीपवर्ती भूभागों में अशांति के कारण नोसस की तरह माइसेनिया शहर भी नष्ट हो गया।

यूनान की प्राचीनतम् दंतकथाओं से पता चलता है कि इस देश पर प्राचीन काल में उत्तर के घास के मैदानों में रहने वाले, भूरे बाल तथा लम्बे क़द वाले ऐचियन जाति के लोगों ने हमला किया था। शायद तत्काल इन लोगों ने डेन्यूब नदी की घाटी से आक्रमण किया था। घोड़ों तथा लोहे के हथियारों की सहायता से ये लोग कांसा के हथियारों से लड़ने वाली मिनोन जाति को परास्त करने में समर्थ हुए। ये लोग मुर्दों को जलाते थे, गाड़ते नहीं थे। कुछ लोगों का मत है कि यूनान पर उपर्युक्त आक्रमण बाल्टिक समुद्र के आस-पास निवास करने वाले तथा लम्बे, गोरे और लम्बी खोपड़ी वाले नार्दिक जाति के लोगों के अपने आदि स्थान को छोड़कर यूरप के चरागाहों तथा घास के मैदानों से होकर इधर-उधर फैलने का प्रथम उदाहरण है। जो भी हो, उनके पीछे निकटतर उत्तरीय प्रदेश से डोरियन जाति के लोग भी ११०० ई० पू० यूनान में आये। इन विभिन्न जातियों के मिश्रण से एक राष्ट्र का निर्माण हुआ; मिनोन सभ्यता का स्थान यूनानी सभ्यता ने ग्रहण किया और तब हम इतिहास के पूर्ण-प्रकाशित काल में प्रवेश करते हैं।

—:o:—

दूसरा अध्याय

यूनान और रोम

यूनान का धर्म—जैसा कि जेनोफेन्स ने ६०० ई० पू० स्वीकार किया था, ईश्वर ने मनुष्य की रचना अपने प्रतिविम्ब के अनुसार की हो या न की हो, परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि मनुष्य ईश्वर की रचना अपने प्रतिविम्ब के अनुसार करता है। यूनान के पौराणिक देवता प्रथम प्रथम होमर और हिसायद की रचनाओं में प्रकट होते हैं और इन सुन्दर आकृति वाले तथा मानव-अनुकूल देवताओं के आचरणों और चरित्रों के आधार पर हम उन मनुष्यों की प्रकृति की कल्पना कर सकते हैं जिन्होंने इन देवताओं की रचना की और जो उन्हें यूनान में लाये। प्रथाओं और विश्वासों में ये लोग मिनोन और माइसेनिया वालों से भिन्न थे और सम्भव है ये लोग उसी ऐचियन जाति के रहे हों जो उत्तर के किसी प्रदेश से यूनान में आई थी।

किसी जाति के जीवन पर देव-कथाओं की अपेक्षा पूजा-मंत्र और पूजन-विधियाँ कहीं अधिक प्रकाश डालती हैं। प्राचीन यूनानी पूजन-विधियों के सम्बन्ध में किये गए आधुनिक अध्ययन से पता चला है कि यूनानियों की आस्तिक या नास्तिक भावनाओं के नीचे पूर्वकालीन जादू सम्बन्धी विश्वास काम कर रहा था। इस जादू के साथ प्रतिकूल प्रेतात्माओं, देवताओं और दैत्यों को प्रसन्न करने तथा मृत्यु और जीवन के वार्षिक चक्र का पर्व मनाकर उपज बढ़ाने की परम्परागत पूजा-विधियाँ भी प्रचलित थीं। इस प्रकार की कुछ प्राचीन रीतियाँ निश्चय ही पूर्ण रूप से प्रचलित थीं। सम्भव है ये रीतियाँ यूनान के सांस्कृतिक (क्लासिकल) काल तक जीवित रही हों और उस हालत में येल्यूसीनियन और

आर्फिक रहस्यवादों के विकास में सहायक सिद्ध हुई हों। इस प्रकार की अंधकार-युक्त एवं भयंकर पृष्ठभूमि में एक ओर यूनानी दर्शन शास्त्र और विज्ञान का तथा दूसरी ओर यूनानी देव-कथाओं का विकास हुआ।

यूनान के सांस्कृतिक काल में, पूर्वकालीन आलिम्पियन धार्मिक विश्वासों की अपेक्षा एक उच्च कोटि के धार्मिक विश्वास की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। इस्चिलस, साफोक्लस और प्लैटो, अन्त में मनोरंजन परन्तु अपरिस्कृत बहु-देव-वाद से सर्वशक्तिशाली एक और सौम्य स्वभाव वाले 'ज़ीयस' की धारणा विकसित करने में समर्थ हुए। परन्तु 'बहुदेववाद' के ह्रास ने प्राचीन काल के जादुओं के पुनरुद्धार तथा नवीन प्रकार के जादुओं के विकास को प्रोत्साहन प्रदान किया। उसी समय कुछ दर्शनवेत्ता दैवी तथा सर्वव्यापी नियमों से नियंत्रित प्रकृति में नियमितता की तलाश कर रहे थे।

आयोनियन दर्शनवेत्ता—एशिया माइनर के आयोनियन दर्शनवेत्ताओं ने प्रथम-प्रथम यूरप में ब्रह्माण्ड के प्राकृतिक तथा बुद्धिगम्य होने की कल्पना की। इनमें से एक मिलेटस निवासी थेल्स था। (५८० ई० पू०) जो दार्शनवेत्ता के अतिरिक्त व्यापारी, राजनीतिज्ञ, इंजिनियर, गणितज्ञ और आकाश-शास्त्र-वेत्ता भी था। ऐसा कहा जाता है कि थेल्स मिश्र भी गया था और वहाँ पर प्रचलित पैमायशी नियमों के आधार पर उसने ज्यामिति शास्त्र को विकसित किया। उसका विचार था कि पृथ्वी किसी असीमित ठोस आधार पर स्थित नहीं है बल्कि एक गोल तख्ते की तरह पानी पर तैरती रहती है। उसने यह भी कल्पना की थी कि जानवरों और पौदों के शरीरों से होता हुआ हवा, मिट्टी और पानी का चक्र निरन्तर चला करता है।

अनैक्सिमेन्डर (५४६ ई० पू०) के अनुसार आकाश, ध्रुवतारा की परिक्रमा करता रहता है और दिखाई देने वाला आकाशीय गुम्बद गोलाकार आकाश का केवल अर्धभाग है। पृथ्वी इस गोलाकार आकाश के मध्य में स्थित है और सूर्य रात्रि के समय पृथ्वी के नीचे

चला जाता है। सृष्टि के आरम्भ के पूर्व वाले मूल द्रव्यों से प्राकृतिक कारणों द्वारा विभिन्न लोकों की रचना हुई। ऐसे कारण जो अब भी क्रियाशील हैं। प्रथम जानवर समुद्री कीचड़ से, तथा मनुष्य, मछलियों के पेट से उत्पन्न हुए। मूल द्रव्य का विनाश नहीं होता परन्तु उससे बनी सम्पूर्ण वस्तुएँ विनाशशील हैं।

कुछ विचारकों का, जैसे एम्पिडाक्लस का विश्वास था कि चार मूलतत्वों पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि के संयोग से विभिन्न पदार्थों की रचना हुई है। एम्पिडाक्लस ने यह दिखाकर कि किसी पात्र में जल तभी प्रवेश कर सकता है जब उसमें से हवा निकलती रहे, यह सिद्ध कर दिया कि वायु भी पार्थिव पदार्थ है।

आयोनियन दर्शन अथेन्स में लगभग ४६० ई० पू० स्मर्ना के अनैक्सागोरस द्वारा लाया गया। अनैक्सागोरस के इस विश्वास ने कि आकाशीय वस्तुओं की प्रकृति भी पृथ्वी की प्रकृति के समान है, आयोनियन दर्शन की यांत्रिक प्रवृत्ति को और प्रबल बना दिया। उसके अनुसार सूर्य हीलियस देवता नहीं है बल्कि एक जलता हुआ पत्थर है।

आयोनिया निवासियों ने उपयोगी कलाओं के क्षेत्र में भी प्रगति की थी। उन्होंने कुम्हार के चक्र, लेद (एक मशीन जो लकड़ी या धातु के एक टुकड़े को घुमाती है; घूमते समय वह टुकड़ा कटता या छिलता रहता है), सेटस्क्वायर, लेवल तथा सूर्य-घड़ी की ईजाद कर ली थी। एक नुकीली छड़ी का प्रयोग सूर्य घड़ी के निर्माण में किया जाता था और उसके द्वारा समय तथा दोपहर के समय सूर्य के आकाश में उच्चतम् होने का काल मालूम कर लिया जाता था।

परमाणु-वादी—आयोनिया वालों के बौद्धिक उत्तराधिकारी परमाणु-वादी थे। इनमें एक ल्यूसिपस था जिसने ईसा से पूर्व पांचवी शताब्दी में किसी समय थ्रेस में ऐब्डेरा के पास एक स्कूल स्थापित किया था। दूसरा डिमाक्रिटस था जिसका जन्म ४६० ई० पू० उपर्युक्त स्थान पर हुआ था। इन विचारकों के विचारों को हम बाद के लेखकों

जैसे अरस्तू के संदर्भों, एपिक्यूरस की रचनाओं तथा रोमन कवि ल्यूक्रिटियस की कविता के सहारे जान सके हैं। परमाणु-सिद्धान्त को एथन्स में एपिक्यूरस (३४१ से २७०) ही लाया था।

परमाणु-वादियों के अनुसार प्रत्येक घटना का एक कारण होता है और वह किसी आवश्यकता-विशेष की पूर्ति के लिए घटित होती है। आयोनियन दार्शनिकों ने कुछ ही मूलतत्वों से विभिन्न पदार्थों के निर्माण की कल्पना की थी। इस कल्पना को परमाणुवादियों ने और आगे बढ़ाया। सब परमाणु एक ही द्रव्य के बने होते हैं। केवल उनके आकार तथा विस्तार एक दूसरे से भिन्न होते हैं। परमाणु का कभी विनाश नहीं होता; ठोस, दृढ़ तथा एकाकी परमाणु अनादि काल से अस्तित्व में रहे हैं और अनन्त काल तक ज्यों के त्यों बने रहेंगे। विभिन्न वस्तुएँ एक दूसरे से गुण में भिन्न इसलिए होती हैं क्योंकि उनकी रचना करने वाले परमाणु, आकार, विस्तार तथा गति की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इन्द्रियों द्वारा अनुभूत जगत् का बाह्य स्वरूप वास्तविक नहीं है। परम्परा के अनुसार हम कहते हैं, यह मीठा है वह कड़वा है; यह ठंडा है वह गरम है; यह अमुक रंग है, वह अमुक रंग है; परन्तु वास्तविकता यह है कि परमाणुओं तथा शून्य आकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

विज्ञान की कार्य-प्रणाली से अनभिज्ञ लोग कभी-कभी ऐसा सोचते हैं कि आज के वैज्ञानिक जिन तथ्यों को बहुत परिश्रम के बाद मालूम करने में सफल हुए हैं, उन तथ्यों से प्राचीन यूनानी पूर्णतया परिचित थे। वे नहीं जानते कि आधुनिक परमाणु-सिद्धान्त जिसका प्रतिपादन डाल्टन ने उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में किया था, निश्चित रासायनिक तथ्यों पर आधारित था, तथा आगे चलकर प्रयोगों द्वारा सत्य प्रमाणित कर दिया गया था। जे० जे० टाम्सन, आस्टन, रदरफोर्ड, मोस्ले तथा बोर द्वारा इस सिद्धान्त का विकास भी प्रयोगों तथा निश्चित तथ्यों के आधार पर ही किया गया। ऐसे स्पष्ट प्रायोगिक प्रमाणों के

अभाव के कारण, डिमाक्रिटस तथा ल्यूक्रिटियस का परमाणु-सिद्धान्त एक सफल अनुमान से अधिक और कुछ नहीं है। यूनानियों के परमाणुओं का कोई दृढ़ आधार नहीं था। इसलिए वे अरस्तू की वैसी ही भ्रम-पूर्ण और निराधार आलोचनाओं के सामने भी टिक न सके। यूनानी परमाणु सिद्धान्त विज्ञान की अपेक्षा दर्शन के अधिक निकट था।

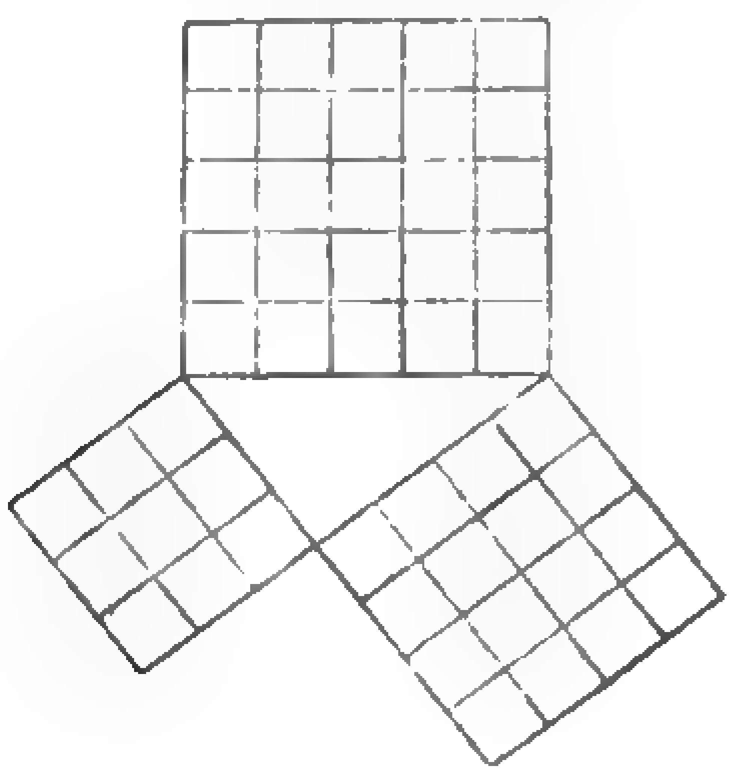
फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि आयोनिया वाले तथा परमाणु-वादी प्राचीन काल के अन्य बहुत से मतावलम्बियों की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले थे। कुछ भी हो, वे विश्व के रहस्यों को बुद्धि द्वारा समझने का प्रयत्न करते थे। वे असफल रहे, परन्तु लक्ष्य के बहुत समीप तक पहुंच जाने का श्रेय उन्हें प्राप्त है।

पाइथागोरस के अनुयायी--आयोनिया वालों तथा परमाणु-वादियों की बुद्धिवादी तथा भौतिक धारणाओं के विपरीत, रहस्यवादी भावनाओं से अधिक प्रभावित विचारकों द्वारा प्रतिपादित और शायद सीधे 'आरफिज्म' से निकली हुई विचारधारायें भी हम पाते हैं। इन विचारकों में पाइथागोरस का एक प्रमुख स्थान था। उसका जन्म सैमास में हुआ था परन्तु ५३० ई० पू० के आस-पास वह इटली के दक्षिण प्रदेश में चला गया था। अपने रहस्यवाद के बावजूद भी वह एक गणितज्ञ तथा प्रयोगकर्त्ता था और इन्हीं प्रयोगों के कारण हेराक्लिटस ने उस पर निकृष्ट कलाओं की आराधना का आरोप लगाया था।

गिनी जाने वाली वस्तुओं को महत्त्व न देकर, प्रथम-प्रथम पाइथागोरस के अनुयायियों ने ही संख्या की परम और स्वतन्त्र सत्ता पर जोर दिया था। इस धारणा ने व्यावहारिक क्षेत्र में अंक-गणित को तथा दार्शनिक क्षेत्र में इस विश्वास को जन्म दिया कि वास्तविक जगत् संख्या पर आधारित है। यद्यपि इस विश्वास का पाइथागोरस द्वारा ही आविष्कृत अनिश्चित संख्याओं से मेल कराना कठिन था। संख्या के महत्व की धारणा और भी पुष्ट हो गई जब ध्वनि सम्बन्धी प्रयोगों से यह प्रकट हुआ कि प्रथम, पंचम तथा अष्टम स्वर उत्पन्न करने वाले तारों

की लम्बाइयां ६: ४: ३: के सरल अनुपात में होती हैं। पृथ्वी से विभिन्न ग्रहों की दूरियाँ भी संगीत स्वरों की भाँति निश्चित एवं क्रमिक अनुपातों में होंगी। चूँकि १० = १ + २ + ३ + ४, इसलिए दस पूर्ण संख्या माना जाता था और आकाश में दस भ्रमणशील प्रकाशित लोकों के होने की कल्पना की जाती थी। चूँकि वस्तुतः केवल नव लोक ही दिखाई देते थे इसलिए यह विश्वास किया जाता था कि कहीं पर एक अदृश्य 'पूरक-पृथ्वी' अवश्य होगी। तथ्यों के साथ इस प्रकार मजाक करने की प्रवृत्ति का अरस्तू ने ठीक ही विरोध किया।

परन्तु पाइथागोरस के अनुयायियों ने पृथ्वी का गोल स्वरूप स्वीकार कर लिया था। उन्होंने अनुभव किया कि पृथ्वी के घूमने के कारण ही आकाशीय लोक घूमते हुए प्रतीत होते हैं। परन्तु उनका विश्वास था कि पूरक-पृथ्वी द्वारा संतुलित होने के कारण, पृथ्वी सूर्य की नहीं बल्कि आकाश में स्थिर एक दूसरे बिन्दु की परिक्रमा करती रहती है। इसलिए कुछ लोगों का यह कथन कि वे अरिस्टार्शस और कापर्निकस द्वारा मालूम किये गए तथ्यों से पूर्णतया परिचित थे, ठीक नहीं है।



पाइथागोरस का सिद्धान्त

पाइथागोरस और उसके अनुयायियों ने तर्क पर आधारित ज्यामिति-शास्त्र को और आगे बढ़ाया। यूक्लिड की प्रथम पुस्तक का सैंतालीसवां साध्य पाइथागोरस के नाम से विख्यात है। यद्यपि समकोण बनाने का एक ऐसा ही नियम मिश्र में बहुत पहले से ही प्रचलित था, फिर भी सम्भव है, स्वयं-सिद्धियों के आधार पर तर्क द्वारा प्रथम-प्रथम पाइथागोरस ने ही यह सिद्ध किया था कि एक समकोण त्रिभुज के कर्ण का वर्ग, शेष दो भुजाओं के वर्गों के योग के बराबर होता है।

कवि और दार्शनिक हिराक्लिटस (५०२ ई० पू०) में हम रहस्य वादी धारणाओं को भी पाते हैं। उसका विचार था कि संसार का निर्माण एक मूल-द्रव्य, आत्मा, से हुआ है और सब वस्तुयें निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं। पुनः एल्कमियन जो एक चिकित्सक था मनुष्य को विशाल ब्रह्माण्ड का सूक्ष्म प्रतिबिम्ब मात्र समझता था। उसका विश्वास था कि मनुष्य शरीर के गठन और ब्रह्माण्ड के गठन में समानता है और उसकी आत्मा संख्याओं के सुव्यवस्थित संयोग का परिणाम है। इस प्रकार की भ्रम-पूर्ण धारणायें सांस्कृतिक (क्लासिकल) और मध्य-युग में भी पुनः प्रकट हुईं।

परन्तु पाइथागोरस के सिद्धान्तों का उसके समकालीन अन्य दार्शनिकों ने विरोध भी किया। एलिया के निवासी ज़ेनो का विश्वास था कि उसने कुछ पहेलियों की सहायता से संख्याओं के सिद्धान्त को निराधार सिद्ध कर दिया था। ऐकलीज़ एक कछुवे का अनुगमन करते-करते उस स्थान पर पहुँचता है जहाँ से कछुवा चला था। परन्तु जब ऐकलीज़ वहाँ पहुँचता है तो कछुवा कुछ दूर और आगे बढ़ जाता है। ऐकलीज़ जब वहाँ पहुँचता है तो कछुवा और आगे बढ़ जाता है। इस प्रकार ऐकलीज़ तर्क करता है कि कछुवा कभी भी पकड़ा नहीं जा सकता। इस तरह की पहेलियां कल्पनातीत सूक्ष्मकाल और स्थान के सम्बन्ध में भ्रमात्मक धारणाओं पर आधारित थीं। इन धारणाओं से उन्नीसवीं

शताब्दी में मुक्ति मिली, जब यह स्वीकार कर लिया गया कि विभिन्न प्रकार की अनन्त राशियाँ होती हैं।

यूनानी चिकित्सा—बहुत सम्भव है कि यूनानी चिकित्सा पर मिश्र का प्रभाव पड़ा रहा हो। दो प्रकार की पद्धतियाँ—एक कास की, दूसरी निडास की प्रचलित थीं। प्रथम पद्धति का प्रकृति-चिकित्सा में बहुत विश्वास था। आज भी यह कहावत प्रसिद्ध है कि एक अच्छे और एक बुरे डाक्टर में बहुत अन्तर है परन्तु एक अच्छे डाक्टर और एक व्यक्ति में जो डाक्टर नहीं है बहुत कम अन्तर है। शायद कास भी इस तथ्य से परिचित था। निडास जो अधिक (या कम) विश्वासी था प्रत्येक रोग के लिए एक विशेष औषधि की तलाश करता था।

यूनानी चिकित्सा को उच्चतम शिखर पर ले जाने का श्रेय हिपोक्रेटीज़ (४६०–३७५ ई० पू०) को प्राप्त है। उसे चिकित्सा-शास्त्र का पिता कहते हैं। सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक क्षेत्र में चिकित्सा शास्त्र की उन्नति जितनी उस समय हुई उतनी उन्नति आधुनिक काल को छोड़कर और किसी काल में नहीं हुई। अनुभवात्मक तर्क पर आधारित निष्कर्षों के साथ पर्यवेक्षणात्मक और प्रयोगात्मक प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। बहुत-सी बीमारियों का ठीक-ठीक वर्णन किया गया और उनके निवारण के उपचार भी बहुत कुछ ठीक-ठीक बताये गए।

सुकरात और प्लैटो—इतिहासज्ञों द्वारा ज्ञान की बहुत कुछ अभिवृद्धि हुई। उन्होंने विभिन्न देशों की दशाओं तथा उनके इतिहासों का वर्णन किया। इनमें सबसे बड़े हिकेटियस (५४०–४७५), हीरोडोटस (४८४–४२५) और थ्यूसिडाइडीज़ (४६०–४००) थे। थ्यूसिडाइडीज़ ने पेलोपोनेशिया के युद्ध का आँखों देखा हाल लिखा तथा एथन्स के प्लेग और ४३१ ई० पूर्व के सूर्य ग्रहण का वर्णन किया।

परमाणुवाद के विरुद्ध एक प्रकार की प्रतिक्रिया का परिणाम यह हुआ कि लोग अनुभूति को ही वास्तविकता समझने लगे। उनका तर्क यह था कि संसार का जो चित्र ये अनुभूतियाँ उपस्थित करती हैं वे

वास्तविक हों या न हों परन्तु इन अनुभूतियों के अस्तित्व के सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। इस प्रकार हम सुकरात(४७०-३९९) को पाते हैं जिसके विचारों का पता मुख्यतया ज़ेनोफोन और प्लैटो की रचनाओं द्वारा चलता है। सुकरात प्रधानतया शिक्षा-शास्त्री था और उन विचारों के खण्डन के लिए जिन्हें वह असत्य समझता था तथा उन विचारों के प्रचार के लिए जिन्हें वह सत्य समझता था वह प्रश्न-उत्तर से युक्त तार्किक वार्तालाप शैली का प्रयोग करता था। अननुकरणीय कटु उक्तियों तथा हास्य की सहायता से अज्ञान, मूर्खता तथा मिथ्याभिमान का पर्दाफाश करने में वह सिद्धहस्त था। यांत्रिक निश्चयात्मक निर्धारणवाद का उसने खण्डन किया। यही नहीं, भौतिक विज्ञान के परस्पर विरोधी सभी सिद्धान्तों को मिथ्या सिद्ध करने का उसने प्रयत्न किया। उसका विश्वास था कि वास्तविकता के ज्ञान की तलाश मानवीय बुद्धि की सीमा के अतिक्रमण करने का व्यर्थ प्रयास है। वह केवल मस्तिष्क को ही अध्ययन का उचित विषय समझता था। उसके अनुसार शरीर का नहीं, बल्कि आत्मा और आन्तरिक जीवन का वास्तविक अस्तित्व है। इस प्रकार एक तरह से उसने एक धार्मिक प्रतिक्रिया का ही नेतृत्व किया परन्तु जनसाधारण ने उस पर अनीश्वरवादी होने का आरोप लगाया। अरस्तू के कथनानुसार सुकरात को दो वैज्ञानिक सफलताओं का श्रेय प्राप्त है। एक सार्वभौमिक परिभाषाओं और दूसरा ज्ञात तथ्यों के आधार पर तर्क द्वारा निष्कर्ष निकालने की शैली का।

सुकरात का शिष्य प्लैटो (४२८–३४८ ई० पू०) मानवीय आवश्यकताओं और इच्छाओं के आधार पर प्रकृति सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता था। उस पर पाइथागोरस के स्वरूप और संख्या सम्बन्धी रहस्यवादी सिद्धान्तों का भी प्रभाव पड़ा था। आकाश-विद्या के सम्बन्ध में उसका ज्ञान बहुत अपूर्ण था यद्यपि उसकी धारणा थी कि अपनी दैवी आत्माओं द्वारा संचालित नक्षत्र आकाश में स्वतंत्र रूप

से चलते रहते हैं। पृथ्वी के चारों ओर सूर्य के पथ के निर्धारण के लिए उसने चक्रों की धारणा को जन्म दिया। इस धारणा को हिपार्कस और टालमी ने आगे चलकर और विकसित किया।

प्लैटो द्वारा कल्पित ब्रह्माण्ड, शरीर, आत्मा और बुद्धि से युक्त एक जीवित प्राणी था। इस प्रकार प्लैटो के अनुसार ब्रह्माण्ड मनुष्य का ही विराट् स्वरूप है। इन धारणाओं पर आधारित प्लैटो का विज्ञान बहुत अंश तक भ्रान्तिपूर्ण कल्पनाओं से जकड़ा हुआ था। यही नहीं, प्रयोगात्मक पद्धति को अपवित्र तथा अभव्य यांत्रिक कला समझ कर वह उसका उपहास भी करता था। परन्तु गणित जैसे तार्किक विषयों को वह बहुत सम्मान की दृष्टि से देखता था। उसने ऋण संख्याओं की कल्पना की तथा रेखा को बिन्दु से निकली हुई मानकर उसने उसका वर्णन किया। न्यूटन की फ्लक्सियन-शैली का यही मूलाधार था।

इस प्रकार प्लैटो अपने प्रसिद्ध, 'बुद्धिगम्य स्वरूप' के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने में समर्थ हुआ। इस सिद्धान्त के अनुसार धारणाएँ या 'स्वरूप' ही वास्तविकता से युक्त होते हैं। यही सिद्धान्त आगे चलकर 'यथार्थवाद' (रियालिज़्म) के नाम से विख्यात हुआ। जब मस्तिष्क वर्गों और परिभाषाओं के सम्बन्ध में तर्क करता है या सोचता है तो उसके सामने किसी एक व्यक्ति का चित्र नहीं होता बल्कि काल्पनिक स्वरूपों का चित्र होता है। प्राकृतिक वस्तुएँ प्रतिक्षण परिवर्तित होती रहती हैं। परन्तु स्वरूप नित्य होते हैं और इसीलिए वह वास्तविक भी हैं। जब हम 'मनुष्य के सम्बन्ध में सोचते हैं तो किसी एक व्यक्ति का चित्र हमारे सामने नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है। यदि एक व्यक्ति 'मनुष्य' है तो दूसरा व्यक्ति मनुष्य नहीं होना चाहिये क्योंकि वह दूसरे व्यक्ति से कुछ भिन्न होता है। इस प्रकार यह कहना असम्भव है कि 'यह' मनुष्य है। यही बात अन्य वस्तुओं जैसे पुस्तक, कुर्सी आदि के सम्बन्ध में भी सत्य है। प्लैटो की 'धारणाओं' या उसके 'स्वरूपों' तथा आधुनिक विज्ञान की

धारणाओं में स्पष्ट ही बहुत समानता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन तथा उन सिद्धान्तों के परस्पर सम्बन्ध निर्धारण के लिए इन्हीं काल्पनिक धारणाओं की सहायता ली जाती है। आधुनिक दर्शन के कुछ रूपों के बहुत निकट प्लैटो पहुंच गया था परन्तु विश्व इतिहास की उस अवस्था में उसका आदर्शवाद प्रायोगिक विज्ञान के विकास में बाधक सिद्ध हुआ।

अरस्तू—अरस्तू (३८४–३४२ ई० पू०) मैकडन के राजा फिलिप के चिकित्सक का पुत्र था और स्वयं सिकन्दर महान् का शिक्षक था। चैलिसडाइस में स्टैगिरा के पास उसका जन्म हुआ था। पुरानी दुनिया के ज्ञान समुच्चायकों और व्यवस्थापकों में उसका सर्वोपरि स्थान था और आधुनिक यूरप के पुनर्जागरण काल (रेनेसां) तक वैज्ञानिक-पाण्डित्य में उसकी टक्कर लेने वाला कोई नहीं हुआ। मध्य-युग के आरम्भिक काल में उसकी रचनाओं के केवल कुछ ही संकलन प्राप्त थे और उस काल के लोग प्रायः प्लैटो का ही अनुकरण करते थे। परन्तु तेरहवीं शताब्दी में अरस्तू की सम्पूर्ण रचनाएँ प्राप्त की जा सकीं और उन्हीं के आधार पर संत अक्विनास ने शास्त्रीय (स्कालास्टिक) दर्शन का प्रतिपादन किया। यह दर्शन चार सौ वर्ष तक यूरप की विचारधारा को प्रभावित करता रहा। इतने समय के बाद ही गैलिलियो और न्यूटन का विज्ञान उस दर्शन का स्थान ग्रहण कर सका। यही कारण है कि ज्ञान के इतिहास में अरस्तू का अप्रतिम स्थान है।

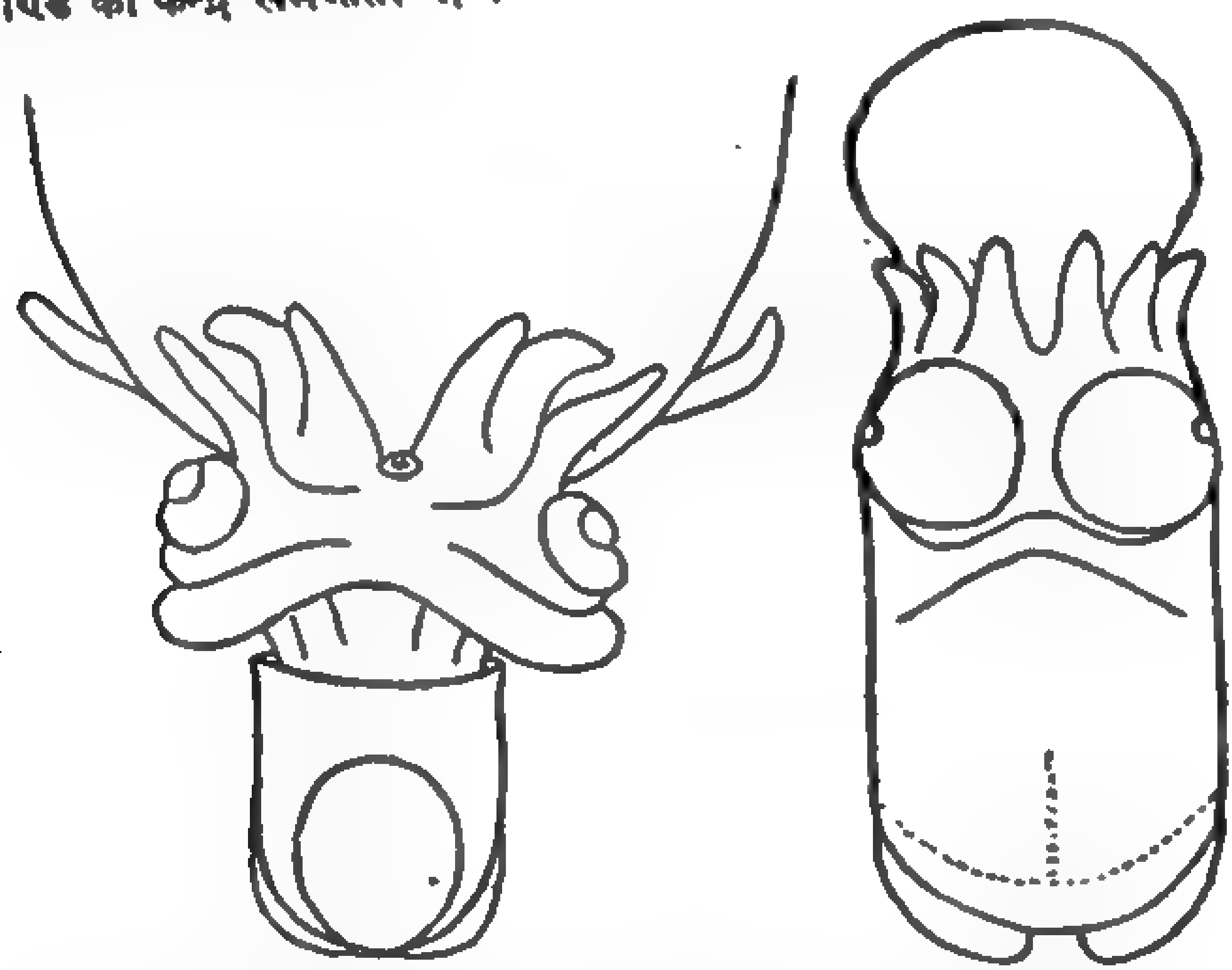
प्रकृति अध्ययन के क्षेत्र में अरस्तू को सबसे अधिक सफलता मिली। अभी हाल तक जीव-शास्त्र के अध्ययन में पर्यवेक्षण का प्रमुख स्थान था; कल्पना की उड़ान या सैद्धान्तिक विवेचन, जो खतरनाक होते हुए भी यूनानियों के प्रिय विषय थे इस प्रकार के अध्ययन के लिए आवश्यक नहीं समझे जाते थे। अरस्तू ने पांच सौ जानवरों का जिक्र किया है। इनमें से कुछ का उसने चित्र भी अंकित किया है। अंडे के भीतर स्थित मुर्गी के बच्चे की विकास-क्रिया का उसने वर्णन किया

तथा हृदय की रचना का पता लगाया। यही नहीं, अंडे के भीतर स्थित बच्चे के हृदय की धड़कन का भी उसने निरीक्षण किया। उसने यह स्वीकार किया कि एक प्रकार के जानवरों को एक समूह में लाने के लिए यह उपादेय होगा यदि वर्गीकरण के समय विभिन्नतासूचक गुणों का अधिक-से-अधिक संख्या में प्रयोग किया जाय।

शरीर शास्त्र की उन्नति में भी अरस्तू ने योग दिया। उसने चीड़ फाड़ की आवश्यकता पर जोर दिया। फेफड़ों की बनावट और उनके कार्यों पर उसने विचार किया और चूँकि उसे रसायन शास्त्र का बहुत ही कम ज्ञान था इसलिए वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सांस लेने का उद्देश्य वायु के सम्पर्क द्वारा रक्त को निरन्तर शीतल रखना है। उसकी यह धारणा यद्यपि भ्रमपूर्ण थी फिर भी उस समय के लिए यही उत्कृष्टतम थी। अरस्तू के लिए मस्तिष्क भी एक शीतलता-प्रदायक अंग था और उसका विचार था कि सोचने की क्रिया हृदय में सम्पादित होती है यद्यपि उसके पहले ऐल्क्मियन और हिपाक्रेटस यह मत व्यक्त कर चुके थे कि सोचने की क्रिया मस्तिष्क में सम्पादित होती है।

अरस्तू ने परमाणु-सिद्धान्त का विरोध किया। डिमाक्रिटस की शिक्षा थी कि रिक्त (शून्य) स्थान में भारी परमाणु हल्के परमाणुओं की अपेक्षा तेजी से गिरेंगे। बिना किसी प्रमाण के ही अरस्तू ने यह मत व्यक्त किया कि शून्य स्थान में भारी और हल्की सब वस्तुएँ समान गति से ही गिरेंगी। परन्तु यह अनुभव के विपरीत है, इसलिए शून्य का अस्तित्व ही नहीं है। चूँकि परमाणु-सिद्धान्त शून्य की धारणा पर आधारित है और शून्य का अस्तित्व ही नहीं है इसलिए परमाणु सिद्धान्त मिथ्या है। यदि प्रत्येक वस्तु का निर्माण एक ही प्रकार के परमाणुओं से हुआ है तो सब वस्तुएँ एक ही समान भारी होनी चाहिए। ऐसी दशा में अपना 'प्राकृतिक स्थान' ढूंढने के लिए कोई वस्तु ऊपर नहीं उठेगी। आर्कमेडिस से पूर्व कोई भी विचारक घनत्व या आपेक्षिक घनत्व का अर्थ नहीं समझ सका था। डिमाक्रिटस के, जो

प्रकृति का वर्णन पार्थिव परमाणुओं की सहायता से करने का अभ्यासी था, यथार्थवादी भौतिक विज्ञान के विपरीत अरस्तू, जगत् का रहस्य द्रव्य, वास्तविकता, पदार्थ, रूप, राशि, गुण आदि धारणाओं के द्वारा समझने का प्रयत्न करता था। ये धारणाएँ उस समय उसके मस्तिष्क के लिए पूर्णतया स्वाभाविक थीं। यूनानियों तथा मध्य युग के लोगों ने भी इन धारणाओं को स्वीकार कर लिया था यद्यपि हम लोगों के लिए ये अस्पष्ट तथा असंतोषजनक प्रतीत होती हैं। अरस्तू ने पृथ्वी का गोल आकार स्वीकार कर लिया था परन्तु फिर भी वह पृथ्वी को ब्रह्माण्ड का केन्द्र समझता था।



सीपिया नामक मछली के क्रमिक विकास को स्पष्ट करने के लिए, अंग विच्छेद के आधार पर अरस्तू द्वारा बनाये हुए चित्र

अरस्तू प्लैटो का शिष्य था परन्तु स्वयं मुख्यतया जानवरों तथा अन्य वस्तुओं के अध्ययन में व्यस्त रहने के कारण वह प्लैटो के आदर्शवादी 'यथार्थवाद' से विरत रहा। उसने एक भिन्न सिद्धान्त का प्रति-

पादन किया जो आगे चलकर संज्ञावाद (नामिनलिज़्म)के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु की स्वतंत्र और वास्तविक सत्ता होती है यद्यपि अरस्तू ने रूप और सार्वभौमिक धारणाओं की वास्तविकता को भी कुछ अंश तक स्वीकार किया। इस प्रकार अरस्तू न केवल प्रकृति शास्त्रवेत्ता था बल्कि दार्शनिक भी था। पूर्ण रूप से प्रमाणों पर ही आधारित होने वाले तथा 'सिलोजिज़्म' (एक प्रकार की तर्क प्रणाली, जिसके तीन अंग होते हैं। उदाहरणार्थ १. सब जानवरों के चार पैर होते हैं २. इस प्राणी के तीन ही पैर हैं, ३. इसलिए यह जानवर नहीं है) से युक्त नियमित तर्क शास्त्र की उसने सृष्टि की। उसकी यह एक महान् सफलता थी और इसका प्रयोग गणित तथा ज्यामिति जैसे तार्किक विषयों के अध्ययन में किया गया। परन्तु इस प्रकार की तर्क प्रणाली प्रायोगिक विज्ञान के लिए अधिक उपयोगी नहीं होती क्योंकि प्रायोगिक विज्ञान में स्वीकृत विश्वासों पर आधारित निष्कर्षों को स्थान नहीं होता। वहाँ तो प्रमाणित तथा निश्चित तथ्यों के प्रकाश में सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता है। निष्कर्षों की आवश्यकता केवल तब होती है जब हम तथ्यों के आधार पर किसी कामचलाऊ सिद्धान्त का प्रतिपादन कर लेते हैं और उस सिद्धान्त के स्वाभाविक परिणामों की परीक्षा प्रयोगों द्वारा करना चाहते हैं। यूनानी तथा मध्य युग के विज्ञान का ध्यान तथ्यों की अपेक्षा मनमानी स्वयंसिद्धियों और समय से पहले ही निष्कर्षों की ओर आकृष्ट करने में अरस्तू का प्रभाव बहुत अंश तक उत्तरदायी था। कुछ लोगों का विचार है कि लगभग दो हजार वर्ष तक विज्ञान की अल्प उन्नति का प्रधान कारण अरस्तू का प्रभाव ही था। फिर भी इसमें अरस्तू का विशेष दोष नहीं है। वह सिद्धान्त को अस्थायी रूप में एक आवश्यक साधनमात्र समझता था। केवल आगे चलकर ही उसके विचारों को अडिग और अचल सिद्धान्तों में परिवर्तित किया गया।

हेलेनिस्टिक-काल—मैकडन के सिकन्दर के साथ हम एक नये

युग में प्रवेश करते हैं। जैसे-जैसे वह पूर्व की ओर बढ़ा, वह अपने साथ यूनानी ज्ञान भी लेता गया और बदले में मिश्र तथा बेबिलोनिया को यूरप के निकटतर सम्पर्क में लाया। उसके साथियों ने प्रथम सहयोगात्मक अन्वेषण द्वारा भूगोल तथा प्राकृतिक इतिहास सम्बन्धी तथ्यों को एकत्रित किया। धीरे-धीरे राष्ट्र एक दूसरे के सम्पर्क में आये। ऊँची जातियों में यह सम्पर्क, ग्रीक संस्कृति और सभ्यता द्वारा और बाकी लोगों में यह सम्पर्क एक सार्वभौमिक यूनानी भाषा द्वारा स्थापित हो सका। सर्वसाधारण की यह भाषा मार्सेलीज़ से लेकर भारत तक तथा कैस्पियन से लेकर कैटेरैक्ट्स तक बोली और समझी जाती थी। व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय, और विचार स्वतन्त्र हो गया।

एथन्स की अनिश्चित दार्शनिक पद्धतियों का स्थान अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक प्रणालियों ने ग्रहण किया। निश्चित एवं सीमित समस्याएँ सामने रखी जाती थीं और अलग-अलग उनका हल मालूम किया जाता था। इस प्रकार प्राकृतिक ज्ञान की वास्तविक उन्नति सम्भव हो सकी। इस परिवर्तन की तुलना उस क्रान्ति से की जा सकती है जो, (गैलिलियो) और न्यूटन के निश्चित विज्ञान द्वारा मध्ययुगीय पाण्डित्य-वाद के स्थानान्तरित हो जाने पर घटित हुई। यद्यपि इस परिवर्तन का प्रभाव अन्य स्थानों पर भी पड़ा परन्तु इस नवीन प्रकार के अध्ययन का केन्द्र सिकन्दरिया था। इस मिश्री शहर की स्थापना ३३२ ई० पू० सिकन्दर महान् ने की थी।

यद्यपि इस सम्मिश्रण में यूनानी विचारों की ही प्रधानता थी फिर भी यूनानी अनुवादों द्वारा लोग बेबिलोनिया की आकाश-विद्या से परिचित हो गये। इस आकाश-विद्या के साथ चैल्डियन ज्योतिष की भ्रमात्मक धारणाओं ने भी प्रवेश किया। विराट् ब्रह्माण्ड का मनुष्य सूक्ष्म रूप है, इस निराधार कल्पना ने इस विश्वास को दृढ़ कर दिया कि चलायमान ग्रह मनुष्य का नियंत्रण करते हैं और निरंकुश भाग्य मनुष्यों, देवताओं तथा नक्षत्रों, इन सब पर शासन करता है। बेबिलोनिया

के इस भयंकर विश्वास से त्राण पाने के लिये लोग किसी भी विचार धारा को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत थे। सबसे पहले उनकी दृष्टि आकाश की ओर गई जहाँ असंख्य लोकों ने भाग्य से छुटकारा प्राप्त करने की एक क्षीण आशा प्रदान की। इसके बाद उन्होंने तंत्र का सहारा लिया क्योंकि तांत्रिकों का दावा था कि वे प्रकृति को वश में कर सकते हैं। उस काल के लेखों में सम्मोहन मंत्रों की अधिकता पाई गई है। परन्तु स्मरण रहे, यद्यपि यह कुछ हास्यास्पद-सा प्रतीत होता है, फिर भी इंगलैण्ड और वेल्स में सभ्यता के आवरण के कुछ ही नीचे आज भी जादू, सम्मोहन और वशीकरण सम्बन्धी विश्वास पाया जाता है।

साथ ही साथ पूर्व के रहस्यात्मक धर्मों का भी यूरप में प्रसार हुआ। प्रागैतिहासिक प्रथाओं पर आधारित इन धर्मों का उद्देश्य एक आश्रयदाता ईश्वर से व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित कर, मोक्ष प्राप्त करना था। इस ईश्वर के कई नाम थे और वह मरकर पुनः जीवित हुआ था। ओलम्पियन और स्थानीय देवताओं के ह्रास के पश्चात् ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व से लेकर इसाई मत के आरम्भ तक मनुष्य की विकासोन्मुख धार्मिक भावनाओं का पोषण रहस्यात्मक धर्म ही करते रहे।

ज्योतिष, तंत्र और धर्म बहुतों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, दर्शन और विज्ञान केवल कुछ थोड़े से ही लोगों की निष्ठा के पात्र हो पाते हैं। हेलेन का प्रमुख दर्शन 'स्टोइसिज़्म' था जिसका प्रतिपादन लगभग ३१५ ई० पू० ज़ेनो ने एथन्स में किया था। इसका प्रसार पूरब और पश्चिम दोनों में हुआ और अन्त में यही रोम का मुख्य दर्शन स्वीकृत किया गया। यह दर्शन बहुदेववाद तथा नैतिकता की उच्च एवं कठोर भावना पर आधारित था।

स्टोइसिज़्म को विज्ञान की कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी। सैमास निवासी एपिक्यूरस (३४२–२७० ई०पू०) द्वारा किये गए परमाणुवाद के पुनरुत्थान में हमें विज्ञान की झाँकी मिलती है। उसकी रचनाओं ने

परमाणुवाद के मूल विश्वासों को जीवित रखा। दो सौ वर्ष बाद ल्यूक्रिटियस ने उन विश्वासों को लिपिबद्ध किया। एपिक्यूरस ने, प्लैटो के आदर्शवादी दर्शन के विरुद्ध उत्पन्न प्रतिक्रिया का नेतृत्व किया। उसका विश्वास था कि प्रत्येक वस्तु पार्थिव है और मृत्यु जीवन का अन्त है। देवता हैं, परन्तु वे प्रकृति द्वारा उत्पन्न किये गये हैं; उन्होंने प्रकृति की सृष्टि नहीं की है। मनुष्य से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। मनुष्य स्वतन्त्र है; उस पर न तो निरंकुश देवताओं का, न हृदय-हीन भाग्य का ही अधिकार है। मनुष्य की अनुभूति ही वास्तविकता की कसौटी है। डिमाक्रिटस की ही भांति एपिक्यूरस भी सृष्टि की रचना, परमाणुओं और शून्य से हुई मानता था। असीमित आकाश और अनन्त काल में परमाणुओं के सांयोगिक सम्मिलन के परिणाम स्वरूप उत्पन्न अनेक लोकों में यह पृथ्वी भी एक लोक है। इस प्रकार एपिक्यूरस ने परमाणुवाद एवं अविकसित अनुभूतिवाद की आधारशिला पर एक अस्थिर परन्तु भड़कीले आशावाद-भवन का निर्माण किया।

ज्यामिति—यूनानी मस्तिष्क की शायद सबसे अधिक सफल और विशेषतायुक्त उपज ज्यामिति थी। मिश्र की भू-मापन क्रिया पर आधारित इस शास्त्र का आरम्भ लगभग ५८० ई० पू० थेल्स ने किया था। पाइथागोरस ने इसे और विकसित किया तथा प्लैटो और अरस्तू ने इसका समर्थन किया। तत्कालीन ज्यामिति सम्बन्धी ज्ञान को सिकन्दरिया के यूक्लिड ने इस प्रकार व्यवस्थित और संगठित किया कि उसकी रचना आज भी ज्यामिति की प्रामाणिक पाठ्य पुस्तक के रूप में प्रचलित है। कुछ थोड़ी सी स्वयंसिद्धियों के आधार पर, जिनकी सत्यता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता, तर्क द्वारा उपपत्तियों के रूप में बहुत से निष्कर्ष निकाले गये। निष्कर्षात्मक विज्ञान का यह एक उच्चतम उदाहरण है।

परन्तु आज हम निष्कर्षात्मक ज्यामिति का अध्ययन यूक्लिड से भिन्न दो सम्भव दृष्टिकोणों में से किसी भी एक दृष्टिकोण से कर सकते हैं।

प्रथम, प्रयोगात्मक और पर्यवेक्षणात्मक विज्ञान के विकास में ज्यामिति की निष्कर्षात्मक प्रणाली एक आवश्यक साधन है। विभिन्न स्वयंसिद्धियां और उपपत्तियाँ केवल कामचलाऊ नियम मात्र हैं। स्थान के गुण सम्बन्धी इन नियमों को कल्पना नित्यप्रति घटनेवाली घटनाओं और क्रियाओं के आधार पर की जाती है। पर्यवेक्षक, इन नियमों की सत्यता पर अन्य बहुत से निष्कर्षों को निकालता है। विचारों की इस शृंखला से ज्यामिति शास्त्र की उत्पत्ति होती है। इस शृंखला को पूर्ण करने के लिये यह आवश्यक है कि इन निष्कर्षों के सत्यता की जांच प्रयोगों और निरीक्षणों की कसौटी पर की जाय। प्रायोगिक विज्ञान के विकास को यही सर्वस्वीकृत प्रणाली है। अभी हाल तक आकाश विद्या यूक्लिड की ज्यामिति का समर्थन करती रही। परन्तु स्थान सम्बन्धी आइन्स्टीन के एक नवीन सिद्धान्त तथा आधुनिक शक्तिशाली दूरबीनों ने यह सिद्ध कर दिया कि यद्यपि यूक्लिड की स्थान सम्बन्धी कल्पना बहुत अंश तक ठीक है फिर भी वह सत्य का पूर्ण दर्शन कराने में असमर्थ है। अन्तिम अग्नि परीक्षा में उपर्युक्त कल्पना असफल हो जाती है।

ज्यामिति सम्बन्धी समस्या पर हम एक दूसरे दृष्टिकोण से भी विचार कर सकते हैं। निरीक्षण एक विशेष प्रकार के स्थान की ओर संकेत करता है। उस स्थान के आधार पर मस्तिष्क एक आदर्श स्थान की कल्पना करता है। यह आदर्श स्थान प्रत्येक दृष्टि से वास्तविक स्थान के समान प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में, हम प्रकृति की उपेक्षा करते हुए उयुक्त कल्पना के आधार पर तर्क-संगत और स्वाभाविक निष्कर्षों को निकाल सकते हैं। यह प्रश्न कि इन निष्कर्षों का समर्थन वास्तविक तथ्यों द्वारा होता है कि नहीं, असंगत है। उदाहरणार्थ यदि आकाश (स्थान) को त्रिधा विस्तृत मान लिया जाय, तो एक विशेष प्रकार के परिणाम (यूक्लिड के परिणाम) उपलब्ध होते हैं। परन्तु यदि स्थान को बहुदिशा विस्तृत मान लिया जाय और समस्या पर नये सिरे से विचार किया जाय, तो भिन्न प्रकार के परिणाम प्राप्त होते हैं। विशुद्ध गणित

की सहायता से इस प्रकार का अध्ययन एक मनोरंजक विषय है परन्तु प्रकृति या प्रायोगिक विज्ञान से उसका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

उपर्युक्त दोनों प्रणालियाँ मुख्यतया आधुनिक हैं। परन्तु यूनानियों ने केवल इस सरल विश्वास को स्वीकार किया कि स्थान जैसा प्रतीत होता है वैसा ही वह वास्तव में है भी और यूक्लिड की ज्यामिति सम्बन्धी स्वयंसिद्धियाँ इतनी स्पष्ट हैं कि उनके लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। फिर भी ज्यामिति यूनानियों की एक महान् कृति है और गणित-प्रधान विज्ञान में उन्होंने इस प्रकार जो कदम उठाया उसे पीछे हटाने की कभी भी आवश्यकता नहीं पड़ी।

आर्कमिडिस, अरिस्टार्शस और हिपार्शस—और अब हम एक ऐसे व्यक्ति सिराक्यूज़ निवासी आर्कमिडिस (२८७—२१२) का वर्णन करेंगे जिसका यूनानी वैज्ञानिकों में एक विशिष्ट और शायद उच्चतम स्थान है। उसीने यंत्र विज्ञान और स्थिरद्रव-विज्ञान की नींव डाली थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस यूनानी वैज्ञानिक का दृष्टिकोण पूर्णतया वैज्ञानिक था। उपर्युक्त यंत्र विज्ञान और स्थिर-द्रव-विज्ञान का विकास व्यावहारिक कलाओं से हुआ। प्रयोग एवं ज्यामिति की निष्कर्षात्मक प्रणाली की सहायता से आर्कमिडिस उपर्युक्त प्रकार के आरम्भिक ज्ञान को एक निश्चित रूप देने में समर्थ हुआ। उसने पहले कामचलाऊ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। उसके बाद उसने उन सिद्धान्तों के स्वाभाविक परिणामों का निरूपण किया। तत्पश्चात् उसने प्रयोग एवं पर्यवेक्षण द्वारा यह मालूम करने का प्रयत्न किया कि वे परिणाम और निष्कर्ष सत्य के निकट हैं कि नहीं।

आर्कमिडिस से दो सहस्र वर्ष पूर्व असीरिया और मिश्र की प्रस्तर-मूर्तियों में लीवर (उत्तोलक) को प्रयुक्त करने की क्रिया प्रदर्शित की गई थी। परन्तु चूँकि यूनानियों की निष्कर्षात्मक प्रणाली की ओर विशेष प्रवृत्ति थी, आर्कमिडिस ने निम्नांकित स्वयंसिद्धियों द्वारा जिन्हें वह प्रत्यक्ष ही सत्य समझता था, लीवर के नियम का प्रतिपादन किया।

(१) तुला-दंड के मध्य बिन्दु से समान दूरी पर स्थित समान वजन एक दूसरे से पूर्णतया सन्तुलित होते हैं। (२) दो समान वजन यदि मध्य-बिन्दु से असमान दूरी पर स्थित हों तो अधिक दूरी पर स्थित वजन नीचे की ओर जाता है। इन दोनों स्वयंसिद्धियों में उत्तोलक सम्बन्धी नियम तथा गुरुत्व केन्द्र का सिद्धान्त, दोनों निहित हैं। सम्प्रति उत्तोलक-नियम प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जाता है और इस नियम को सत्य मानकर अन्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इस प्रकार भेद केवल विषय के प्रतिपादन करने की शैली में है।

घनत्व की धारणा से, जिससे अरस्तू अपरिचित था और जिससे अपरिचित होने के कारण ही उसे इधर-उधर बहुत भटकना पड़ा, आर्कमिडिस स्पष्ट रूप से परिचित हो गया। किस्सा यों है कि हीरो नामक नरेश ने राजमुकुट बनाने के लिये कारीगरों को कुछ सोना दिया था। जब राजमुकुट बनकर आया तो उसे संदेह हो गया कि कारीगरों ने सोना के साथ चाँदी मिलाकर मुकुट का निर्माण किया है। उसने मुकुट की परीक्षा करने का भार आर्कमिडिस को सौंप दिया। एक दिन आर्कमिडिस स्नान-कुण्ड में स्नान कर रहा था और इस समस्या पर विचार भी कर रहा था। उसी समय उसने देखा कि उसके शरीर के आयतन के बराबर पानी कुण्ड में स्थानान्तरित हो गया। तत्काल यह बात उसके मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंध गई कि शुद्ध सोने का बना मुकुट, समान वजन वाले चाँदी और सोने के मिश्रण से बने मुकुट की अपेक्षा अधिक पानी स्थानान्तरित करेगा क्योंकि चाँदी सोने की अपेक्षा हल्की होती है और समान वजन वाले चाँदी के एक टुकड़े का आयतन सोने के टुकड़े से अधिक होगा। इस बात से उसे इतनी प्रसन्नता हुई कि कहते हैं, वह स्नान कुण्ड से नंगा ही निकलकर 'मैं जान गया' कहता हुआ राजप्रासाद की ओर दौड़ पड़ा। जब कोई वस्तु किसी द्रव में पूर्ण या आंशिक रूप में डूबी हुई तैरती है तो उसका वजन स्थानान्तरित द्रव के वजन के बराबर होता है। जब कोई वस्तु किसी



प्लेट २ आर्कमिडीज़

द्रव में तोली जाती है तो उसके वज़न में कमी होती है और यह कमी उस वस्तु द्वारा स्थानान्तरित द्रव के वजन के बराबर होती है। यही आर्कमिडिस का सिद्धान्त है।

परन्तु आर्कमिडिस की दिलचस्पी विशेषतया ज्यामिति में थी और वह अपने ज्यामिति सम्बन्धी आविष्कारों को उपयोगी कलाओं—यौगिक घिर्नी, द्रवीय पेच, दाहक दर्पण—की अपेक्षा अधिक महत्त्व देता था, यद्यपि वह जनता में इन्हीं उपयोगी कलाओं के लिये ही प्रसिद्ध था। परन्तु आर्कमिडिस इन कलाओं को केवल मनोरंजन का साधन मात्र समझता था। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त होने के कारण उसकी रचनाओं की पुनर्जागरण में बड़ी मांग थी। विशेषकर लियोनार्डो डा विन्सी उनका बहुत प्रेमी था। परन्तु उसकी रचनाएँ लगभग लुप्त-सी हो गई थीं। एक समय तो नवीं या दसवीं शताब्दी का केवल एक ही हस्तलेख प्राप्य था जो बाद में लुप्त हो गया। परन्तु उस लेख की तीन प्रतियाँ बना ली गई थीं और उन्हीं से आदि रचना का पता लगाया गया। सिराक्यूज़ की चढ़ाई के समय २१२ ई०पू० आर्कमिडिस मारा गया। ७५ ई० पू० उसकी कब्र का पता सिसरो ने लगाया।

इसी बीच, आर्कमिडिस के समकालीन अरिस्टार्शस ने (३१०–२३०) जो सैमास का रहने वाला था अपनी पुस्तक 'सूर्य और चन्द्रमा के विस्तार और उनकी दूरियाँ' में आकाश विद्या को काफी आगे बढ़ाया। यह पुस्तक आज भी प्राप्य है। चन्द्रग्रहण और अर्द्ध चन्द्र के अध्ययन के लिये ज्यामिति का प्रयोग कर अरिस्टार्शस ने यह निष्कर्ष निकाला कि सूर्य और पृथ्वी के व्यासों का अनुपात १९:३ से अधिक और ४३:६ से कम है, अर्थात् लगभग ७:१ के बराबर है। यद्यपि यह अनुपात वास्तविक अनुपात से बहुत ही कम है फिर भी यह अनुपात मालूम करने का तरीका प्रशंसनीय है। यही नहीं, यह निष्कर्ष कि सूर्य पृथ्वी से बड़ा है, स्वयं एक क्रान्तिकारी तथ्य था। परन्तु आर्कमिडिस और प्लुटार्च का कहना था कि अरिस्टार्शस आवश्यकता से अधिक बढ़ गया था। अरिस्टार्शस ने

इस सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया कि सूर्य तथा स्थिर नक्षत्र अचल हैं और पृथ्वी एक वृत्ताकार कक्ष पर सूर्य की परिक्रमा किया करती है। सर टामस हीथ ने अरिस्टार्कस को 'प्राचीन काल का कापर्निकस' कहा है।

परन्तु अरिस्टार्कस अपने समय से बहुत आगे था, यद्यपि प्लुटार्क के अनुसार बेबिलोनिया निवासी सेल्युकस ईसा से पूर्व द्वितीय शताब्दी में सूर्य को केन्द्र में स्थित मानता था और अपने मत को पुष्टि के लिए नये प्रमाणों की खोज में था। परन्तु अन्य लोगों का, यहाँ तक कि दार्शनिकों और आकाश-विद्या विशारदों का भी यह दृढ़ विश्वास था कि पृथ्वी ब्रह्माण्ड के केन्द्र में अवस्थित है

हिपार्कस का जन्म निकिया में हुआ था और उसने रोड्स तथा सिकन्दरिया में १६० से लेकर १२७ ई०पू० तक काम किया। उसने प्राचीन काल के यूनानी तथा बेबिलोनियन वैज्ञानिकों द्वारा मालूम किये गये तथ्यों का उपयोग किया और बहुत-से यंत्रों का निर्माण किया जिनकी सहायता से वह प्रकृति का निरीक्षण ठीक-ठीक कर सका। बेबिलोनिया वालों की ही भांति उसने भी वृत्त को ३६० अंशों में विभाजित किया। उसने इक्वीनाक्सों को भी मालूम किया। उसने इसके प्रीसीशन की मात्रा तथा चन्द्रमा की दूरी को भी लगभग ठीक-ठीक मालूम किया। वह एक कुशल गणितज्ञ था और उसने सामान्य एवं गोलाकार, दोनों प्रकार की ट्रिग्नामेट्री की नींव डाली।

हिपार्कस की ब्रह्माण्ड-व्यवस्था सम्बन्धी कल्पना मूलतः गलत थी। परन्तु यह कल्पना कि सूर्य, चन्द्रमा और ग्रह वृत्ताकार कक्षों पर पृथ्वी की परिक्रमा किया करते हैं, बहुत से तथ्यों का स्पष्टीकरण करने में समर्थ थी। सिकन्दरिया निवासी टालमी ने १२७ और १५१ ई० के बीच इस कल्पना को और निश्चित रूप दिया और यह कल्पना सोलहवीं शताब्दी तक लोगों के मस्तिष्कों को प्रभावित करती रही। जब तक पृथ्वी

ब्रह्माण्ड के केन्द्र में अवस्थित मानी जाती रही तब तक अनिवार्य रूप से पुनः पुनः ज्योतिष की भ्रमात्मक धारणाएँ बल पाती रहीं। प्लैटो ने ज्योतिष की चर्चा सुनी थी परन्तु वास्तव में प्रथम-प्रथम ज्योतिष एथन्स में २८० ई० पू० बेरासस द्वारा बेबिलोनिया से लाया गया था। वहां वह विभिन्न युगों में पुनः-पुनः प्रसिद्धि प्राप्त करता रहा। कापर्निकस, गैलिलियो और न्यूटन की वैज्ञानिक सफलताओं द्वारा इसका अन्त हो जाना चाहिये था परन्तु आश्चर्य की बात है कि आज भी प्रायः प्रत्येक जाति के अर्द्ध शिक्षित तथा अशिक्षित लोगों का ज्योतिष में विश्वास है।

सिकन्दरिया का स्कूल—सिकन्दर के एक सेनापति टालमी ने (आकाश शास्त्र वेत्ता टालमी नहीं) सिकन्दरिया में एक यूनानी राज-वंश की नींव डाली जो क्लेयोपेट्रा की मृत्यु (३० ई० पू०) तक चलता रहा। प्रथम टालमी का शासन-काल, (३२३–२८५ ई० पू०) ज्यामिति शास्त्र वेत्ता यूक्लिड तथा शल्य-शास्त्र तथा औषधि-शास्त्र वेत्ता हिराफिलस के कारण प्रसिद्ध है।

ई० पू० तृतीय शताब्दी के मध्य, सिकन्दरिया में प्रसिद्ध संग्रहालय स्थापित किया गया। इस संग्रहालय के साहित्य, गणित, आकाश शास्त्र और औषधि ये चार विभाग थे जिनमें शिक्षण और अनुसंधान दोनों कार्य होते थे। ये सभी विभाग प्राचीन काल के महानतम पुस्तकालय का प्रयोग करते थे। इस पुस्तकालय में लगभग ४००००० पुस्तकें और रचनाएँ थीं और इसकी गणना संसार के आश्चर्यों में होती थी। परन्तु इस पुस्तकालय का एक अंश ३६० ई० में ईसाई धर्माध्यक्ष थियाफिलस द्वारा नष्ट कर दिया गया क्योंकि उसके अनुसार वह पुस्तकालय ईसाई मत विरोधी लोगों की विद्या का गढ़ था। पुस्तकालय का शेष भाग संयोगवश या जान-बूझकर ६५० ई० में मुसलमानों द्वारा नष्ट कर दिया गया। इस पुस्तकालय का संहार मानव मस्तिष्क की महानतम क्षति थी। पुस्तकालय में असंख्य लेखकों की रचनाएँ रही

होंगी जो सर्वदा के लिए लुप्त हो गईं। कुछ लेखकों के तो नाम भी सर्वदा के लिए लुप्त हो गए।

चिकित्सा-क्षेत्र में हिराफिलस, इरैसिस्ट्रैटस और यूडेमस के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हिराफिलस प्राचीनतम शल्यशास्त्र-वेत्ता था और हियाक्रेट्स के बाद सबसे अधिक प्रसिद्ध चिकित्सक था। उसने मस्तिष्क, शरीर-तन्तुओं, आँख, आंतरिक अंगों, शिराओं और धमनियों का वर्णन किया और यह सिद्ध किया कि सोचने की क्रिया मस्तिष्क द्वारा संपादित होती है, हृदय द्वारा नहीं जैसा कि अरस्तू का मत था। इरैसिस्ट्रैटस भी जो हिराफिलस का समकालीन था मानव शरीर को चीरने-फाड़ने में सिद्धहस्त था। उसने जानवरों पर बहुत-से प्रयोग किये और शरीर शास्त्र को प्रथम-प्रथम एक अलग और स्वतन्त्र विषय मानकर उसका निरुपण किया। उसके मत से परमाणुवाद और उसके ऊपर आधारित दार्शनिक दृष्टिकोण, रहस्यमय चिकित्सा शास्त्र के प्रतिकूल थे।

ईसा से पूर्व चतुर्थ शताब्दी में भूगोल का अध्ययन आरम्भ हुआ और आगे चलकर भूगोल के ज्ञान में काफी वृद्धि हुई। भूमध्य सागर के पश्चिमी द्वार पर स्थित हरक्यूल्स के स्तम्भों से होता हुआ, हैनो ने अफ्रीका के पश्चिमी समुद्र तट के समीपवर्ती समुद्र को नौका द्वारा यात्रा की। पाइथियस ने ब्रिटेन के चारों ओर यात्रा की। सिकन्दर भारतवर्ष तक गया। आम तौर से यह स्वीकार किया जाने लगा कि पृथ्वी गोल है और उसके विस्तार के सम्बन्ध में भी कुछ अनुमान लगाया गया। विभिन्न अक्षांशों पर दिन और रात की भिन्न-भिन्न लम्बाइयों ने इक्फैन्टस को यह कल्पना करने के लिए प्रेरित किया कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती रहती है। परन्तु पृथ्वी अभी भी आकाश के केन्द्र में अवस्थित मानी जाती थी।

भूगोल के भौतिक पक्ष का प्रथम महान् ज्ञाता इरैटोस्थेनिस था जो सिकन्दरिया के संग्रहालय का पुस्तकालयाध्यक्ष था। एक ही देशान्तर

पर स्थित दो स्थानों के अक्षांशों और उनके बीच की दूरी को मालूम कर उसने पृथ्वी के वृत्त को मालूम किया। उसके द्वारा मालूम किया गया २४००० मील पृथ्वी का वृत्त आधुनिक परिमाण (२४८०० मील) के बराबर था। उसका अनुमान था कि पश्चिमी महासागर के मध्य में एक नया महाद्वीप (नया संसार) होगा। परन्तु उसके बाद पोसीडो-नियस ने पृथ्वी के विस्तार का ग़लत और कम अनुमान करते हुए यह घोषणा की कि यदि कोई अन्वेषक पश्चिम की ओर समुद्र मार्ग से सात या आठ हज़ार मील जाय तो वह भारत पहुँच जायगा। इसी घोषणा ने आगे चलकर कोलम्बस को प्रेरित किया। टालमी भी एक भूगोल शास्त्र एवं आकाश शास्त्र वेत्ता था और उसने उस काल में ज्ञात संसार का चित्र बनाया।

गणित में निपुण अपालोनियस ने ज्यामिति का उपयोग विभिन्न प्रकार की वक्र रेखाओं के अध्ययन के लिए किया। यंत्र-विद्या के ज्ञाता हिरो ने भरे हुए हौज़ से पानी निकालने वाली टेढ़ी नली, तापदर्शक और भाप के खिलौने जैसे इंजिन की ईजाद की।

कीमिया—प्राचीन काल में उद्योग धंधों का विकास नकली रत्नों तथा अन्य बहुमूल्य धातुओं के निर्माण के उद्देश्य से सम्भव हो सका क्योंकि असली रत्न साधारण जनता की क्रय शक्ति के बाहर थे। सोना तथा चांदी जैसी दिखाई देने वाली, सस्ती मिलावटी धातुओं को बनाने का प्रयत्न किया जाता था। प्लैटो तथा अन्य दार्शनिकों का विश्वास था कि पदार्थ का कोई महत्व नहीं है; पदार्थों के गुण ही वास्तविक हैं। रंग स्थिर करने वाले नमक, धातुओं को खरोंच देते हैं। यदि पारा आर्सेनिक या ऐन्टीमनी द्वारा सफेद किये हुए टिन, सीसा, ताँबा और लोहा में सोने की थोड़ी-सी मात्रा मिला दी जाय और उसमें खरोंच लगा दी जाय तो खरोंच वाला स्थान स्वर्ण जैसा प्रतीत होने लगता है। लोगों का विश्वास था कि सोने की थोड़ी-सी मात्रा, निकृष्ट धातुओं को भी स्वर्ण में परिवर्तित कर देती है। ऐसे तथ्य और ऐसी धारणाएँ,

ऐसे ही अन्य तथ्यों और धारणाओं और विशेषकर ज्योतिष से बल प्राप्त करती रहीं। सूर्य अपना प्रतिबिम्ब, स्वर्ण, पृथ्वी में उत्पन्न करता है। चन्द्रमा, वीनस, मर्करी, मंगल, जुपिटर और सैटर्न क्रम से चाँदी, ताँबा, पारा, लोहा, टिन और शीशा का प्रतिनिधित्व करते हैं। देवतागण ओलम्पिस पर्वत से आकाश में खदेड़ दिये गए हैं परन्तु वे सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों के रूप में वहाँ से भी मनुष्य के भाग्य का नियन्त्रण करते हैं और मूल्यवान धातुओं को प्राप्त करने में वे उसकी सहायता करते हैं। गुण परिवर्तित किये जा सकते हैं और असल में गुण ही पदार्थों को जान हैं, या यों कहिये कि गुण ही पदार्थ हैं। इस तरह के भ्रमात्मक विश्वासों और प्रयोगों के आधार पर कीमियागरों ने, ज्योतिषियों के सहयोग से, सब रोगों की एक औषधि, 'अमृत' तथा निकृष्ट धातुओं को स्वर्ण में परिवर्तित करने वाले 'पारस' को प्राप्त करने का हास्यास्पद प्रयत्न आरम्भ किया। यद्यपि उनका प्रयास असफल सिद्ध हुआ परन्तु स्मरण रहे, ज्योतिषियों के कार्यों से आकाश विद्या और कीमियागरों के आविष्कारों से रसायन शास्त्र का विकास सम्भव हो सका। ज्योतिष प्रथम-प्रथम बेबिलोन से आया परन्तु कीमिया स्पष्ट रूप से प्रथम-प्रथम ईसा की प्रथम शताब्दी में सिकन्दरिया में प्रकट हुई और वहाँ तीन सौ वर्षों तक आश्रय पाती रही। सिकन्दरिया के कीमियागर न तो मूर्ख थे न धूर्त; वे उस काल की दार्शनिक धारणाओं के आधार पर काम करने वाले सच्चे प्रयोगकर्ता थे। यदि दोष था, तो वह दोष उस काल के दर्शन का था। अरबों और यूरप निवासियों के बीच कीमिया जब पुनर्जीवित हुई, तब तक दर्शन और शब्दावली दोनों पूर्णतया परिवर्तित हो चुके थे। नये कीमियागर, जो अपने पूर्ववर्ती सिकन्दरिया के कीमियागरों के कार्यों को समझने में असमर्थ थे, न केवल पदार्थों के गुणों को परिवर्तित करना चाहते थे बल्कि स्वयं पदार्थों को ही परिवर्तित करना चाहते थे। अपनी असफलताओं को उन्होंने रहस्यात्मक शब्द-जाल में छिपाने का प्रयत्न किया।

रोमन युग—रोम निवासी बड़े ही निपुण वैधानिक, सैनिक और शासक थे, परन्तु रचनात्मक बौद्धिक शक्ति की उनमें कमी थी। रोम वालों ने कला, विज्ञान और औषधि-ज्ञान यूनानियों से उधार लिया था। जीवन के लिए विज्ञान जहाँ तक उपयोगी था वहीं तक वे उसका अनुगमन करते थे। विज्ञान का मूल आधार, ज्ञान के लिए ही ज्ञान, उनकी दृष्टि में कोई महत्व नहीं रखता था। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ ही पीढ़ियों में विशुद्ध विज्ञान की और उसके बाद उपयोगी विज्ञान की भी प्रगति बन्द हो गई।

रोम का मुख्य दर्शन 'स्टोइसिज़्म' था। इस दर्शन का प्रतिपादन सिटियम निवासी ज़ेनो ने किया था और यह बेबिलोनिया निवासी 'डायोजिनिस' द्वारा रोम में लाया गया। सेनिका और सम्राट् मार्कस आरिलियस की रचनाओं में इस दर्शन का विशद रूप से निरूपण किया गया है। पोसीडोनियस ने, जो विशेषकर एक यात्री और भूगोलज्ञ के रूप में प्रसिद्ध है, और जिसने सूर्य और चन्द्रमा के सम्मिलित प्रभाव से ज्वार और भाटा का स्पष्टीकरण किया, स्टोइसिज़्म में प्लैटो की धारणाओं का कुछ अंश तक समावेश किया।

ल्यूक्रिटियस ने (६८–५५ ई० पू०) अपनी कविता 'डिरेरमनेचुरा' में यूनानी परमाणुवाद की व्याख्या की। यह कविता परमाणुवादी तथा यांत्रिक दर्शन पर आधारित कार्यकारण सिद्धान्त को, जो अदृश्य जल-वाष्प से लेकर विराट् आकाश तक का नियन्त्रण करता है, स्थापित करने एवं अंधविश्वास का खण्डन करने के उद्देश्य से लिखी गई थी।

प्राचीन पुस्तकों के संक्षिप्त विवरण लिखने वालों में पाम्पोनियस मेला, जो एक भूगोलज्ञ था, तथा राजनीतिज्ञ सिसरो (१०६–४३ ई० पू०) जिसने 'दि नेचर ड्यू रम' की रचना की जिसमें उस काल के वैज्ञानिक ज्ञान का कुछ विवरण दिया गया है, उल्लेखनीय हैं। वर्जिल और वारो दोनों ने कृषि पर लिखा, और सौ वर्ष बाद प्लिनी (२३–७९ ई०) ने अपनी पुस्तक 'नेचुरलिस हिस्टोरिया' में अपने काल के सम्पूर्ण विज्ञान—

भूगोल, मनुष्य और उसके गुण, जानवर, वनस्पति, कृषि, फल उत्पादन, जंगल, मद्य, धातुओं के गुण और उनके उपयोग, अनेक ललित कलाओं—का विस्तृत रूप से वर्णन किया। उसने शेर, यूनीकार्न (एक प्राचीन एक सींग वाला जानवर) और फोयेनिक्स तथा जादू के विभिन्न रूपों, उनके लाभों और अभ्यासों का वर्णन किया। प्लुटार्च (४०–१२५ ई०) ने चन्द्रमा की प्रकृति और रोमन दंतकथाओं के ऊपर लिखा। उसने धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन की ओर भी संकेत किया। प्लुटार्च और डायोजिनिस दोनों ने यूनानी दर्शन और यूनानी दार्शनिकों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सूचना दी।

यूनानी चिकित्सा सिकन्दरिया और रोम दोनों जगह फली फूली। टिबरियस के शासन काल में सेल्सस ने औषधि और चीर-फाड़ के ऊपर एक पुस्तक लिखी जिसमें उसने कई आधुनिक आपरेशनों का वर्णन किया है। उसने सिकन्दरिया और रोम के चिकित्सा शास्त्र का इतिहास भी लिखा। मध्य युग में उसकी रचनाएँ अप्राप्य थीं, परन्तु वे पुनः ऐसे समय प्राप्त की जा सकीं कि पुनर्जागरण काल उनसे लाभ उठाने में समर्थ हो सका। बाद में गैलेन (१२६–२०० ई०) ने जानवरों को और कुछ मानव शरीरों को चीरा-फाड़ा तथा चीर-फाड़ के द्वारा हृदय एवं रीढ़ की हड्डी की क्रियाओं का पता लगाया। शरीर के विभिन्न भागों में व्याप्त विभिन्न प्रकार की दैवी शक्तियों की धारणा पर गैलेन का चिकित्सा शास्त्र आधारित था। इस सिद्धान्त से उसने ऐसे भ्रमात्मक निष्कर्ष निकाले जो लगभग १४०० वर्ष तक चिकित्सा शास्त्र को प्रभावित करते रहे। गैलेन द्वारा प्रयुक्त एक वाक्य खण्ड का अनुवाद 'जानवरों की दैवी शक्तियां' किया गया है, जिसका मूल अर्थ कभी-कभी स्पष्ट नहीं हो पाता। गैलेन की धारणा थी कि जीवन का सार एक प्रकार की वायु है जो सांस लेते समय विश्व व्यापी दैवी शक्ति से प्राप्त की जाती है। उसका मत था कि शिराओं और धमनियों में उठता गिरता हुआ रक्त शरीर के विभिन्न भागों तक पहुंचता है। यह मत

तब तक प्रचलित रहा जब तक हार्वे ने यह मालूम नहीं किया कि रक्त एक पथ से होकर शरीर के विभिन्न भागों तक जाता है तथा दूसरे पथ से हृदय तक पुनः लौट आता है। ईसा की प्रथम शताब्दी में डायस्कराइड्स नामक एक फौजी डाक्टर ने बनस्पति शास्त्र और औषधि के ऊपर लिखा तथा लगभग छः सौ पौदों और उनके गुणों का वर्णन किया। व्यावहारिक जीवन के लिए और विशेषकर फौज के लिए उपयोगी होने के कारण, दर्शन और विशुद्ध विज्ञान की अपेक्षा, चिकित्सा शास्त्र अधिक दिनों तक प्रचलित रहा। ईसा की दूसरी शताब्दी में दर्शन और विज्ञान के ह्रास के लक्षण दिखाई देने लगे और उसके बाद शीघ्र ही उनकी अवनति आरम्भ हो गई।

परन्तु अनेक प्रकार की व्यावहारिक कलाएँ रोम में फूलती-फलती रहीं। नागरिकों के स्वास्थ्य की सुरक्षा की व्यवस्था, ताज़ा पानी लाने वाली नालियाँ, सफाई के साधन, अस्पताल और जन-स्वास्थ्य वर्द्धिनी संस्थाएँ तथा फौजी और साधारण इंजीनियरिंग, ये सब रोम निवासियों की व्यावहारिक प्रतिभा के परिचायक थे।

सिकन्दरिया निवासी डायोफेन्टस जिसका बीजगणित पर लिखने वाले यूनानी लेखकों में सबसे उच्च स्थान था, ईसा की तृतीय शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जीवित था। लगातार आवृत्ति करने वाली क्रियाओं तथा विभिन्न राशियों को संक्षिप्त रूप में लिखने की शैली को उसने जन्म दिया। इस तरह सरल समीकरणों को हल करने में वह समर्थ हुआ। प्राचीन जगत में उसके बाद गणित और विशुद्ध विज्ञान में कोई भी प्रथम श्रेणी का व्यक्ति उत्पन्न नहीं हुआ। ज्ञान की प्रगति एक प्रकार से रुक गई और लोग केवल प्राचीन लेखकों और विशेषकर यूनानी दार्शनिकों की रचनाओं का संक्षिप्त विवरण लिखने या उन रचनाओं की टीका करने में ही व्यस्त थे।

और इन्हीं संक्षिप्त विवरणों और टीकाओं ने अंधकार युग के बाद आनेवाले उषःकाल को प्रकाशित किया।

तीसरा अध्याय

मध्य-युग

प्राचीन विद्या का अंत—इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए कि लगभग एक सहस्र वर्ष तक यूरप में विज्ञान की प्रगति क्यों रुकी रही, यह आवश्यक है कि हम पहले उन दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोणों एवं धार्मिक विश्वासों की समीक्षा करें जिनका एथन्स, सिकन्दरिया और रोम की विद्या के अंतिम काल में, लोगों के मस्तिष्कों पर अधिकार था।

जब तक अरस्तू की पुस्तकें प्राप्य थीं, तब तक वैज्ञानिक सिद्धान्तों और तथ्यों से सम्बन्धित प्रश्नों पर वह महान् अधिकारी स्वीकार किया जाता था। छठी शताब्दी के अन्त तक अरस्तू की पुस्तकें या तो लुप्त हो गईं या उनका पठन-पाठन बंद हो गया। अब केवल उसकी रचनाओं पर की गई सूक्ष्म टीकाओं का ही अध्ययन होता था। फिर भी उसके विचारों का आदर ज्यों-का-त्यों होता रहा।

यद्यपि वैज्ञानिक क्षेत्र में अरस्तू का अप्रतिम स्थान था फिर भी दर्शन ने एक दूसरे ही मार्ग को ग्रहण किया। प्लैटो के अनुयायी एथन्स की शिक्षा संस्था में प्लैटो के मतों के एक नवीन और रहस्यात्मक रूप की शिक्षा दे रहे थे और प्लैटो के मतों का यही नवीन और रहस्यात्मक रूप आगे चलकर सर्वमान्य दर्शन स्वीकार किया गया। जैसा कि हम अभी देखेंगे, प्लैटो के मतों का यही नवीन रूप, मध्ययुग के अन्तिम काल में भी, अरस्तू के शास्त्रवाद की पृष्ठभूमि के रूप में जीवित था। परन्तु जिस काल, ईसा की प्रथम कुछ शताब्दियों का विवेचन हम कर रहे हैं

उस समय तो प्लैटो के मत का यह नवीन रूप विशेष रूप से प्रचलित था।

दार्शनिकों के सत्यान्वेषण के साथ ही साथ यूनान के सांस्कृतिक काल की देवकथाओं का भी पूर्ण प्रचार था। ये देवकथायें उस काल के सरकारी धर्म की द्योतक थीं यद्यपि उनके ह्रास के लक्षण प्रकट होने लगे थे। अपनी अंतिम ऊंचाई पर पहुँच कर भी विभिन्न पैगन (ईसाई धर्म को न मानने वाले) सम्प्रदाय एक दूसरे के प्रति उदार थे और उदारता की इस परम्परा को रोमन साम्राज्य ने भी कायम रखा। परन्तु आरम्भिक इसाइयों ने यहूदियों के संकुचित और अनुदार धार्मिक दृष्टि-कोण को अपना कर रोमन साम्राज्य की उदार नीति का परित्याग कर दिया। उनकी इस प्रवृत्ति ने रोमन शासकों के सम्मुख एक विकट समस्या उपस्थित कर दी। और इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि इसाइयों का दमन आये दिनों होने लगा। परन्तु जब इसाई धर्म की विजय आरम्भ हुई और उसके अनुयायियों का दमन बंद हो गया तब उस धर्म को और निश्चित रूप देने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

इसाइयों के धर्म पिता—इस प्रकार यहूदी धर्म ग्रन्थ और प्लैटो के नवीन दर्शन के प्रकाश में ईसा से सम्बन्धित कथा की व्याख्या कर आरम्भिक धर्म पिताओं ने प्रथम प्रथम सुव्यवस्थित इसाई मत का प्रतिपादन किया। परन्तु इस मत के नीचे रहस्यात्मक धर्मों और आरम्भिक तांत्रिक प्रथाओं की धारायें भी प्रवाहित थीं। इन्हीं प्रथाओं में हम धर्म दीक्षा, बलिदान एवं एकात्मवाद की पूर्ण रूप से प्रचलित धारणाओं को पाते हैं। ये धारणायें आगे चलकर अधिक विकसित रूप में रहस्यात्मक धर्मों में प्रकट हुई और वार्षिक अभिनय के रूपक में इन धारणाओं की पूर्ण रूप से व्याख्या की गई—ग्रीष्म में वृद्धि और पूर्ण जीवन, शीत काल में मृत्यु और प्रत्येक वसंत में जीवन का पुनर्विकास।

पूरब के रहस्यात्मक धर्मों में दो विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रोमन साम्राज्य पर अधिकार प्राप्ति के लिए, इसाइयों और सैनिकों के

देवता, मित्र, से सम्बन्धित ईरान के एक धर्म-सम्प्रदाय में बहुत दिनों तक झगड़ा चलता रहा। जैसे-जैसे समय बीतता गया एक दूसरा धर्म, 'मैनिकिज़्म,' जो शिव और अशिव दो शक्तियों में विश्वास करता था, किसी न किसी रूप में पुनः-पुनः प्रकट होता रहा।

ऐसे ही वातावरण में आरम्भिक धर्म-पिताओं ने स्पष्ट और प्रत्यक्ष रूप में यूनानी दर्शन और इसाई धार्मिक विश्वासों का समन्वय करना चाहा। परन्तु अनजान में ही उनके इस समन्वय में तांत्रिक प्रथाओं का भी समावेश हो गया। इन धर्म पिताओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध आरिजन (१८५–२५४) था जिसने यह घोषणा की कि इसाई धर्म और प्राचीन विद्या विशेषकर सिकन्दरिया के विज्ञान में मूलतः मतैक्य है। शिक्षित तथा बुद्धिमान लोगों को इसाई धर्म का अनुयायी बनाने में वह बहुत सफल हुआ। आरिजन ने प्राचीन और नवीन दोनों बाइबिलों पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण से विचार किया और उन मतों की अपेक्षा जो आगे चलकर स्वीकृत हुए, अधिक उदार मतों का समर्थन किया। जो विचार किसी कारणवश जीवित और प्रचलित रह सके वही शास्त्रीय विचार और मत स्वीकार किये गए, परन्तु जैसा गिबन ने कहा है, नास्तिक विशेषण सर्वदा अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक समुदायों के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा है।

लैटिन धर्म-पिताओं में संत आगस्टाइन (३५४-४३०) का इसाई विचारधारा पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। वह पहले मैनिकियन मत का अनुयायी था। इसके बाद वह प्लैटो के नवीन मत के प्रभाव में रहा और अन्त में इसाई धर्मावलम्बी हो गया। उसने प्लैटो के दर्शन के साथ संतपाल की रचनाओं का समन्वय कर इसाई धर्म के आधार पर ज्ञान का प्रथम महत्वपूर्ण निरूपण किया। मध्य युग के अन्त में जब अरस्तू की रचनाएँ पुनः प्राप्त की जा सकीं और अरस्तू का प्रभुत्व स्थापित हो गया, तब भी प्लैटो के दर्शन और पाल द्वारा प्रतिपादित

इसाई धर्म-सिद्धान्त का यही सम्मिश्रण अपना अलग अस्तित्व कायम रखने में समर्थ हुआ।

आरम्भिक इसाई धर्म और रहस्यात्मक नवीन प्लैटो मत की एक दूसरे पर क्रिया और प्रतिक्रिया होती रही और वे एक दूसरे पर अपनी रचनाओं के अपहरण का दोष लगाते रहे। आरम्भ में दैवी शक्ति और तंत्र पर बहुत जोर नहीं दिया जाता था परन्तु एक शताब्दी पश्चात् नवीन प्लैटो मतानुयायी पारफिरी और इयैम्ब्लिशस तथा इसाई मतानुयायी जेरोम और ग्रेगरी ने दैवी तथा अलौलिक शक्तियों में अपना पूर्ण विश्वास प्रकट किया।

पुनः इस विश्वास ने कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने पाप पुण्य का फल स्वयं भोगना है तथा इस आशंका ने कि निकट भविष्य में ही ईसा मसीह पृथ्वी पर पुनः अवतीर्ण होंगे और उसी अवसर पर प्रलय होगी और संसार का अंत हो जायगा, पारिवारिक तथा राष्ट्रीय जीवन से यूनानियों के सहज आशावाद और रोमवालों की स्वाभाविक उत्फुल्लता को निष्कासित कर उनके हृदयों को निराशा और विषाद से अभिभूत कर दिया।

जीवन और मृत्यु पर ऐसा निराशावादी दृष्टिकोण रखने वाले इसाई धर्म-पिताओं के लिये यह स्वाभाविक ही था कि वे सांसारिक और व्यावहारिक ज्ञान की ओर बहुत कम आकृष्ट होते। संत ऐम्ब्रोज़ ने लिखा था 'पृथ्वी की स्थिति और प्रकृति के सम्बन्ध में विचार-विनिमय हमारे आगामी जीवन को आशामय बनाने में किसी भी प्रकार से सहायक सिद्ध न होगा'। आर्टमन के अनुयायियों के सम्बन्ध में यह कहा जाता था कि 'वे पृथ्वी को नापने में व्यस्त थे परन्तु स्वर्ग को, जिसकी ओर उन्हें अधिक ध्यान देना चाहिए था, उन्हें पर्वाह नहीं थी'। इस प्रकार इसाई जगत का एक भाग गैर इसाई लोगों की विद्या से पूर्ण घृणा करने लगा। सिकन्दरिया के पुस्तकालय का एक भाग इसाई धर्माध्यक्ष थियाफिलस द्वारा ३६० ई० के आस-पास नष्ट कर दिया गया। ४१५ ई०

में राष्ट्र पिता सिरिल के इशारे से ईसाइयों के एक झुण्ड ने सिकन्दरिया के अन्तिम गणितज्ञ हिपेशिया को अत्यंत निर्दयतापूर्वक मार डाला।

अंधकार-युग—रोम का पतन केवल बर्बर जातियों द्वारा सभ्यता के उन्मूलन का कारण नहीं था। रोम साम्राज्य का धराशायी शव सड़ रहा था और दुर्गन्ध फैला रहा था; रोम के पतन ने उसकी सफाई कर दी। साम्राज्य की सैनिक शक्ति क्षीण हो रही थी; उसके रक्त की पवित्रता पूर्वी तथा अन्य विदेशी जातियों के आगमन के कारण नष्ट हो रही थी; स्पेन और यूनान की सोने और चांदी की खानों की विफलता के कारण मंदी बढ़ गई क्योंकि सिक्कों की कमी पड़ गई। इसका परिणाम यह हुआ कि भूमि परती पड़ गई। रोम के आस-पास के बड़े-बड़े भूमि-खण्ड मलेरिया के अड्डे बन गये और मनुष्यों के रहने योग्य न रहे। ऐसे ही समय बर्बर जातियों ने आक्रमण किया और रोम छठी और सातवीं शताब्दी के महान् अंधकार में विलीन हो गया।

इस अंधकार-युग में प्रायः सभी विद्याएं लुप्त हो गईं। मठों तथा अन्य स्थनों पर केवल चिकित्सा शास्त्र का पठन-पाठन होता रहा। छठीं शताब्दी में कुछ लोगों ने हिपाक्रेट्स और गैलेन की रचनाओं के सूक्ष्म विवरणों का अध्ययन आरम्भ किया। शीघ्र ही इन रचनाओं का अध्ययन नेपुल्स के दक्षिण में स्थित सालर्नो नामक स्थान पर भी किया जाने लगा। सालर्नो व्यावहारिक और सांसारिक विद्या के अध्ययन का प्रथम केन्द्र था। यह पहले एक यूनानी उपनिवेश था; बाद में यह रोम वालों के स्वास्थ्य सुधार का स्थल रहा। बहुत सम्भव है सालर्नो प्राचीन और आधुनिक विद्या का सम्बन्ध अविच्छिन्न बनाये रखने में एक अटूट कड़ी का काम करता रहा।

प्राक्लस (४११–४८४) ने नवीन प्लैटो मत को अन्तिम रूप दिया। प्राक्लस अन्तिम महान् यूनानी दार्शनिक था जिसकी रचनाएं प्लैटो और अरस्तू के विचारों की अपेक्षा मध्ययुगीय ईसाई धर्म के रहस्यात्मक विश्वासों और इस्लाम के अधिक अनुकूल थीं।

पुनः, बोयेथियस ने जो एक रोमन सरदार था और इसाई होने के नाते जो ५२४ ई० में मार डाला गया, प्लैटो और अरस्तू की रचनाओं का सूक्ष्म विवरण लिखा तथा उन रचनाओं का भाष्य किया। उसने अंकगणित, ज्यामिति, संगीत, एवं आकाश शास्त्र पर भी कुछ लिखा। प्राचीन दर्शन से वास्तविक रूप में अनुप्राणित वह अन्तिम विचारक था। प्राचीन विद्या और मध्ययुग के बीच वह एक दूसरी कड़ी था। बोयेथियस के बाद प्राचीन विद्या लुप्त हो गई। सम्राट् जस्टिनियन की आज्ञा से ५२६ ई० में एथन्स स्थित प्लैटो का स्कूल बंद कर दिया गया।

यह आश्चर्य की बात है कि रोम से दूर स्थित कुछ देशों में पुनर्जागरण के सर्वप्रथम चिह्न लक्षित हुए। आयरलैण्ड, स्काटलैण्ड और उत्तरी इंगलैण्ड में साहित्य और कला का विकास हो रहा था। इस साहित्यिक विकास को इसाई धर्म ने प्रोत्साहन प्रदान किया। धर्म और साहित्य के इस गठबंधन का सुफल साधु वेडे की रचनाओं के रूप में प्रकट हुआ। यह साहित्यिक आन्दोलन धार्मिक शिक्षाओं के साथ-साथ कुछ लौकिक विद्याओं का ज्ञान दक्षिणी देशों में प्रसारित करने में समर्थ हुआ। वेडे के विज्ञान तथा अन्य मध्ययुगीय विचारकों के विज्ञान का आधार मुख्यतया प्लिनी की पुस्तक 'प्राकृतिक इतिहास' थी। परन्तु वेडे ने कुछ अपनी ओर से भी लिखा था, जैसे ज्वार-भाटे का निरीक्षण। चार्लमेन द्वारा स्थापित मठ-स्कूल और लैटिन पुस्तकों के ऐंग्लो सैक्सन भाषा में ऐल्फ्रेड महान् द्वारा किये गए अनुवाद उल्लेखनीय हैं। इसी समय नये राष्ट्र निर्मित हो रहे थे और अपने अस्तित्व से अवगत तथा स्वचेतना से अनुप्राणित हो रहे थे।

अरबों की विद्या—जब यूरप में विद्या का ह्रास अपनी अन्तिम सीमा पर पहुंच रहा था, उस समय बाइजेन्टियम के राज दरबार तथा सीरिया और ईरान की खाड़ी के बीच स्थित देशों में यूनान, रोम एवं यहूदियों की सभ्यताओं के सम्मिश्रण से बनी हुई एक नवीन संस्कृति विकास पा रही थी। ४८९ ई० में जुन्दिशापुर के ईरानी स्कूल ने

नेस्टोरियस के अनुयायी इसाइयों (ये इसाई नास्तिक घोषित कर दिये गए थे) को और ५२९ ई० में प्लैटो के स्कूल के बंद हो जाने पर नवीन प्लैटो मतानुयायियों को शरण दिया। तीसरी शताब्दी में पश्चिमी एशिया में सीरियैक भाषा ने यूनानी भाषा का स्थान ग्रहण कर लिया। बाद में सीरियैक भाषा का स्थान अरबी ने ले लिया।

मुहम्मद और उसके अरब अनुयायियों ने ६२० और ६५० के बीच अरब, सीरिया, ईरान और मिश्र पर अधिकार कर लिया। खलीफाओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध खलीफा हारून रशीद ने ७८० के आस-पास यूनानी लेखकों की रचनाओं का अनुवाद करवाया और यहीं से अरब विद्या के महान् युग का प्रारम्भ हुआ। अरबों के सम्मुख प्रथम कार्य था यूनानी विद्या के विस्मृत और छिपे हुए भाण्डार का पता लगाना। इसके बाद उन्हें उस ज्ञान को अपनी भाषा अरबी में लिपिबद्ध करना था और अंत में उस ज्ञान-भाण्डार की अपने ज्ञान से अभिवृद्धि करनी थी।

अरबों ने यूनानियों और भारतीयों के आधार पर एक परमाणुवाद का प्रतिपादन किया। परन्तु अरबों की दृष्टि में केवल पदार्थ ही परमाणुओं से नहीं बना था; स्थान और समय की रचना भी उनके परमाणुओं से हुई थी। भारतीयों की भाँति उनका भी मत था कि समय का निर्माण अविच्छिन्न समय-परमाणुओं (क्षणों) से होता है। प्रत्येक क्षण के बाद अल्ला नये सिरे से परमाणुओं की रचना करता है। ये परमाणु अपने स्वाभाविक गुणों से युक्त होते हैं। यदि अल्ला किसी क्षण परमाणुओं का पुनर्निमाण बंद कर दे तो ब्रह्माण्ड स्वप्न की भाँति विलीन हो जायगा।

अरब रसायन और औषधि का विकास आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और नवीं शताब्दी में हुआ, जब विद्या के क्षेत्र में यूरप के स्थान पर अरब भाषा-भाषी देशों ने निश्चित रूप से नेतृत्व ग्रहण कर लिया। व्याव-हारिक रसायन का आरम्भिक रूप जीवन के लिये आवश्यक कलाओं जैसे पाक विज्ञान, धातुओं की शुद्धि, औषधि के लिये उपयोगी पौधों का

संकलन तथा पेय पदार्थों के निर्माण आदि से सम्बन्धित था। अरबों ने अमृत और पारस प्राप्त करने के उद्देश्य से सात सौ वर्ष तक रसायन विद्या की सेवा की। सब रोगों की अमोघ औषधि अमृत और लोहा को सोना बनाने वाला पारस वे न पा सके क्योंकि वे थे ही नहीं, परन्तु अपने प्रयत्न में वे ऐसे रासायनिक पदार्थों और ऐसी क्रियाओं का आविष्कार करने में समर्थ हुए जिनके आधार पर आगे चलकर वास्तविक रसायन शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र का भवन निर्मित किया जा सका। उनके द्वारा अर्जित ज्ञान मुख्यतया स्पेन के मूरों द्वारा यूरप में पहुँचा।

अरब रसायन शास्त्र-वेत्ताओं और कीमियागरों में सबसे अधिक प्रसिद्ध अबू-मुसा-जाबिर-इब्न-हयाँ था जो ७७६ के आसपास अपने कार्य में व्यस्त था। वह कई पुस्तकों का रचयिता माना जाता है। ये रचनाएँ बाद में लैटिन में अनूदित की गईं और एक अनिश्चित काल के एक अनिश्चित लेखक 'जेबर' के नाम से प्रसिद्ध हुईं। जाबिर और जेबर एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं, या दो भिन्न व्यक्तियों के नाम हैं, इसका निश्चय तब तक नहीं हो सकता जब तक जाबिर की सब रचनाओं का अनुवाद नहीं हो जाता और उन अनुवादों का पूर्ण रूप से अध्ययन नहीं हो पाता। ऐसा प्रतीत होता है कि जाबिर ने लेड-कार्बोनेट बना लिया था और आर्सेनिक और ऐन्टीमनी को उनके सल्फाइडों से अलग कर लिया था। उसने धातुओं को शुद्ध करने, कपड़ा तथा चमड़ा को रंगने और ऐसिटिक अम्ल देने वाले सिरका को निचोड़ने की क्रियाओं का वर्णन किया। उसका विश्वास था कि विभिन्न धातुओं की एक दूसरे से भिन्नता का कारण यह है कि उनमें गंधक और पारे की मात्रा भिन्न-भिन्न अनुपातों में होती है। यह सिद्धान्त कि सब वस्तुओं के मूल आधार गंधक (अग्नि), पारा (द्रवत्व) और नमक (ठोस) हैं, परमाणुवाद और एम्पिडाकल्स तथा अरस्तू के चार तत्वों के प्रतिद्वन्दी के रूप में, १६६१ में प्रकाशित राबर्ट ब्वायल की पुस्तक 'अविश्वासी रसायन शास्त्री' के काल तक जीवित रहा।

नवीं शताब्दी में यूक्लिड की ज्यामिति और टालमी के आकाश-शास्त्र का अनुवाद अरबी में किया गया। यह आकाश-शास्त्र बाद में अरबी नाम 'अलमाजेस्ट' से विख्यात हुआ। हिन्दू अंकों ने शून्य के आविष्कार के कारण पूर्णता प्राप्त कर ली और यूरप में प्रचलित भद्दे रोमन अंकों का स्थान ग्रहण कर लिया।

मुसलमान आकाश शास्त्र-वेत्ताओं में मुहम्मद अल बतनी ने, जो अन्टियाच का रहने वाला था, इक्वीनाक्सों (वे तिथियाँ जब दिन-रात बराबर होते हैं) के विचलन तथा अन्य बहुत से आकाश सम्बन्धी परिमाणों की फिर से गणना की। १००० ई० के आस-पास कैरो में, शायद मुसलमान आकाश-शास्त्रियों में सबसे अधिक योग्य व्यक्ति इब्न युनुस द्वारा सूर्य और चन्द्रग्रहणों का पर्यवेक्षण किया गया।

अरब विज्ञान का सबसे महान् युग दसवीं शताब्दी से आरम्भ होता है जब अल-किन्दी ने दर्शन और भौतिक विज्ञान पर लिखा तथा अबु-बकर-अल-रजी ने बगदाद में चिकित्सा को अपनी जीविका का साधन बनाया और चेचक तथा मीज़ल्स (एक बीमारी जिससे शरीर पर लाल दाने पड़ जाते हैं) पर एक पुस्तक की रचना की। वह इस्लाम का सबसे बड़ा चिकित्सक माना जाता था। उसने अपने रासायनिक ज्ञान का उपयोग औषधि के क्षेत्र में किया तथा एक द्रवीय तुला का प्रयोग किया। अरबों में भौतिक विज्ञान का सबसे बड़ा ज्ञाता इब्न अल हैथम (९६५--१०२०) था जिसने मिश्र में मुख्यतया प्रकाश-शास्त्र पर काम किया। उसकी रचनाओं के लैटिन अनुवादों ने विज्ञान जगत् को और विशेषकर रोगर बेकन को बहुत प्रभावित किया। ग्यारहवीं शताब्दी में अल हज़न गणित में प्रसिद्ध था और इब्न सिना ने (९८०--१०३७) उस काल में ज्ञात विज्ञान की प्रायः सभी शाखाओं पर कुछ न कुछ लिखा। उसकी पुस्तक, कैनन, जो औषधि सम्बन्धी ज्ञान का एक संकलन थी, अरबसंस्कृति की सबसे बड़ी देन थी। आगे चलकर यह पुस्तक यूरप के विश्वविद्यालयों में चिकित्सा शास्त्र के अध्ययन के लिये पाठ्य-

पुस्तक स्वीकार की गई। अलबरूनी उसका समकालीन था जो एक दर्शन-वेत्ता, भूगोलज्ञ और आकाश शास्त्र-वेत्ता था।

इस समय अरबी भाषा विद्याध्ययन की मुख्य और सांस्कृतिक भाषा थी। उसकी वही प्रतिष्ठा थी जो कभी यूनानी भाषा को प्राप्त थी और पुनः उसे प्राप्त हुई। ग्यारहवीं शताब्दी में कवि उमर ख़य्याम ने बीजगणित पर बहुत महत्त्वपूर्ण काम किया। परन्तु उस शताब्दी के अन्त तक अरबी और मुस्लिम विद्या का ह्रास आरम्भ हो गया था।

स्पेन में जहां अरबी, यहूदी और इसाई संस्कृतियाँ मिश्रित हो गई थीं, दर्शन का विकास कुछ-कुछ उसी प्रकार हुआ जिस तरह उसका विकास एक शताब्दी बाद इसाई देशों में हुआ। दोनों जगह पवित्र पुस्तकों को यूनानी विद्या के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया गया। यही नहीं, दोनों जगह बुद्धिवादियों में, जो तर्क का आश्रय लेते थे, और दैवी ज्ञान तथा रहस्यात्मक धार्मिक अनुभव में विश्वास रखने वालों में, जो धार्मिक मामलों में तर्क का आश्रय लेना अनुचित समझते थे, विरोध चलता रहा।

स्पेन-अरब की विद्या की प्रसिद्धि विशेषकर ऐवरोस के कारण हुई। उसका जन्म कार्डोवा में ११२६ में हुआ था। उसके लिये धर्म, एक व्यक्तिगत और आंतरिक शक्ति था तथा मत-मतान्तर एक प्रकार की बाधा थे। उसकी शिक्षाओं और रूढ़िवादी इसाई पण्डितों की शिक्षाओं में आगे चलकर विरोध उत्पन्न हो गया परन्तु इस विरोध के होते हुए भी यूरप के विश्वविद्यालयों में उसके पाण्डित्य की धूम थी और तर्क सम्बन्धी मामलों में उसकी तुलना अरस्तू तक से की जाती थी। कार्डोवा का दूसरा महान् व्यक्ति एक यहूदी चिकित्सक था जिसका नाम मैमोनाइड्स (११३५–१२०४) था। वह गणितज्ञ, आकाश शास्त्र-वेत्ता और दर्शन-वेत्ता भी था। उसका प्रधान विषय यहूदी शास्त्र-विवेचन था। उसके शास्त्र विवेचन की तुलना बग़दाद के अल ग़ज़ाली के अरब शास्त्र विवेचन तथा सैंट टामस अक्विनास के इसाई शास्त्र विवेचन से की जा सकती है।

इन सभी विवेचनों का उद्देश्य था अपने-अपने धार्मिक मतों को अरस्तू के विचारों के अनुकूल सिद्ध करना।

यूरप में पुनर्जागरण—अरब विद्या ने जब यूरप में धीरे-धीरे प्रवेश किया उस समय उसके लिये यत्र तत्र अनुकूल वातावरण उत्पन्न हो गया था। कान्स्टैन्टीनोपुल के बाइजेन्टाइन साम्राज्य ने नवीं और दसवीं शताब्दी में कला और साहित्य को प्रश्रय दिया और बहुत सी यूनानी हस्त रचनाओं का संकलन और रक्षण किया। सालर्नो में औषधि शास्त्र का अध्ययन विशेष रूप से हो रहा था और उत्तर में चार्लमेन और आलफ्रेड द्वारा विद्वानों को दिये गए प्रोत्साहन से शिक्षा का रूप इतना परिष्कृत हो गया था कि सांसारिक ज्ञान की शिक्षा देने वाले स्कूलों ने विश्वविद्यालयों का रूप ग्रहण करना आरम्भ कर दिया।

बोलोगना में कानून का अध्ययन १००० ई० के आस-पास पुनः आरम्भ हो गया। कुछ ही दिन बाद वहाँ औषधि शास्त्र और दर्शन का भी अध्ययन होने लगा। विद्यार्थियों की एक संस्था 'यूनिवर्सिटास' पारस्परिक स्वत्व रक्षा के लिये बनाई गई। यही संस्था शिक्षकों को भी तैयार करती थी। इस प्रकार शिक्षालयों का शासन-सूत्र विद्यार्थियों के हाथ चला गया। परन्तु बारहवीं शताब्दी के आरम्भ में ही पेरिस में अध्यापकों द्वारा एक वादविवाद सभा स्थापित की गई। अध्यापकों ने भी अपनी सुरक्षा के लिये एक संस्था स्थापित की और उसकी देखा-देखी उत्तरी यूरप के अन्य विश्वविद्यालयों में भी अध्यापकों की संस्थायें बनीं। यही कारण है कि आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज के विश्वविद्यालयों का शासन-सूत्र अध्यापकों के हाथ में है। परन्तु स्काटलैण्ड के विश्व-विद्यालयों में कुलपति का विद्यार्थियों द्वारा चुनाव, बोलोगना के शिक्षा-लय में विद्यार्थियों के अधिकार और प्रभाव का स्मरण दिलाता है।

अध्ययन के सात विषय थे—तीन शब्दों से सम्बन्धित अपरिपक्व विषय—व्याकरण, वक्तृता और शास्त्रार्थ—चार वस्तुओं से संबंधित अपेक्षा-कृत विकसित विषय—अंकगणित, ज्यामिति संगीत और आकाश शास्त्र।

संगीत, संख्याओं के अर्द्ध रहस्यात्मक सिद्धान्त से प्रेरित था। ज्यामिति, यूक्लिड की असिद्ध उपपत्तियों का संकलन मात्र थी। अंकगणित और आकाश-शास्त्र का पठन-पाठन मुख्यतया ईस्टर (इसाइयों का एक त्योहार जो ईसा मसीह के पुनर्जीवन के उपलक्ष में मनाया जाता है। यह ३१ मार्च के पास वाली पूर्णिमा के बाद पड़ने वाले प्रथम रविवार को मनाया जाता है) का समय मालूम करने के लिये होता था। बाद में जब दर्शन का अध्ययन आरम्भ हुआ तब वह केवल वादविवाद का अधिक परिष्कृत रूप मात्र माना जाता था। पेरिस में और बाद में आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज में सब विषयों का अंत पवित्र विषय 'ईश्वर विवेचन' में होता था। ऐसा कहा जाता है कि मध्य-युग का दर्शन तर्क और 'ईश्वर विवेचन' का मिश्रण मात्र है।

'वर्ग-प्रतीक' (Univrsals) या 'बुद्धिगम्य स्वरूप' की प्रकृति से सम्बन्धित प्लैटो और अरस्तू के बीच का विवाद प्राफरी और बोयेथियस की रचनाओं में प्रकट हुआ और इस प्रकार 'वर्गीकरण' की समस्या के रूप में वह मध्ययुगीय विचारकों के सम्मुख उपस्थित हुआ। किस प्रकार विभिन्न प्राणियों और वस्तुओं का वर्गीकरण किया जाय ? क्या केवल प्रत्येक व्यक्ति की ही वास्तविक सत्ता है, जैसा कि संज्ञावादी कहते हैं, और वर्ग या वर्ग प्रतीक केवल मानसिक भावना मात्र हैं, या वर्ग प्रतीकों की ही वास्तविक सत्ता है और उस वर्ग के व्यक्तियों का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है ? या इस सम्बन्ध में अरस्तू का बीच वाला मार्ग स्वीकार करना चाहिये ? यूनानियों के लिये ये प्रश्न महत्वपूर्ण थे और आधुनिक भौतिक विज्ञान से भी कुछ अंश तक सम्बन्धित थे परन्तु मध्य-कालीन विचारकों ने इन प्रश्नों में इसाई धर्म से सम्बन्धित विश्वासों की सम्पूर्ण समस्या का दर्शन किया। कठिनाई केवल यह निश्चय करने में थी कि कौन उत्तर परम्परा और रूढ़ि के अनुकूल था। परन्तु समय-समय पर भिन्न-भिन्न उत्तर उचित और यथार्थ समझे जाते रहे।

प्रथम, प्लैटो के यथार्थवाद ने रहस्यात्मक नवीन प्लैटो मत के रूप

में इसाई ईश्वरवाद के साथ मिलकर इस धारणा के आधार पर कि अन्ततोगत्वा केवल दैवी शक्ति ही वास्तविक है, मध्य-कालीन प्रथम समन्वय को सम्भव बनाया। इसके बाद 'संज्ञावाद' टुअर्स के बेरेन्गेरियस (९९९–१०८८) और रोसेलिनस की रचनाओं में प्रकट हुआ। इन विचारकों ने तीन स्वतंत्र देवों की कल्पना की। परन्तु ऐबलार्ड ने तीन देवों की स्वतंत्र सत्ता न मानकर उन्हें एक ही दैवी शक्ति का तीन भिन्न रूप माना। इस प्रकार ऊपर से निर्दोष प्रतीत होने वाली दार्शनिक समस्या ने भयंकर वाद विवाद को जन्म दे दिया।

ऐबलार्ड ने कई क्षेत्रों में स्वतंत्र मार्ग का अनुसरण किया। उसका कहना था कि किसी बात में विश्वास करने के पहले उसे भलीभाँति समझ लेना आवश्यक है। ऐन्सेल्म और टर्टुलियन का भी ऐसा ही विचार था।

ऐबलार्ड की समझने की उपर्युक्त इच्छा हमारी कथा को तेरहवीं शताब्दी के महान् बौद्धिक प्रकाश युग में ले जाती है, परन्तु इसके पहले कि हम उस युग में प्रवेश करें यह जान लेना आवश्यक है कि इस निरर्थक धारणा का कि मनुष्य विराट् ब्रह्माण्ड का सूक्ष्म रूप है, मध्य-कालीन विचारधारा पर क्या प्रभाव पड़ा। इस धारणा को हम प्लैटो, ऐक्विलियन, हर्मिस की दंतकथाओं तथा मिश्र के देवता थाथ में पाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्माण्ड और मनुष्य के उपर्युक्त रूपक की ओर मध्यकालीन जनता का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ था। मध्यकालीन कला में उपर्युक्त रूपक निरन्तर चित्रों में व्यक्त किया जाता रहा; एक अग्नि-क्षेत्र के बाहर आकाश के उच्चतम भाग में स्वर्ग और पृथ्वी के निम्न तल में नरक चित्रित किया जाता था। आकाश के चार पवनों से संचालित सूर्य, नक्षत्र और ग्रह, पृथ्वी के चार तत्वों और मनुष्य शरीर के चार द्रवों से सम्बन्धित समझे जाते थे। इन भ्रमपूर्ण कल्पनाओं पर आधारित चित्र, आज भी अंधविश्वासी लोगों के पंचाङ्गों की शोभा बढ़ाते हैं।

तेरहवीं शताब्दी और तर्कवाद—तेरहवीं शताब्दी में लौकिक ज्ञान प्राप्त करने की बढ़ती हुई इच्छा को पूर्ण करने के लिये यूनानी रचनाओं का लैटिन में अनुवाद किया जाने लगा। ११२५ और १२८० के बीच स्पेन में इन रचनाओं का अरबी से लैटिन में पुनर्नुवाद हुआ। परन्तु सिसिली और दक्षिणी इटली में, जहाँ अरब और यूनानी दोनों निवास करते थे, इन रचनाओं का सीधे यूनानी से लैटिन में अनुवाद किया गया। इन अरबों और यूनानियों का कान्स्टैन्टिनोपल से व्यापारिक और राजनीतिक सम्बन्ध था। अरब और यहूदी, विज्ञान में वास्तविक दिलचस्पी रखते थे और इन्हीं के सम्पर्क में आने के कारण मध्यकालीन यूरप का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिवादी हो सका।

१२०० और १२२५ के बीच अरस्तू की सम्पूर्ण रचनायें प्राप्त की जा सकीं और उनका लैटिन में अनुवाद किया गया। पहले अरबी अनुवादों से और बाद में सीधे यूनानी भाषा से। यूनानी से लैटिन में अनुवाद करने वालों में सबसे अधिक हाथ राबर्ट ग्रासेटेस्टी का था। वह अक्सफोर्ड का चान्सलर और लिन्कन का प्रधान पादरी था। उसके शिष्य रोगर बेकन ने एक यूनानी व्याकरण की रचना की। उनका उद्देश्य केवल साहित्यिक नहीं था; उनका मुख्य उद्देश्य आरम्भिक धर्म पुस्तकों और अरस्तू की भाषा को बोधगम्य बनाना था।

तत्कालीन वाद-विवादों पर नवीन ज्ञान का प्रभाव शीघ्र ही लक्षित होने लगा। यथार्थवाद जीवित रहा, परन्तु वह पहले जैसा प्रभावशाली न रहा। प्लैटो द्वारा निश्चित किया गया उसका प्रथम रूप भी ज्यों-का-त्यों न रह सका। अरस्तू का यथार्थवाद संज्ञावाद के अनुकूल हो चला। उसने एक ऐसे दर्शन को जन्म दिया जिसके आधार पर वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव हो सका। अरस्तू का दृष्टिकोण निश्चय ही रहस्यात्मक नवीन प्लैटो मत की अपेक्षा, जो प्राचीन दर्शन का प्रतीक था, अधिक वैज्ञानिक और बुद्धिवादी था। उसके ज्ञान का विस्तार, विशेषकर उसका प्रकृति सम्बन्धी ज्ञान, अन्य विचारकों की तुलना में कहीं अधिक था। अरस्तू के इस नवीन

ज्ञान को पचाना और उसे मध्यकालीन इसाई विचारधारा के अनुकूल बनाना बड़ा कठिन कार्य था। १२०१ में पेरिस की चर्च सभा ने अरस्तू की रचनाओं की निन्दा का प्रस्ताव पास किया, परन्तु इस नवीन वाद के वेग को रोकने का प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुआ। १२२५ में पेरिस के विश्व-विद्यालय ने अरस्तू की रचनाओं को अध्ययन का एक विषय स्वीकार कर लिया।

अरस्तू की रचनाओं का रहस्य उद्घाटन करनेवालों में दो विद्वानों का विशेष स्थान है: अल्बर्टस मैगनस (१२०६–१२८०) और उसका प्रसिद्ध शिष्य सन्त टामस अक्विनास (१२२५-१२७४)। अल्बर्टस ने अरस्तू के दर्शन के साथ सम्पूर्ण समकालीन ज्ञान—आकाश शास्त्र, भूगोल, जीवशास्त्र, वनस्पति शास्त्र और औषधि शास्त्र—का समन्वय किया। टामस अक्विनास ने धार्मिक और लौकिक दोनों विद्याओं को बुद्धिसंगत बनाने का प्रयत्न जारी रखा। टामस अक्विनास के मत से ज्ञान दो प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है। एक धर्म-ग्रन्थों, धर्म-पिताओं तथा चर्च परम्परा पर आधारित इसाई विश्वासों द्वारा, दूसरे प्लैटो और अरस्तू की तर्क-प्रणाली द्वारा। ज्ञान प्राप्ति के ये दोनों साधन एक दूसरे के अनुकूल होने चाहियें क्योंकि दोनों की उत्पत्ति ईश्वर ही से हुई है। लोगों की ऐसी धारणा थी कि संत टामस द्वारा प्रतिपादित धर्म-सिद्धान्त में सम्पूर्ण ज्ञान का दर्शन किया जा सकता है। इसी आधार पर शास्त्रवाद या तर्कवाद (स्कालस्टिसिज़्म) की स्थापना की गई।

आरम्भिक काल के यथार्थवादी दृष्टिकोण के विपरीत, जो तर्क का आश्रय लेना ठीक नहीं समझता था, टामस के दर्शन का आधार तर्क था। उसका विश्वास था कि तर्क द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि ईश्वर और प्रकृति का रहस्य उद्घाटित किया जा सकता है।

टामस ने अरस्तू की तर्क प्रणाली और वैज्ञानिक विचारधारा को सम्पूर्ण रूप से स्वीकार किया। कुछ निश्चित तथ्यों और धारणाओं को स्वयंसिद्ध मानकर अरस्तू ने उनके निष्कर्षों को सत्य सिद्ध करने के लिए

सबल प्रमाण उपस्थित करने की शैली का सहारा लिया था। अरस्तू द्वारा स्वयंसिद्ध स्वीकृत इन धारणाओं को टामस ने दिव्य दृष्टि द्वारा ज्ञात स्वयंसिद्धियों एवं सार्वभौम सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार किया। प्रकृति की प्रयोगात्मक परीक्षा के लिये निश्चय ही उपर्युक्त दृष्टिकोण अनुपयुक्त था।

संत टामस अक्विनास ने अरस्तू के विज्ञान और इसाई धर्म सिद्धान्त दोनों ही से अपने इस विश्वास की पुष्टि करनी चाही कि मनुष्य सृष्टि का केन्द्र और उद्देश्य है तथा सृष्टि की सारी वस्तुएँ और क्रियाएँ मानव अनुभूतियों से सम्बन्धित हैं। उसने अस्थायी रूप में टालमी के आकाश शास्त्र सम्बन्धी सिद्धान्त को भी स्वीकार किया जिसके अनुसार पृथ्वी ब्रह्माण्ड के केन्द्र में स्थित समझी जाती थी। परन्तु उसके अनुयायियों ने उसकी तरह सावधानी से काम नहीं लिया; इसका परिणाम यह हुआ कि पृथ्वी के ब्रह्माण्ड के केन्द्र में स्थित होने का सिद्धान्त रूढ़िवादी व्यवस्था का एक अंग हो गया और आगे चलकर कापर्निकस और गैलिलियो के लिये एक महान् बाधा सिद्ध हुआ। परन्तु एक बार टामस अक्विनास की मूल स्वयंसिद्धियों को स्वीकार कर लेने के बाद उसकी विचारधारा बड़ी निपुण और युक्तिसंगत प्रतीत होती है। यही कारण है कि उसके द्वारा अनुमोदित अरस्तू के दर्शन और विज्ञान की आलोचना किसी समय इसाई धर्म की भी आलोचना समझी जाती थी।

तेरहवीं शताब्दी के ज्ञात विचारकों में रोगर बेकन एक ऐसा व्यक्ति था जिसने प्रयोगों की आवश्यकता को महसूस किया। उसका जन्म १२१० के आस-पास सोमरसेट में इल्चेस्टर के निकट हुआ था। उसने आक्सफोर्ड में गणितज्ञ ऐडम मार्श और चान्सलर राबर्ट ग्रासेटेस्टी द्वारा शिक्षा प्राप्त की। बेकन ने लिखा था, 'हमारे युग में लार्ड राबर्ट और ऐडम मार्श सब विद्याओं में पारंगत थे।' उसने लन्दन के मास्टर जान का गणितज्ञ के रूप में और मास्टर पीटर डी माहर क्यूरिया का गणितज्ञ और कुशल प्रयोगकर्ता के रूप में उल्लेख किया है।

प्रथम-प्रथम प्रासेटेस्टी ने पूरब से यूनानियों को यूनानी भाषा के प्राचीन रूप की शिक्षा देने के लिये अपने यहाँ बुलाया। कुस्तुन्तुनिया में उस समय भी यूनानी भाषा का पठन-पाठन हो रहा था। जैसा पहले कहा गया है बेकन ने एक यूनानी व्याकरण की रचना की। उसका विश्वास था कि ईश्वर से सम्बन्धित बातों तथा दार्शनिक सिद्धान्तों का वास्तविक रहस्य तर्कवादी इसलिए नहीं समझ पाते क्योंकि प्राचीन भाषा में उनकी पूर्ण गति नहीं होती। उसने इस बात पर जोर दिया कि विचारों का खंडन या अनुमोदन परीक्षण और प्रयोग की कसौटी पर होना चाहिए। उस समय गणित और आकाश-शास्त्र तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाते थे क्योंकि उनका पठन-पाठन मुख्यतया यहूदियों और मुसलमानों द्वारा होता था, परन्तु बेकन ने गणित के महत्व को स्वीकार किया क्योंकि वह गणित को मानसिक विकास के लिये आवश्यक तथा प्रयोगात्मक विज्ञान में सहायक समझता था।

शायद इब्न अल हैथम के प्रभाव के कारण बेकन प्रकाश के अध्ययन में विशेष रुचि रखता था। वह प्रकाश-परावर्त्तन (रिफ्लेक्शन) सम्बन्धी नियमों से परिचित था और उसने वर्त्तन (रिफ्रैक्सन)के साधारण नियमों के आधार पर दर्पणों और लेन्सों का वर्णन किया। उसने इन्द्रधनुष का भी एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया। कुछ यंत्रों का उसने आविष्कार किया और कुछ यंत्रों जैसे अपने आप चलने वाले जहाजों तथा उड़ने वाली मशीनों का उसने वर्णन किया या उनके सम्बन्ध में भविष्यवाणी की। तथ्यों तथा कल्पनाओं के जाल में उलझ कर उसने जादू के दर्पण, दाहक शीशा, बारूद, चुम्बक, कृत्रिम स्वर्ण तथा पारस के सम्बन्ध में विचार प्रकट किया।

यदि चतुर्थ पोप क्लिमन्ट ने बेकन से इस बात का आग्रह न किया होता कि वह अपने विचारों को पुस्तक के रूप में लिखकर उसके पास भेज दे, तो सम्भव है बेकन केवल एक जादूगर के रूप में ही स्मरण किया जाता। परन्तु बेकन ने पोप के अनुरोध को मान लिया और इन

पुस्तकों द्वारा हम उसकी सफलताओं से अवगत हो सके हैं। अभाग्य-वश पोप की मृत्यु हो गई और उसकी छत्रछाया के हटते ही बेकन को कारावास का दंड भोगना पड़ा। उसकी बहुत-सी रचनाएँ लुप्त हो गईं। मध्ययुग में इसी प्रकार रचनाएँ होती रहीं और लुप्त होती रहीं और उन्हें पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न करना पड़ा।

यह सत्य है कि बेकन ने गणित और प्रयोगात्मक प्रणाली के महत्त्व को स्वीकार किया तथा तर्कवादियों की कटु आलोचना की। परन्तु दर्शन तथा ईश्वर सम्बन्धी बातों में वह मध्ययुगीय मस्तिष्क का ही अनुगमन करता रहा। वह वास्तविक अर्थ में एक वैज्ञानिक था परन्तु वह समय से पहले ही उत्पन्न हो गया था।

बेकन ने तर्कवादियों की जो आलोचना की थी वह आजकल की दृष्टि से बहुत प्रभावकारी प्रतीत होती है, परन्तु उस समय वह मध्य-युगीय विचारधारा के इतनी प्रतिकूल थी कि उसका कोई विशेष प्रभाव न पड़ सका। तेरहवीं शताब्दी के अन्त और चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में डन्स स्काटस तथा वोकम के विलियम ने दार्शनिक दृष्टिकोण से तर्कवादियों की आलोचना की। धर्म और दर्शन के गठबंधन के विरुद्ध उठते हुए विद्रोह का उन्होंने नेतृत्व किया तथा अपने-अपने क्षेत्र में दोनों की स्वतन्त्रता का समर्थन किया। यह द्वैतवादी दृष्टिकोण संज्ञावाद से, जिसके अनुसार प्रत्येक वस्तु की अलग-अलग वास्तविक सत्ता है, सम्बन्धित हो गया।

इधर चर्च ने तर्कवाद के विरोधी नवीन संज्ञावाद को अवैध घोषित कर दिया। चर्च ने यथार्थवाद को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न १४७३ तक किया। परन्तु स्काटस और वोकम की रचनाओं ने तर्कवाद के प्रभुत्व को बुरी तरह नष्ट कर दिया था। १८७९ में तेरहवें पोप लिओ के एक घोषणापत्र ने रोमन कैथोलिक चर्च के सरकारी दर्शन के रूप में संत अक्विनास के विचारों को पुनः स्थापित कर दिया।

चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में और विशेषकर जर्मनी में एक

नवीन रहस्यवाद का विकास हुआ। कुसा के कार्डिनल निकोलस ने गणित और भौतिक विज्ञान को कुछ आगे बढ़ाया तथा यह सिद्ध किया कि एक बढ़ता हुआ पौधा वायु से कोई पोषक पदार्थ प्राप्त करता है। उसने पृथ्वी के घूमते रहने के सिद्धान्त का भी समर्थन किया। उसका विश्वास था कि ईश्वर केवल दिव्य दृष्टि द्वारा ही जाना जा सकता है, तर्क द्वरा नहीं; इस प्रकार कुसा ने दम तोड़ते हुए मध्ययुगीय तर्कवाद पर अन्तिम प्रहार किया।

परन्तु यह सोचना कि तर्कवाद से केवल हानि हुई, ठीक नहीं है। यह सत्य है कि तर्कवाद ने अरस्तू के दर्शन और विज्ञान को उस काल तक भी जीवित रखा जब वे नव जागरण काल में आधुनिक विज्ञान के विकास में बाधक सिद्ध हुए। परन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि तर्कवादियों ने ही लोगों के मस्तिष्कों में यह विश्वास क़ायम रखा कि प्रकृति की व्यवस्था नियमित है तथा कार्य-कारण सम्बन्ध से नियंत्रित है। ह्वाइट्हेड ने ठीक ही कहा है, 'जितना ऊपर से प्रतीत होता है उससे कहीं अधिक गैलिलियो अरस्तू का ऋणी है। वह अपने सुलझे हुए मस्तिष्क तथा आलोचनात्मक दृष्टिकोण के लिए अरस्तू का ऋणी है। वास्तविक तथ्य को ढूँढ निकालने तथा उसे दृढ़ता के साथ पकड़ने की अमूल्य आदत के लिए भी वह अरस्तू का ऋणी है।

——:०:——

चौथा अध्याय

नव जागरण

कारण:—कभी-कभी ऐसा कहा गया है कि नव जागरण ने एक ऐसी महान् क्रान्ति को जन्म दिया कि उसके कारणों को अच्छी तरह समझ पाना सम्भव नहीं है। परन्तु कई घटनाओं और क्रियाओं के परस्पर संयोग से नव जागरण सम्भव हुआ। यह नवीन परिवर्तन इटली में आरम्भ हुआ। इसका प्रथम कारण यह था कि रोम के विशाल भवनों के ध्वंशावशेषों को देख कर लोग रोम की प्राचीन संस्कृति की कल्पना करने में समर्थ हो सके। दूसरा कारण यह था कि इटली में भद्र पुरुष और महिलायें विशेषकर नगरों में निवास करती थीं जहां लोग आसानी से एक दूसरे के सम्पर्क में आ सकते थे। इसके विपरीत उत्तर के देशों में लोग देहातों में एक दूसरे से अलग-अलग अपनी-अपनी ज़मीदारियों पर रहते थे।

चुम्बकीय दिक् सूचक यंत्र के कारण समुद्री यात्रा सुविधा पूर्वक की जाने लगी। चुम्बक का अविष्कार ग्यारहवीं शताब्दी में चीन में हुआ था और सौ वर्ष बाद वह यूरप में लाया गया। पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में पुर्तगालियों द्वारा महान् अन्वेषण-काल का सूत्रपात हुआ। उन्होंने १४१६ में अज़ोर्स का पता लगाया और बाद में अफ्रीका के पश्चिमी तट की यात्रा की। यह साधारणतया स्वीकार किया जाने लगा कि पृथ्वी गेंद की तरह गोल है और यदि पश्चिम की ओर समुद्र मार्ग से कुछ दिन तक यात्रा की जाय तो एशिया के समुद्र तट तक पहुँचा जा सकता है और भारत तथा कैथे के साथ व्यापार सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। स्पेन के फर्डिनैन्ड और आइसाबेला की सहायता

से कोलम्बस पैलस से रवाना हुआ और १४९२ में बहामा पहुँचा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन आविष्कारों से न केवल पृथ्वी के नवीन भू-खण्डों का पता चला बल्कि मनुष्यों के मस्तिष्क भी विस्तृत हुये। यहीं नहीं, भौतिक साधनों की वृद्धि के अतिरिक्त, जब मेक्सिको और पेरू के चांदी और सोने के कारण सिक्कों का निर्माण अधिक संख्या में होने लगा और इसके फलस्वरूप वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होने लगी तब, जैसा सर्वदा होता है, उद्योग धन्धों और व्यापार की भी उन्नति हुई। इस व्यापारिक उन्नति के कारण सम्पत्ति की वृद्धि हुई जिससे लोगों को अध्ययन और अन्वेषण का पूरा मौका मिला।

जब कई कारण एक ही समय क्रियाशील होते हैं, तब आरम्भ में सम्पूर्ण फल विभिन्न फलों का योग मात्र होता है। परन्तु जब विभिन्न फल एक दूसरे के साथ मिश्रित होने लगते हैं तब कार्य कारण की एक दूसरे पर क्रिया और प्रतिक्रिया होने लगती है और घटनाएँ बड़ी तीव्रता के साथ घटने लगती हैं। भौतिक, नैतिक और बौद्धिक कारणों द्वारा सम्भव सोलहवीं शताब्दी के परिवर्तनों की तीव्रगति का यही रहस्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये विभिन्न कारण अचानक एक साथ मिलकर नव जागरण की वेगवती धारा को जन्म देने में समर्थ हुए।

पेट्रार्क (१३०४–७४) के रूप में एक साहित्य-दूत प्रकट हुआ जिसने तर्कवादियों द्वारा प्रयुक्त दुरूह लैटिन की जगह, प्राचीन एवं सौम्य लैटिन में लोगों की रुचि उत्पन्न करने का प्रयत्न किया तथा यूनानियों और रोम वालों के बुद्धि स्वातन्त्र्य के दावे का भी समर्थन किया।

पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में प्राचीन यूनानी साहित्य में लोगों की बढ़ती हुई दिलचस्पी के कारण बहुत-से यूनानी पूरब से पश्चिम की ओर आये। ये यूनानी अपनी तत्कालीन भाषा की सहायता से प्राचीन भाषा की शिक्षा देने में समर्थ थे। १४५३ में, कुस्तुन्तुनिया के तुर्कों के अधिकार में चले जाने के कारण, यूनानी और अधिक

संख्या में वहां से पश्चिम की ओर आने लगे। बहुत-से अध्यापक अपने साथ हस्तलिखित पुस्तकों को लाये तथा यूरप के पुस्तकालयों में भी ढूंढने पर बहुत-सी पुस्तकें मिलीं। इस प्रकार, आठ-नौ सौ वर्षों के पश्चात् यूनानी भाषा पुनः प्रचलित हुई तथा मानववादियों ने, जिन्होंने प्रथम-प्रथम उसका अध्ययन किया, मानसिक क्षितिज को विस्तृत करने में प्रमुख भाग लिया। मानववादी उन्हें कहते हैं जो मनुष्य को अध्ययन का मुख्य विषय मानते हैं—ईश्वर या प्रकृति को नहीं। इसी मानसिक क्षितिज के विस्तार के फलस्वरूप विज्ञान की प्रगति सम्भव हो सकी। विद्या के प्रसार का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण, पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में चलायमान अक्षरों द्वारा मुद्रण-कला का आविष्कार था। मुद्रण के कारण पुस्तकें और अधिक लोगों द्वारा पढ़ी जाने लगीं।

लेयोनार्डो डा विन्सी—प्राचीन काल के विचारकों का तत्कालीन विचारधारा पर कितना प्रभाव पड़ा, यह निश्चय करना प्रायः कठिन होता है। परन्तु लेयोनार्डो डा विन्सी की पाण्डुलिपियाँ पढ़ी जा सकीं हैं और इस तरह उसकी व्यापक प्रतिभा से हम अवगत हो सके हैं। लेयोनार्डो का जन्म फ्लोरेन्स और पिसा के बीच स्थित, विन्सी स्थान पर १४५२ में हुआ था। वह क्रम से फ्लोरेन्स, मिलान तथा रोम के राज-दरबारों में रहा और १५१९ में फ्रान्स में उसकी मृत्यु हो गई जहाँ वह फ्रैन्सिस प्रथम का सेवक और मित्र था।

लेयोनार्डो एक चित्रकार, शिल्पकार, इंजिनियर, मूर्तिकार, भौतिक-विज्ञानवेत्ता, जीव-शास्त्रज्ञ और दार्शनिक था और यह आश्चर्य की बात है कि इन सभी विषयों में वह पूर्ण पारंगत था। उसका विश्वास था कि केवल पर्यवेक्षण तथा प्रयोग द्वारा ही विज्ञान का अध्ययन हो सकता है। प्राचीन काल के विचारकों के मत कुछ हद तक सहायक सिद्ध हो सकते हैं परन्तु उन्हें अन्तिम सत्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। आर्कमिडिस की रचनाएँ अन्य सभी विचारकों की रचनाओं

की अपेक्षा अधिक सहायक थीं और लेयोनार्डो उसकी पाण्डुलिपियों की बड़ी उत्सुकता के साथ खोज करता था।

उसने 'जड़त्व' सिद्धान्त (इनर्शिया) को भली-भांति हृदयंगम कर लिया था, प्रत्येक वस्तु अपनी गति की दिशा में भारी होती है। अपरिमित शक्ति के स्रोत, निरन्तर गति, को वह असम्भव समझता था। इसी आधार पर उसने उत्तोलक (लीवर) का नियम मालूम किया और उत्तोलक को सरलतम मशीन मानकर उसने उसका वर्णन किया। आर्कमिदिस के 'स्थिर-द्रव' (हाइड्रोस्टैटिक) सम्बन्धी नियमों का ज्ञान प्राप्त करने में वह समर्थ हुआ और उसने 'चल-द्रव' (हाइड्रोडाइनैमिक्स) सम्बन्धी तथ्यों पर भी प्रकाश डाला। नालियों के भीतर पानी के बहाव, जल सतह पर तरंगों की गति, वायु तरंगों तथा ध्वनि सम्बन्धी नियमों का भी इसने वर्णन किया। उसने यह भी स्वीकार किया कि प्रकाश में भी तरंगों के कुछ गुण पाये जाते हैं।

उसका विश्वास था कि पर्वतों पर पाये जाने वाले जन्तुओं के अवशेष अवश्य ही कभी समुद्र तल में रहे होंगे; पृथ्वी की परतों में परिवर्तन हुये होंगे और नये पर्वतों की रचना हुई होगी। परन्तु इन परिवर्तनों के लिये असाधारण एवं अनहोनी घटनाओं की आवश्यकता नहीं है। पो नदी 'ऐड्रियाटिक समुद्र में नये भू-खण्ड का भविष्य में उसी प्रकार निर्माण करेगी जिस प्रकार वह लम्बार्डी के अधिकांश भाग की रचना पहले ही कर चुकी है।' हटन से तीन सौ वर्ष पूर्व ही लेयोनार्डो ने एक प्रकार से एक रस (यूनिफार्मिटेरियन) सिद्धान्त की कल्पना कर ली थी।

एक चित्रकार और मूर्तिकार होने के नाते, बाटिसेली और अल्बर्ट ड्यूरर की भांति, लेयोनार्डो शरीर की चीर-फाड़ की ओर भी आकर्षित हुआ। उस समय लोग इस प्रकार के कार्य को अवांछनीय और गर्हित समझते थे, फिर भी लेयोनार्डो ने 'दस से अधिक मानव शरीरों की चीर फाड़ की। शरीर के भीतरी भागों को स्पष्ट करने के लिये उसने



प्लेट २ लेयोनार्डो डा विन्सी

जिन चित्रों का निर्माण किया, वे यथार्थता और कला दोनों दृष्टियों से उच्च कोटि के हैं। शरीर-शास्त्र के क्षेत्र में उसने यह स्पष्ट किया कि शरीर के विभिन्न अंगों तक रक्त किस प्रकार पोषक-तत्वों को ले जाता है और किस प्रकार वह अनावश्यक पदार्थों को दूर हटाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हार्वे से एक सौ वर्ष पूर्व ही वह रक्त प्रवाह की क्रिया को समझ गया था। ज्योतिष, भ्रमात्मक रसायनविद्या एवं जादू की धारणाओं का उसने तिरस्कार के साथ खण्डन किया। उसकी दृष्टि में प्रकृति पूर्णतया नियमित थी। आकाश-शास्त्र के क्षेत्र में उसका विश्वास था कि ब्रह्माण्ड एक आकाशीय मशीन है और पृथ्वी अन्य नक्षत्रों की भांति एक नक्षत्र है। यह विश्वास अरस्तू के इस विश्वास से कि आकाशीय लोक, दैवी शक्ति से युक्त एवं दोष रहित होते हैं, सर्वथा भिन्न है।

लेयोनार्डो का मत था कि गणित का सम्बन्ध विशुद्ध मानसिक धारणाओं से है और उस क्षेत्र में गणित निश्चित बातें बतलाने में समर्थ है। अन्य वैज्ञानिक विषयों में निरीक्षण से आरम्भ करना चाहिए, सम्भव हो तो बीच में गणित की सहायता लेनी चाहिए और एक स्पष्ट तथा निर्णयकारी प्रयोग द्वारा अंतिम परीक्षा करनी चाहिए। वैज्ञानिक प्रणाली स्थापित करने का यह एक श्लाघ्य प्रयत्न था। दर्शन क्षेत्र में वह 'ब्रह्म ही ब्रह्माण्ड है' सिद्धान्त को मानने वाला प्रतीत होता है, परन्तु सुव्यवस्थित बुद्धि से सम्पन्न होने के कारण उसने ईसाई धर्म के मूल सिद्धान्त का विरोध नहीं किया बल्कि उसे अपने आंतरिक आध्यात्मिक जीवन के लिये आवश्यक साधन के रूप में स्वीकार किया। परन्तु सौभाग्यवश वह उस समय जीवित था जिस समय चर्च की नीति स्वयं कुछ उदार थी; यदि वह कुछ काल बाद पैदा हुआ होता तो उसे कठिनाओं का सामना करना पड़ा होता।

लेयोनार्डो ने अपने समकालीन तथा अपने से पहले के कुछ ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख किया है जो गणित तथा वैज्ञानिक प्रयोगों में दिल-

चस्पी रखते थे। प्रकट है कि इटली में ज्ञान-पिपासुओं की एक गोष्ठी रही होगी परन्तु उनके बारे में बहुत कम मालूम है। उनके सम्बन्ध में थोड़ी-सी जानकारी लेयोनार्डो की रचनाओं से प्राप्त की जा सकती है। तर्कवादियों ने यह शिक्षा देकर कि बुद्धि द्वारा विश्व का रहस्य समझा जा सकता है, लोगों के मस्तिष्कों को नवीन ज्ञान ग्रहण करने के योग्य बना दिया था। परन्तु अभी एक नवीन प्रणाली की फिर भी आवश्यकता थी। अरस्तू और टामस अक्किनास की निष्कर्षात्मक प्रणाली के स्थान पर पर्यवेक्षणात्मक एवं प्रयोगात्मक प्रणाली की प्रतिष्ठा करनी थी। इस प्रणाली को प्रतिष्ठित करने में इटली के उपर्युक्त ज्ञान पिपासुओं और विशेषकर लेयोनार्डो का बहुत हाथ था।

सुधार आंदोलन (रिफार्मेशन)—मानववाद यूरप के उत्तरी देशों में उन विद्यार्थियों द्वारा लाया गया जिन्होंने इटली में अध्ययन किया था। जोहानम्यूलर (१४३६–१४७६) ने टालमी तथा अन्य यूनानी विचारकों की रचनाओं का लैटिन में अनुवाद किया और नर्नबर्ग में एक 'निरीक्षण गृह' की स्थापना की। उसके एफेमराइड्स जो आधुनिक जहाज़ी पंचांगों के पूर्व रूप थे, पुर्तगाल और स्पेन के अन्वेषकों द्वारा प्रयुक्त होते थे। पुनः डेसिडेरियस इरैस्मसने, जो उत्तरी नव-जागरण का प्रमुख व्यक्ति था, मठवालों की निरक्षरता, चर्च की कुप्रथाओं तथा तर्कवादियों के वितण्डावाद का खण्डन किया। उसने अपने सामने उद्देश्य रखा, बाइबिल के वास्तविक रहस्य का उद्घाटन।

कुछ वर्षों तक (दसवें पोप लियो (१५१३–१५२१) के शासन के अन्त तक) रोम स्थित पोप का राज-प्रासाद, प्राचीन संस्कृति का एक जीवित केन्द्र था। परन्तु शाही सेना द्वारा १५२७ में रोम के अधिकृत हो जाने पर, इस बौद्धिक और सांस्कृतिक परम्परा का अंत हो गया। इस घटना के थोड़े ही दिन बाद चर्च ने अपनी उदार नीति का परित्याग कर दिया और इस प्रकार वह नवीन वैज्ञानिक-उन्नति के मार्ग का रोड़ा बन

गया। विचार स्वातन्त्र्य का युद्ध, मार्टिन लूथर द्वारा दिखाये गए मार्ग पर चलकर, विकट संघर्ष के बाद सफल हुआ।

सुधारकों के सम्मुख तीन मुख्य उद्देश्य थे : (१) चर्च के अनुशासन की पुनः स्थापना; (२) सिद्धान्तों का सुधार एवं तथाकथित आरम्भिक सरलता की ओर पुनः पयान; (३) कठोर सैद्धान्तिक नियंत्रण की ढिलाई तथा धर्म पुस्तक पर आधारित व्यक्तिगत निर्णय की स्वतन्त्रता। प्रथम उद्देश्य साधारण जनता को प्रभावित करने में समर्थ हुआ। दूसरा उद्देश्य एक पुरानी परम्परा के अनुगमन की प्रवृत्ति का द्योतक था। वर्तमान काल में भी 'प्रथम चार शताब्दियों' की अच्छाइयों की ओर कुछ लोगों ने संकेत किया है। तीसरा उद्देश्य यहां विशेष रूप से विचारणीय है। यद्यपि कैल्विन स्वतन्त्र विचार का उतना ही विरोधी था जितना कोई भी रोमन इन्क्विज़िटर (दंड-विधायक) हो सकता था, परन्तु उसके पीछे मध्य कालीन चर्च की शक्ति नहीं थी। यद्यपि कई दृष्टियों से ईसाई-साम्राज्य का विघटन एक दुखद घटना थी फिर भी वह परोक्ष रूप से विचार और वक्तृता की स्वतन्त्रा प्राप्ति में सहायक सिद्ध हुई।

कापर्निकस और आकाश विद्या—निकोलस कापर्निक्क (१४७३–१५४३) जिसका पिता पोल था और जिसकी माता जर्मन थी, एक गणितज्ञ और आकाश शास्त्र वेत्ता था। वही अपने लैटिन नाम कापर्निकस से प्रसिद्ध हुआ।

हिपार्कस और टालमी ने जिस ब्रह्माण्ड-व्यवस्था का वर्णन किया था उसमें पृथ्वी का केन्द्रीय स्थान था। आकर्षण शक्ति द्वारा वह सब वस्तुओं को अपनी ओर खींचती थी। आकाशीय लोकों के संचालन का रहस्य वृत्तों तथा उपवृत्तों (एपिसाइकल्स) द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जाता था। यह व्यवस्था अरस्तू की विचारधारा के अनुकूल तथा तथ्यों द्वारा समर्थित थी। परन्तु साथ ही वह जटिल और दुरूह भी थी।

अरस्तू और संत टामस अक्विनास के तर्कवाद के साथ-साथ, संत

आगस्टाइन द्वारा स्वीकृत नवीन प्लैटोमत भी इटली में प्रचलित था। इस मत में पाइथागोरस तथा उसके अनुयायियों की इन धारणाओं का, कि पृथ्वी एक केन्द्रीय अग्नि के चारों ओर घूमती रहती है और अंतिम रहस्यमय सत्य संख्याओं में पाया जा सकता है, समावेश हो गया था। संख्याओं में परस्पर जितना ही सरल सम्बन्ध स्थापित किया जायगा, उतना ही सत्य के निकट पहुँचा जा सकेगा।

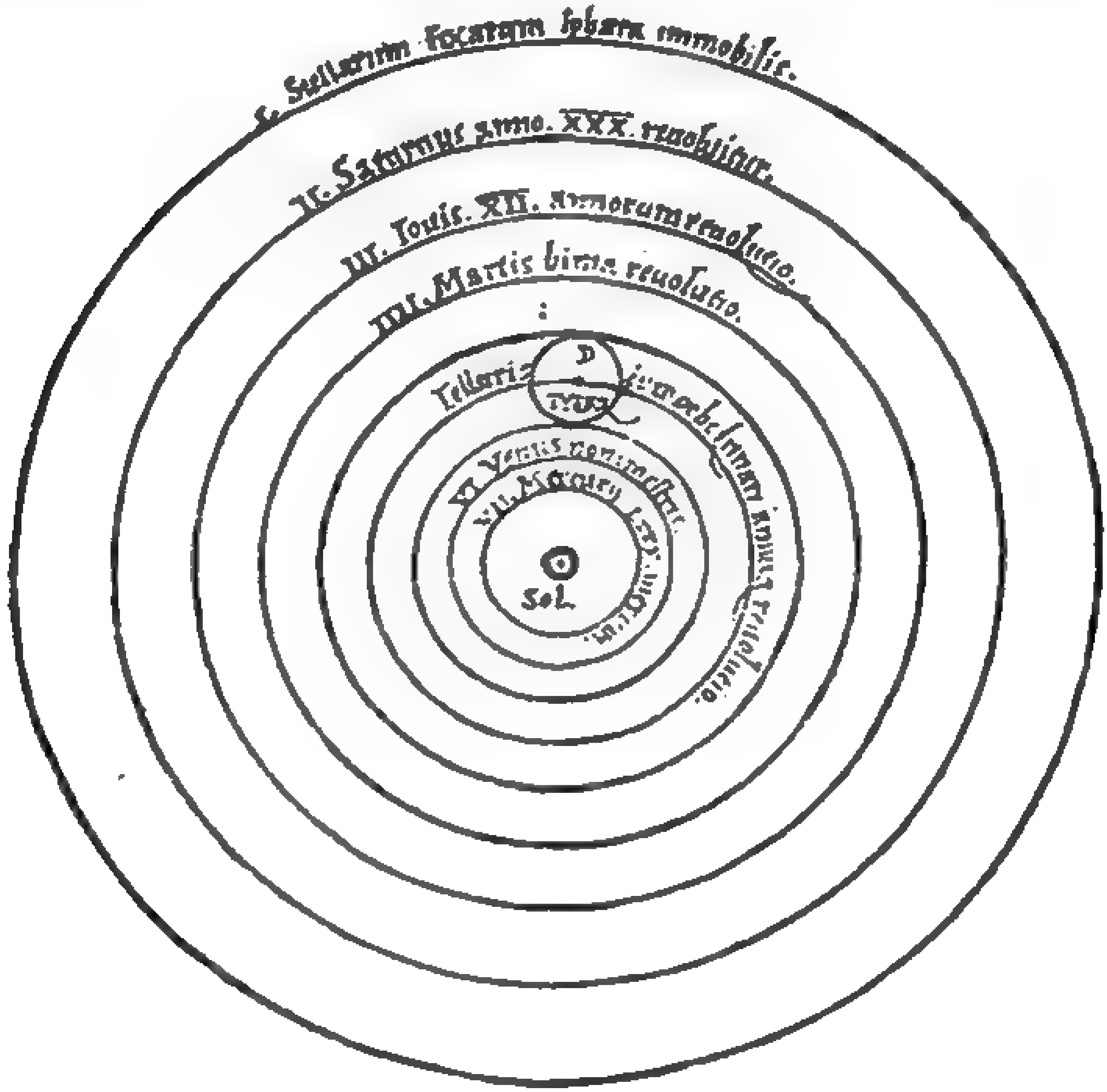
कापर्निकस ने बोलोगना निवासी नोवरा के शिष्यत्व में छः वर्ष इटली में व्यतीत किये। नोवरा ने टालमी द्वारा प्रतिपादित ब्रह्माण्ड व्यवस्था को अत्यन्त जटिल कहकर उसकी आलोचना की। कापर्निकस ने सम्पूर्ण प्राप्य पुस्तकों की खोज की। अपने इस प्रयत्न के दौरान में उसे पता लगा कि हिसेटस के अनुसार पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती रहती है तथा अन्य विचारकों का भी यही मत है। अरिस्टार्कस तो और भी आगे बढ़ा था; उसके मत से पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती रहती है। प्राचीन विचारकों की उपयुक्त धारणाओं ने कापर्निकस को साहस और विश्वास प्रदान किया। उसने सोचा कि इन धारणाओं की सहायता से सम्पूर्ण प्राकृतिक क्रियाओं का रहस्य सरलतापूर्वक स्पष्ट किया जा सकता है। यही नहीं, इन क्रियाओं का पारस्परिक सम्बन्ध और सामंजस्य इतना स्वाभाविक प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण योजना में व्यतिक्रम उत्पन्न किये विना कोई भी परिवर्तन करना असंभव है। 'यही कारण है कि मैंने इस व्यवस्था का अनुकरण किया,' ऐसाउसने लिखा है।

उसके अनुसार ब्रह्माण्ड सबसे बाहर वाले स्थिर नक्षत्रों द्वारा निश्चित एक गोलाकार स्थान में स्थित है तथा गुरुत्वाकर्षण एक सार्व-देशिक शक्ति है। भ्रमणशील लोकों में सैटर्न तीस वर्ष में एक पूरा चक्कर लगाता है, जुपिटर बारह वर्ष में, मंगल दो वर्ष में, पृथ्वी एक वर्ष में, वीनस नौ महीने में और मर्करी ८० दिन में। 'इन सब के मध्य में एक राज सिंहासनपर बैठा हुआ सूर्य नक्षत्रों पर शासन करता है।

ब्रह्माण्ड में हम एक आश्चर्यजनक सामंजस्य पाते हैं। विभिन्न राशियों और परिमाणों में एक निश्चित सम्बन्ध है।' इस प्रकार पाइथागोरस और प्लैटो की भांति कापर्निकस का भी प्रधान लक्ष्य आकाश का सरल-तम और अधिक-से-अधिक सामंजस्यपूर्ण चित्र उपस्थित करना था।

१५३० में कापर्निकस ने अपनी रचनाओं का सूक्ष्म विवरण प्रकाशित किया। उसकी पुस्तक 'डि रेवलुशनिवस आर्वियम सिलेस्टियम' १५४३ में आसियैण्डर की भूमिका के साथ प्रकाशित हुई। भूमिका में इस बात की ओर संकेत किया गया था कि कापर्निकस के सिद्धान्त का महत्व केवल इस बात में है कि वह गणित को कुछ सरल बना देता है। इस संकेत ने एक भ्रमपूर्ण धारणा को जन्म दिया कि कापर्निकस स्वयं अपने सिद्धान्त की भौतिक यथार्थता में विश्वास नहीं करता था। पुस्तक को उस काल के विज्ञान पर आधारित आलोचना का भी सामना करना पड़ा। यदि पृथ्वी वास्तव में घूमती है तो ऊपर फेंकी गई वस्तुओं को अपने पूर्व स्थान से पीछे की ओर गिरना चाहिये। पृथ्वी पर स्थित ढीली वस्तुओं को उड़ जाना चाहिये। यही नहीं, स्वयं पृथ्वी का विघटन हो जाना चाहिये। इस प्रकार की भ्रमपूर्ण आलोचनाओं के कारण कापर्निकस का सिद्धान्त बहुत मंद गति से ही आगे बढ़ सका और उसका पूर्ण प्रचार तब तक न हो सका जब तक गैलिलियो ने अपने नवीन दूरबीन की सहायता से जूपिटर की परिक्रमा करने वाले उपग्रहों का पता नहीं लगा लिया। अपने उपग्रहों के साथ जुपिटर एक प्रकार से छोटे आकार का सूर्य परिवार ही प्रतीत होता है। परन्तु १६१६ तक इन नवीन सिद्धान्तों और आविष्कारों ने पोप परम्परा को बहुत भयभीत कर दिया। गैलिलियो दोषी ठहराया गया और उपर्युक्त सिद्धान्त की यह कहकर निन्दा की गई कि वह निराधार और धर्म पुस्तक के प्रतिकूल है। इतनी छूट अवश्य दी गई कि इस सिद्धान्त का अध्ययन केवल एक गणित सम्बन्धी कल्पना और सम्भावना के रूप में किया जा सकता है। परन्तु उपर्युक्त सिद्धान्त के विरुद्ध इस निर्णय पर पोप ने कभी हस्ताक्षर

नहीं किया और १८२२ तक अधिकृत रूप से सूर्य को ग्रहों के केन्द्र में स्थित मान लिया गया। गैलिलियो की 'यातना' को बढ़ा-चढ़ाकर कहा जाता है; वास्तव में उसे केवल एक हल्की ताड़ना और साधारण कारावास का ही सामना करना पड़ा। शांतिपूर्ण वातावरण में उसकी मृत्यु हुई।



कापर्निकस द्वारा ब्रह्माण्ड का चित्र

फिर भी कापर्निकस के ब्रह्माण्ड व्यवस्था सम्बन्धी सिद्धान्त ने लोगों के मस्तिष्कों में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केन्द्र

न रहकर अन्य ग्रहों की भाँति एक ग्रह मात्र रह गई। इस परिवर्तन ने यद्यपि अनिवार्य रूप से मनुष्य के इस विश्वास को नष्ट नहीं किया कि वह सृष्टि का अंतिम लक्ष्य और केन्द्र है, फिर भी उसके इस विश्वास को एक गहरा धक्का अवश्य लगा।

टामस डिग्स ने, जो एक अँग्रेज़ गणितज्ञ और इंजिनियर था, कापर्निकस के सिद्धान्त को स्वीकार किया परन्तु ब्रह्माण्ड की सीमा बनाने वाले स्थिर नक्षत्रों का अस्तित्व उसने नहीं स्वीकार किया। उसका विश्वास था कि ब्रह्माण्ड असीम है और अनन्त आकाश में नक्षत्र बिखरे पड़े हैं। ब्रूनो का भी ऐसा ही विचार था परन्तु वह बहुदेववादी भी था। शायद वह अपने इसी विश्वास के कारण इन्क्विज़िशन (प्रश्नकारक संस्था) द्वारा अपराधी घोषित किया गया और १६०० में जीवित जला दिया गया।

आकाशीय निरीक्षण और विशेषकर ग्रहों की गतिविधि के अध्ययन के साधनों में डेनमार्क के वैज्ञानिक टिचोब्राहे (१५४६–१६०१) ने बहुत सुधार किया। उसकी मृत्यु से एक वर्ष पूर्व जान केप्लर (१५७१–१६३०) उसके सम्पर्क में आया। इस प्रकार केप्लर, ब्राहे से तथ्यों का एक अपूर्व संग्रह प्राप्त कर सका।

प्रायः ऐसा समझा जाता है कि केप्लर मुख्यतया ग्रहों की गति से सम्बन्धित नियमों को मालूम करने के प्रयत्न में ही व्यस्त रहता था और उसने तीन नियमों को मालूम भी किया जिनका स्पष्टीकरण आगे आने वाले न्यूटन ने किया। परन्तु केप्लर एक उच्चतर उद्देश्य से प्रेरित था। प्लैटो की धारणाओं से पूर्णतया प्रभावित होने के कारण उसका विश्वास था कि ईश्वर ने विश्व की रचना पूर्ण संख्याओं के सिद्धान्त के अनुसार की है। वास्तव में वह मूल कारणों—आकाशीय लोकों के संगीत एवं विश्व के रचयिता के मस्तिष्क की गणित सम्बन्धी कल्पना की तलाश में था।

उसने इन तीन नियमों को मालूम किया: (१) ग्रह अंडाकार कक्षाओं में भ्रमण करते हैं और सूर्य एक नाभि (फोकस) में स्थित

है। (२) सूर्य के केन्द्र और किसी ग्रह के केन्द्र को मिलाने वाली कल्पित रेखा द्वारा निर्मित क्षेत्रफल और समय में निश्चित सम्बन्ध होता है। (३) किसी ग्रह को सूर्य की परिक्रमा करने में जितना समय लगता है, उसके वर्ग में और उस ग्रह और सूर्य के बीच की मध्यमान दूरी के घन में निश्चित सम्बन्ध होता है। ऐसे ही अन्य काल्पनिक सम्बन्धों तथा नियमों की सम्भावना से वह और अधिक संतोष एवं प्रसन्नता प्राप्त करता था, यद्यपि बाद में किये गए निरीक्षणों ने उन सम्बन्धों की पुष्टि नहीं की। १५६० के आसपास सांकेतिक बीजगणित के कारण गणित की प्रगति विशेष रूप से सम्भव हो सकी।

रसायन शास्त्र और चिकित्सा विज्ञान—ऐसी आशा की जाती थी कि यूनानी विद्या के पुनरुद्धार के फलस्वरूप चिकित्सा विज्ञान में भी वैसा ही सुधार होगा जैसा साहित्य और दर्शन में हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि जब चिकित्सकों का ध्यान टीकाओं से हट कर हिपाक्रेटीज़ और गैलेन की रचनाओं की ओर आकर्षित हुआ तो ज्ञान की सीमा बढ़ी, परन्तु इस ज्ञान के आविष्कृत, स्वीकृत और व्यवस्थित हो जाने के पश्चात लोग पुनः प्राचीन विचारकों के मतों पर आवश्यकता से अधिक निर्भर रहने लगे। परन्तु सौभाग्यवश कुछ ही दिन बाद लोग एक बार फिर निरीक्षण और प्रयोग का सहारा लेने लगे। इसी समय चिकित्सा विज्ञान का, तान्त्रिक रसायन विद्या के नवीन रूप, रसायन शास्त्र, के साथ गठबंधन हुआ।

अरबों ने पाइथागोरस की इस धारणा में कि मूल-तत्वों का भौतिक अस्तित्व नहीं होता और विभिन्न गुणों में ही उनकी सत्ता निहित है, परिवर्तन कर दिया था। उनका विश्वास था कि मूल तत्व तीन हैं—गंधक, शरीर का वह अंश जो उसे जलने के योग्य बनाता है और शरीर के जलने पर लुप्त हो जाता है, पारा, जो द्रव के रूप में स्रवित होता है, और लवण जो ठोस भस्म के रूप में शेष रह जाता है। अरब विद्या के साथ इस सिद्धान्त ने भी यूरप में प्रवेश किया।

थियोफ्राष्ट वान बोहेनहीम (१४६०--१२४१) ने, जो स्विट्ज़रलैण्ड का एक चिकित्सक था, खनिज पदार्थों, यन्त्रों, विभिन्न देशों की बीमारियों और उनके उपचारों के अध्ययन के उद्देश्य से यूरप का भ्रमण किया। बैस्ले में उसने कुछ दिन तक चिकित्सा का कार्य किया। यहीं रोमन युग के महान् चिकित्सक सेल्सस के नाम पर उसका नया नाम पैरासेल्सस रखा गया। इसी नाम से वह अधिक विख्यात है। लकीर के फकीर वैज्ञानिकों को वह घृणा की दृष्टि से देखता था। चिकित्सा-क्षेत्र में वह गैलेन और अविसेना के मतों की अपेक्षा अपने निरीक्षण और अनुभव को अधिक महत्त्व देता था। उसने कई रासायनिक पदार्थों को तैयार किया, जिनमें एक ईथर (यह एक रासायनिक द्रव्य है, आकाश में व्याप्त ईथर नहीं) भी था। मुर्गी के बच्चों पर प्रयोग कर उसने ईथर के चेतना-नाशक गुण को भी मालूम कर लिया था। परन्तु उसे उस समय यह नहीं मालूम था कि अपने चेतनानाशक गुण के कारण ईथर मानव जाति के लिए कितना उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

प्रथम-प्रथम वान हेल्मान्ट ने, जिसका जन्म ब्रुसल्स में १२७७ में हुआ था और जो एक प्रयोगकर्त्ता और रहस्यवादी था, इस बात को महसूस किया कि वायु की प्रकृति के और भी बहुत-से पदार्थ हैं, और उसने उनके लिये 'गैस' शब्द का प्रयोग किया। उसका विश्वास था कि जल ही एकमात्र मूलतत्त्व है और अपने विश्वास की सत्यता को परीक्षा करने के उद्देश्य से उसने एक निश्चित वजन की सूखी मिट्टी में एक पौधे (विलो) को रखा और उसे केवल जल देता रहा। पाँच वर्ष के पश्चात् उस पौधे का वज़न १६४ पौण्ड बढ़ गया और मिट्टी के वज़न में केवल दो औंस की कमी हुई। वान हेल्मान्ट ने इससे यह निष्कर्ष निकाला कि पौधे के शरीर का निर्माण केवल पानी ही से हुआ है। यह निष्कर्ष उस समय की दृष्टि से निश्चय ही यथार्थ था क्योंकि यह तथ्य एक शताब्दी के बाद मालूम किया जा सका कि हरे पौधे अपनी वृद्धि के

लिये हवा में पाई जाने वाली कार्बनडाइआक्साइड से कार्बन भी लेते हैं।

लैक्टोरियस (१२६१--१६३६) ने मानव शरीर का तापक्रम मालूम करने के लिये एक थर्मामीटर का प्रयोग किया। डुब्वायस (१६१४--१६७२) ने रसायन-शास्त्र की धारणाओं का चिकित्सा क्षेत्र में प्रयोग करते हुए इस बात की शिक्षा दी कि स्वास्थ्य शरीर के द्रवों पर निर्भर है जो गुण में ठीक एक दूसरे के विपरीत होती हैं और जो एक दूसरे से मिलने पर सौम्य पदार्थों को रचना करती हैं। रसायन-शास्त्र का यह प्रथम सिद्धान्त था जो ज्वलन क्रिया पर आधारित नहीं था। इस सिद्धान्त ने अम्लों, क्षारों और लवणों के अध्ययन का मार्ग प्रशस्त कर दिया और 'रासायनिक आकर्षण' की धारणा की ओर संकेत किया।

शल्य शास्त्र, शरीर विज्ञान तथा वनस्पति शास्त्र—मानव शरीर की चीर फाड़ को अवांछनीय समझने की प्रवृत्ति के कारण तेरहवीं शताब्दी तक शल्य शास्त्र में कोई विशेष प्रगति न हो सकी। चौदहवीं शताब्दी में मान्डिनो के कार्य के पश्चात् उसकी वृद्धि पुनः रुक गई। उस समय लेयोनार्डो की पुस्तिकाएं अप्राप्य थीं। आधुनिक युग का प्रथम प्रभावशाली शल्य शास्त्री ऐन्ड्रियस विसैलियस (१२१२--१२६४) था। उसने १२४३ में अपनी पुस्तक 'फैब्रिका ह्यूमनी कार्पोरिस' को प्रकाशित किया जिसमें उसने ऐसे तथ्यों का समावेश किया जिन्हें उसने स्वयं निरीक्षण द्वारा मालूम किया था और जिनकी यथार्थता वह सिद्ध कर सकता था। उसमें उसने गैलेन और मान्डिनो की शिक्षाओं का वर्णन नहीं किया था। हड्डियों, शिराओं, उदर-स्थित अंगों और मस्तिष्क पर उसका काम विशेष रूप से महत्वपूर्ण था। वह प्रथम व्यक्ति था जिसने मानव जाति के वर्गीकरण में खोपड़ी की बनावट का महत्व स्वीकार किया। सोलहवीं शताब्दी के अंत के पहले ही, शल्य-शास्त्र, प्राचीन विचारकों की भ्रमपूर्ण धारणाओं के चंगुल से मुक्ति पा गया।

शरीर-शास्त्र के क्षेत्र में विसैलियस ने उस समय प्रचलित इस

धारणा को स्वीकार किया कि भोजन लिवर (यकृत) में पहुँचकर एक 'प्राकृतिक शक्ति' (नेचुरल स्पिरिट) से युक्त हो जाता है। इस शक्ति को हृदय 'जीवन शक्ति' (वाइटल स्पिरिट) में और मस्तिष्क 'कार्य शक्ति' (एनिमल स्पिरिट) में परिवर्तित कर देता है। यह 'कार्य शक्ति' एक गुण है, कोई पार्थिव पदार्थ नहीं है। इसी की सहायता से आत्मा और शरीर अपना-अपना कार्य सम्पादित करते हैं। 'जहाँ तक मस्तिष्क की बनावट का प्रश्न है, बन्दर, कुत्ता, घोड़ा, बिल्ली तथा अन्य चौपाये, जिनकी मैंने परीक्षा की है, प्रायः प्रत्येक दृष्टि से मनुष्य से मिलते-जुलते हैं।'

वान हेल्मान्ट का विश्वास था कि पौधों और जानवरों में केवल एक 'विशेष जीवन शक्ति' होती है जो मानव आत्मा से निम्न कोटि की सत्ता है। मनुष्यों में आत्मा शारीरिक क्रियाओं का नियंत्रण करता है और अपने सेवकों (आर्चेई) की सहायता से अपना कार्य सम्पादन करता है। ये सेवक सीधे अंगों को प्रभावित करते हैं और इस कार्य में वे 'उत्तेजक पदार्थों' की सहायता लेते हैं। ये उत्तेजक पदार्थ साधारण रासायनिक पदार्थ नहीं होते बल्कि एक दूसरे प्रकार के रहस्यमय पदार्थ होते हैं। सिल्वियस भी उत्तेजक पदार्थों में विश्वास करता था परन्तु उसके उत्तेजक पदार्थ, गंधक के तेज़ाब की तरह, जिसके खड़िया पर डालने से बुदबुदाहट होती है, साधारण रासायनिक पदार्थ थे। रसायन-शास्त्र और शरीर-शास्त्र के इस गठबंधन के फलस्वरूप, सिल्वियस और उसके शिष्यों द्वारा इस क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया।

रक्त-क्रिया के अध्ययन में गैलेन के सिद्धांत बाधक थे। गैलेन की शिक्षा थी कि शिराओं और धमनियों में उठती और गिरती हुई दो भिन्न रक्त-धाराएँ प्रवाहित होती रहती हैं। ये धारायें अंगों तक 'जीवन शक्ति' और 'प्राकृतिक शक्ति' ले जाती हैं। सर्वेटस ने, जो एक शरीर शास्त्रवेत्ता और धर्मशास्त्री था, और जो जेनेवा में कैल्विन द्वारा अपने स्वतंत्र विचारों के कारण जला दिया गया, यह मालूम किया कि रक्त फेफड़ों से होकर गुज़रता है। परन्तु यह ज्ञान कि हृदय किस प्रकार

फेफड़ों और शरीर में रक्त प्रवाह का चक्र कायम रखता है, स्पष्ट रूप से केवल तब प्राप्त किया जा सका जब हार्वे ने (१२७८-१६५७) शरीर की चीर-फाड़ का कार्य अपने हाथ में लिया।

हार्वे की शिक्षा गान्वाइल और केयस कालेज कैम्ब्रिज में हुई थी। वह कुछ वर्ष विदेश में रहकर पुनः इंगलैण्ड लौट आया और वहाँ एक चिकित्सक के रूप में उसने कार्य करना आरम्भ कर दिया। चार्ल्स प्रथम के साथ उसकी मित्रता थी और उसने चार्ल्स को अण्डे के भीतर मुर्गी के बच्चे का विकास दिखाया था। ऐसा कहा जाता है कि एजहिल के युद्ध के समय, जबकि वह राजकुमारों का अभिभावक था, वह एक झाड़ी के नीचे बैठकर पुस्तकें पढ़ा करता था। राजा के साथ वह आक्स-फोर्ड चला आया और कुछ काल के लिए वह मर्टन का निरीक्षक रहा।

१६२८ में उसने एक छोटी परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित की। उसने इस बात की ओर संकेत किया कि आधा घंटा के भीतर हृदय से होकर शरीर-स्थित सारा रक्त गुज़र जाता है। इससे उसने यह निष्कर्ष निकाला कि रक्त धमनियों से शिराओं में जाता है और फिर हृदय में लौट आता है। वह कहता है, 'मैंने यह सोचना आरम्भ किया, क्या यह सम्भव नहीं कि रक्त का प्रवाह एक वृत्ताकार मार्ग का अनुसरण करता है। आगे चलकर मैंने पाया कि रक्त वास्तव में ऐसे ही पथ का अनुगमन करता है। यह तथ्य उसने जीवित जानवरों के हृदयों की परीक्षा कर मालूम किया। हार्वे ने रक्त प्रवाह की क्रिया के अध्ययन में यंत्र विज्ञान के सिद्धान्तों का प्रयोग किया और उसे इस प्रयत्न में सफलता मिली। १६५१ में एक दूसरी पुस्तक 'दि जेनेरेटियन ऐनिमैलियम' प्रकाशित हुई जिसने भ्रूण-विद्या पर अरस्तू के बाद सबसे अधिक प्रकाश डाला।

हार्वे के रक्त प्रवाह सम्बन्धी कार्य की पूर्णता के लिये सूक्ष्म दर्शक यंत्र आवश्यक था। १६६१ में इस यंत्र की सहायता से बोलोगना निवासी मैल्पिगी ने एक मेंढक के फेफड़े की परीक्षा कर यह मालूम किया कि

धमनियाँ और शिरायें एक दूसरे से मांस द्वारा नहीं जुड़ी हैं जैसा कि पहले समझा जाता था, बल्कि अत्यन्त सूक्ष्म नलियों द्वारा परस्पर सम्बन्धित होती हैं। मैल्पिगी ने सूक्ष्म दर्शक यंत्र की सहायता से ग्लैन्डों (शरीर के भीतर की गिल्टियाँ, जिनसे निकल कर कुछ ऐसे रस रक्त में मिलते रहते हैं जो विशेष प्रकार के प्रभाव उत्पन्न करते हैं) और अन्य अंगों का भी परीक्षण किया। सर्व-प्रथम उसी ने इसका भी वर्णन किया कि जब अंडे से जीवित पक्षी का विकास आरम्भ होता है तो उसमें कौन-कौनसे परिवर्तन होते हैं।

नवजागरण ने मानव जीवन की सुरक्षा और सुविधा के अनुकूल वातावरण उत्पन्न किया और इसके फलस्वरूप कलात्मक भावनाओं का विकास हुआ। इन भावनाओं तथा सम्पत्ति की वृद्धि ने सरकारी और निजी पार्कों तथा उद्यानों के निर्माण को प्रोत्साहन प्रदान किया। वृक्ष, पौधे और फूल अच्छे ढंग से उगाये जाने लगे। १२४२ में पडुआ और उसके बाद पिसा, लेडन और अन्य स्थानों में वनस्पतीय उद्यान निर्मित किये गये। उपयुक्त पौधों से औषधि बनाने के लिये कारखाने भी खुले।

मध्यकालीन 'संकेत सिद्धान्त' के कारण वैज्ञानिक वनस्पति शास्त्र का विकास शीघ्रतापूर्वक नहीं हो सका। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी पौधे का रंग या उसका कोई अन्य प्रत्यक्ष गुण इस बात का द्योतक था कि ईश्वर ने उसकी रचना किस उद्देश्य से की है। पौधों से सम्बन्धित कहानियाँ भी अंधविश्वास और चमत्कार से युक्त थीं।

चित्रों की सहायता से पौधों का यथार्थ वर्णन सर्वप्रथम वैलेरियस कार्डस (१२१२–१२४४) ने किया। इस प्रकार डायस्कराइडीज़ के बाद अर्थात् पन्द्रह सौ वर्ष के पश्चात् प्रथम-प्रथम, कार्डस द्वारा व्यवस्थित वनस्पति-शास्त्र की प्रगति कुछ अंश तक सम्भव हुई। इस काल के वनस्पति-शास्त्र-वेत्ताओं में जीन और गैस्पार्ड के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने मिलकर पौधों की एक विस्तृत सूची तैयार की। पौधों से सम्बन्धित और भी ग्रंथ प्रकाशित हुये। इनमें से एक, १२५१ और १२६८

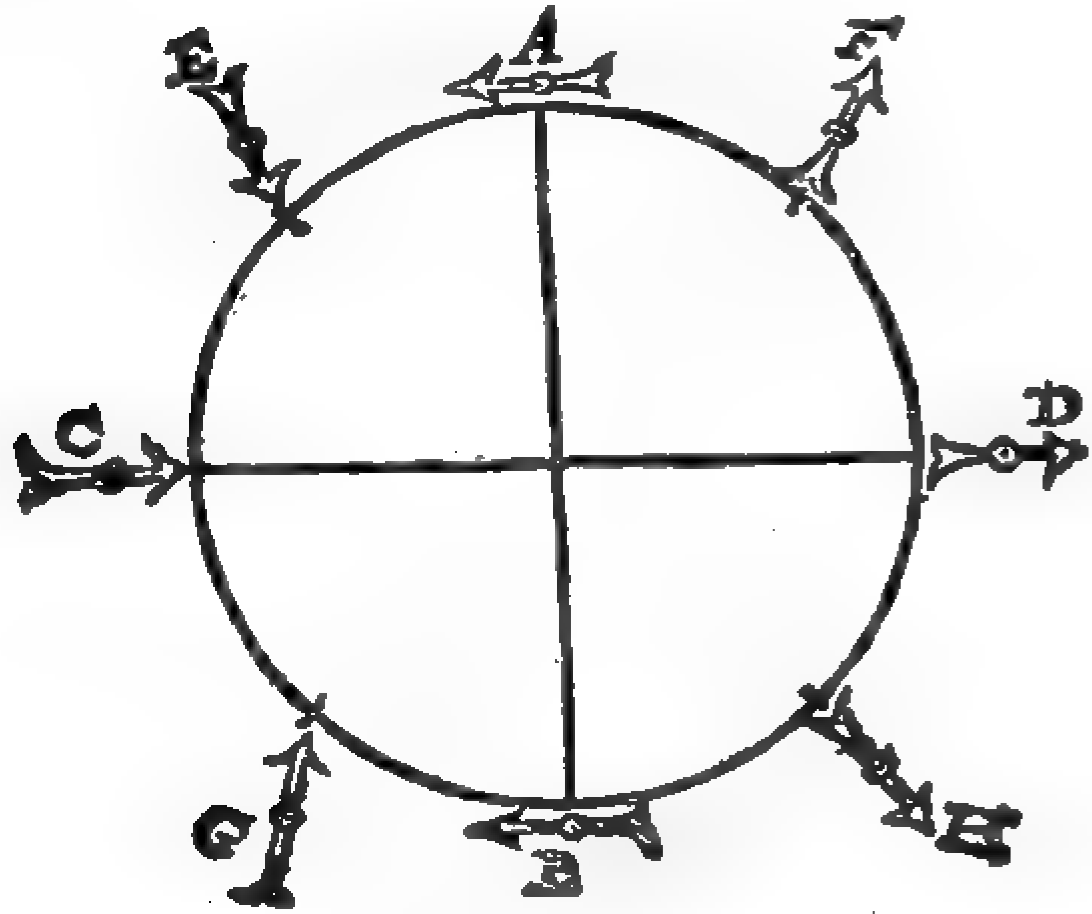
के बीच विलियम टर्नर द्वारा प्रकाशित किया गया। एक दूसरी बहुत प्रसिद्ध परन्तु अपेक्षाकृत कम यथार्थ पुस्तक, जॉन गेरार्ड द्वारा १५९७ में प्रकाशित की गई।

जानवरों से सम्बन्धित पुस्तकों का सम्पादन भी मध्य युग में हुआ था, परन्तु उनका आधार प्रकृति-निरीक्षण नहीं था। प्लिनी द्वारा वर्णित तथ्यों का ही उनमें समावेश था। परन्तु नवजागरण काल में एक नवीन प्रवृत्ति काम कर रही थी। जानवरों का अध्ययन किया जाता था और जन्तुशालाओं की स्थापना की जाने लगी। प्रथम जन्तुशाला लिस्बन में स्थापित की गई थी।

चुम्बकत्व और विद्युत्—विलियम गिलबर्ट ने (१५४०–१६०३) अपनी पुस्तक 'दि मैग्नेटी' में चुम्बक से सम्बन्धित सम्पूर्ण ज्ञात तथ्यों का वर्णन किया और उसने उसमें अपने निरीक्षण के परिणामों का भी समावेश किया। दिक्-सूचक सुई, जिसका आविष्कार चीनियों ने ग्यारहवीं शताब्दी में किया था, शीघ्र ही मुसलमान समुद्र-यात्रियों द्वारा काम में लाई जाने लगी। अपने आविष्कार के सौ वर्ष बाद यह चुम्बकीय सुई यूरप में भी प्रचलित हो गई।

गिलबर्ट ने यह मालूम करने का प्रयत्न किया कि एक चुम्बक दूसरे चुम्बक को कितने जोर से अपनी ओर खींचता है या दूर हटाता है। उसने यह भी मालूम किया कि यदि एक चुम्बक एक पतले धागे की सहायता से स्वतंत्रतापूर्वक लटका दिया जाय तो वह उत्तर-दक्षिण दिशा में स्थित होने के अतिरिक्त, उत्तर दिशा में नीचे की ओर एक विशेष कोण बनाता हुआ झुक जाता है। यह कोण उस स्थान के अक्षांश पर निर्भर है। इससे उसने यह निष्कर्ष निकाला कि पृथ्वी स्वयं एक चुम्बक है। पृथ्वी के चुम्बकीय ध्रुव, उसके भौगोलिक ध्रुवों के पास हैं परन्तु वे एक दूसरे से सटे हुए नहीं हैं। किसी चुम्बक की चुम्बकीय शक्ति उसकी पदार्थ मात्रा पर निर्भर होती है। मात्रा जितनी ही अधिक होगी शक्ति भी उतनी ही अधिक होगी। शायद

प्रथम बार पदार्थ-मात्रा और वज़न का भेद स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया।



चुम्बक का झुकाव

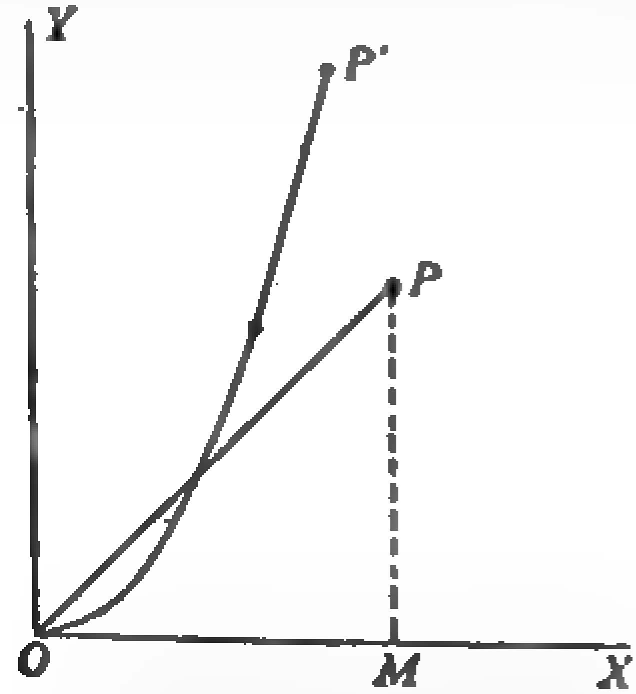
गिल्बर्ट ने यह भी मालूम किया कि जब अम्बर को रगड़ दिया जाता है तो वह एक विशेष शक्ति से सम्पन्न हो जाता है। इस शक्ति का परिमाण उसने एक लटकी हुई सूई की सहायता से मालूम किया। इस शक्ति को उसने 'इलेक्ट्रिसिटी' (विद्युत्) नाम दिया क्योंकि अम्बर को यूनानी भाषा में इलेक्ट्रान कहते हैं। बाद में उसने मालूम किया कि अम्बर के अतिरिक्त और भी बहुत से पदार्थ हैं जो रगड़े जाने पर विद्युत् से आवेशित हो जाते हैं। उसका विश्वास था कि चुम्बक और विद्युत् आवेशित वस्तुओं से एक प्रकार का अपार्थिव सूक्ष्म प्रभाव विकीरित होता है जो समीपवर्ती वस्तुओं को प्रभावित एवं आकर्षित करता है। सूर्य और ग्रहों की गतियों का रहस्य स्पष्ट करने के प्रयत्न में भी उसने ऐसी ही अर्ध-रहस्यात्मक धारणाओं का प्रयोग किया।

दर्शन-शास्त्र—यद्यपि डन्स स्काटस, ओकम के विलियम और कुसा के निकोलस ने अरस्तू के तर्कवाद को एक ज़बर्दस्त धक्का दिया था, फिर भी नवजागरण काल में वह बहुत शक्तिशाली था और अरस्तू के दर्शन और विज्ञान की प्रतिष्ठा बहुत कुछ कायम थी। जब कभी नवीन दृष्टिकोण वाले विचारक किसी सिद्धान्त की यथार्थता की परीक्षा प्रयोग द्वारा करने के लिये उद्यत होते थे, तब रूढ़िवादी पंडित अरस्तू की रचनाओं में से कोई उद्धरण उनके सामने उपस्थित कर देते थे और अरस्तू का मत उनके ऊपर लादने में सफल होते थे।

ऐसी स्थिति थी जब इंगलैण्ड के लार्ड चान्सलर फ्रैन्सिस बेकन (१५६१–१६२६) ने संसार के सम्मुख यह कल्याणकारी घोषणा की कि 'मनुष्य की महानता और शक्ति की सीमा का और अधिक विस्तार होना चाहिए।' बेकन का विश्वास था कि तमाम सम्भव निरीक्षणों और प्रयोगों के परिणामों को अंकित करने और व्यवस्थित रूप में रखने से, तथ्यों के पारस्परिक सम्बन्ध और नियम प्रायः अपने आप स्पष्ट हो जायंगे। परन्तु प्रकृति से सम्बन्धित इतनी क्रियाएं और इतने सम्भव प्रयोग हैं कि केवल बेकन की उपर्युक्त प्रणाली की सहायता से विशेष प्रगति नहीं हो सकती। अनुसंधान की प्राथमिक अवस्था में ही अन्तर्दृष्टि और कल्पना का सहारा लेना एवं तथ्यों के आधार पर किसी काम-चलाऊ सिद्धान्त का प्रतिपादन करना अनिवार्य हो जाता है। इसके पश्चात् उस कामचलाऊ सिद्धान्त के स्वाभाविक निष्कर्षों की जांच ज्ञात तथ्यों और प्रयोगों की कसौटी पर की जाती है। इस प्रकार एक-एक कर बहुत-से अनुमानों की परीक्षा तब तक की जाती है जब तक उनमें से कोई अनुमान जांच की कसौटी पर पूर्ण रूप से खरा नहीं उतर जाता। परीक्षा में उत्तीर्ण अनुमान को कम-से-कम कुछ काल के लिये 'सिद्धान्त' की पदवी प्रदान कर दी जाती है। उसके आधार पर भौतिक घटनाओं के सम्बन्ध में की गई भविष्यवाणी के यथार्थ होने की बहुत अधिक सम्भावना होती है। विज्ञान के अध्ययन की प्रणाली उससे कहीं

अधिक अनुमान पर आधारित और काव्यात्मक है जितना बेकन ने समझा था। फिर भी बेकन प्रथम व्यक्ति था जिसने गम्भीरता के साथ अनुमानात्मक विज्ञान के दार्शनिक पहलू पर विचार किया और बड़ी योग्यता के साथ नवीन प्रयोगात्मक प्रणाली का समर्थन किया।

रेने डकार्ट (१५६६–१६५०) ने, जिसने टूरेन में जन्म लिया था और जो हालैण्ड और स्वेडन में भी रहा था, भौतिक विज्ञान में प्रयुक्त होने वाले गणित में सुधार किया और आधुनिक आलोचनात्मक दर्शन-शास्त्र की स्थापना की। प्रथम-प्रथम उसने नियामक (कोआर्डिनेट) रेखागणित में बीजगणित का प्रयोग किया। एक बिन्दु प का स्थान ख और य दिशा में क्रम से व म और म प लम्बाइयों द्वारा निश्चित किया जा सकता है। यदि य, ख और एक निश्चित संख्या के गुणनफल के बराबर हो तो हम एक सीधी रेखा, व प, पाते हैं। परन्तु यदि य, ख² और एक निश्चित संख्या के गुणनफल के बराबर हो तो हम एक परवलय (परावला) व प′, पाते हैं। बीजगणित द्वारा इन समीकरणों को हल किया जा सकता है और रेखागणित के आधार पर उनके परिणामों का अर्थ लगाया जा सकता है। इस प्रणाली की सहायता से भौतिक विज्ञान से सम्बन्धित बहुत-सी समस्याओं को हल किया जाता है।



दकार्ते की नियामक ज्यामिति

डकार्ट ने यंत्र-विज्ञान का प्रयोग ब्रह्माण्ड व्यवस्था से सम्बन्धित एक सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिये किया। उसकी दृष्टि में भौतिक ब्रह्माण्ड में कहीं भी रिक्त स्थान नहीं था। ऐसी अवस्था में किसी वस्तु की गति का प्रभाव घूम-फिरकर पुनः पूर्व स्थान पर प्रकट होगा क्योंकि कहीं रिक्त स्थान है ही नहीं जहाँ गति विलीन हो सके। ऐसी ही धारणाओं के आधार पर डकार्ट ने एक 'भंवर-सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया, जिसके अनुसार एक पत्थर पृथ्वी की ओर और एक उपग्रह अपने ग्रह की ओर खिंचता है। यही नहीं, ग्रह अपने उपग्रह के साथ एक बृहत्तर भंवर में सूर्य के चारों ओर चक्कर काटता रहता है। आगे चलकर न्यूटन ने गणित की सहायता से सिद्ध कर दिया कि डकार्ट की भंवरों के स्वाभाविक गुणों और निरीक्षण द्वारा मालूम किये गए तथ्यों में मेल नहीं है। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि डकार्ट का 'भंवर सिद्धान्त' ब्रह्माण्ड व्यवस्था की जटिल समस्या को साधारण गति-विज्ञान की सहायता से हल करने का एक साहसपूर्ण और प्रशंसनीय प्रयत्न था। डकार्ट की ब्रह्माण्ड योजना के अनुसार ईश्वर ने आरम्भ में एक बार विश्व-यंत्र को संचालित कर दिया था; उसके बाद यह यंत्र अपने आप चल रहा है।

डकार्ट प्रथम व्यक्ति था जिसने पूर्ण द्वैतवाद का प्रतिपादन किया। उसने आत्मा और शरीर, चेतन और जड़ पदार्थ के भिन्न और स्वतन्त्र अस्तित्वों को स्वीकार किया। उसके पहले आत्मा, अग्नि या वायु जैसा गुण वाला एक पार्थिव तत्त्व समझा जाता था और चेतन तथा जड़ पदार्थ की प्रकृति में नहीं, बल्कि उनकी विकास-अवस्था में भेद माना जाता था। उसकी दृष्टि में मस्तिष्क अपार्थिव था एवं पदार्थ, पार्थिव और निर्जीव था। इस प्रकार आत्मा की सत्ता को अस्वीकार किये बिना ही शरीर का केवल एक यंत्र के रूप में अध्ययन करना सम्भव हो सका। आत्मा और शरीर एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न हैं परन्तु आत्मा उतना ही वास्तविक है जितना शरीर या यों कहिये चेतना उतनी ही वास्तविक

है जितना जड़ पदार्थ। डकार्ट के मत का, संज्ञावादी (नामिनलिस्ट) टामस हाब्स (१५८८–१६७९) ने विरोध किया। उसका द्वैतवाद में विश्वास नहीं था और उसके मत से गतिमान् पदार्थ ही वास्तविकता का सूचक है। उसका विश्वास था कि अनुभूति, विचार और चेतना, ये सब मस्तिष्क-स्थित परमाणुओं की गतिशीलता के परिणाम हैं। परन्तु वह यह स्पष्ट न कर सका कि इन दो परस्पर विरोधी क्रियाओं (परमाणु-गति और चेतना) में किस प्रकार सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

जादू और तन्त्र—यह आश्चर्य की बात है कि नवजागरण काल में, जहां ज्ञान की प्रत्येक शाखा में नवीन जीवन का संचार हुआ और आधुनिक प्रयोगात्मक विज्ञान का विकास हुआ, वहां प्राचीन जादू और तन्त्र ने भी अपना सर उठाया।

इसाई धर्म, जिसके विश्वासों के निर्माण में रहस्यात्मक धर्मों का काफी हाथ था (परन्तु उस समय लोग इस तथ्य से अवगत नहीं थे), प्रथम-प्रथम जब संसार पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुआ, तो बुद्धिमान लोग ऐसा सोचने लगे कि जादू और तन्त्र अपने विभिन्न रूपों में, लुप्तप्राय 'अनीश्वरवाद' के केवल अवशेष हैं। इस कारण चर्च ने उदार नीति से काम लेना आरम्भ किया। शैतान का आवाहन अनिवार्य रूप से इसाई धर्म के प्रतिकूल नहीं था; वह एक साधारण पाप मात्र था। परन्तु मध्य युग के उत्तर भाग में शैतान प्रताड़ित लोगों का एक प्रकार से आराध्य-देव बन गया। संत टामस अकिनास ने चर्च की आरम्भिक ढीली नीति का औचित्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया और १४८४ में आठवें पोप ने सरकारी रूप में लोगों को जादू और तन्त्र में विश्वास करने का अधिकार दे दिया। इस प्रकार इसाई धर्म को न मानने वालों का दमन करने के लिए एक नया अस्त्र अस्तित्व में लाया जा सका। ऐसे लोगों को जादूगर घोषित किया जा सकता था और उनके प्रति जनता की क्रोधाग्नि भड़काई जा सकती थी।

सुधार काल के बाद, प्रोटेस्टन्टों (इसाई धर्म की एक शाखा के

अनुयायी) ने तथाकथित अविश्वासियों का दमन करने में कैथोलिकों (इसाई धर्म की दूसरी शाखा के अनुयायी) को भी मात कर दिया। उनके इस दमन का आधार बाइबिल की यह आज्ञा थी, 'तुम्हें किसी जादूगरनी को जीवित नहीं रहने देना चाहिए।' यूरप में जहां कानून पीड़ा देने के पक्ष में था, अधिकांश लोग पीड़ा के डर से यह स्वीकार कर लेते थे कि वे जादूगर हैं। परन्तु इंगलैण्ड में, जहां साधारण कानून पीड़ा पहुँचाने के पक्ष में नहीं था और केवल विशेष न्यायालयों को ही पीड़ा देने का अधिकार था, अभियुक्त प्रायः अपने को निर्दोष घोषित करते थे। बहुत कम लोगों ने इस पागलपन के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई क्योंकि ऐसा करने में ख़तरा था। ऐसे साहसी लोगों में शायद सबसे प्रथम कार्नेलियस ऐग्रिप्पा था। जॉन वियर और रेजिनाल्ड स्काट के नाम भी उल्लेखनीय हैं। स्काट की दृष्टि में यह सारा खेल अज्ञान, भ्रम और मिथ्या दोषारोपण का परिणाम था। धर्म पिता स्पी ने वर्जबर्ग में लगभग दो सौ व्यक्तियों को मृत्यु-स्तम्भ पर मरते देखा। इस नृशंस लीला से मर्माहत और व्याकुल होकर उन्होंने घोषणा की कि वे सब व्यक्ति निर्दोष थे और उन्होंने अपना यह विश्वास प्रकट किया कि उस कठोर यातना के द्वारा किसी भी व्यक्ति से कुछ भी स्वीकार कराया जा सकता है। दो सौ वर्षों में यूरप में लगभग सात लाख व्यक्ति इस प्रकार यमपुर भेजे गये। मनुष्य जाति के इतिहास में यह एक अत्यन्त घृणित अध्याय है। सभ्य संसार ने अनुभव किया कि जादूगरनियों के अस्तित्व में विश्वास खो देने के बाद भी लोग उन्हें कुछ दिन तक जलाते रहे। इन भ्रमात्मक धारणाओं का अन्त विज्ञान के कारण सम्भव हो सका जो धीरे-धीरे प्रकृति के ऊपर मनुष्य के अधिकार की सीमा निश्चित कर रहा था।

———:०:———

पांचवां अध्याय

गैलिलियो और न्यूटन: प्रथम भौतिक समन्वय

गैलिलियो—यदि हम से पूछा जाय कि भौतिक विज्ञान की उस विजय-यात्रा का सूत्रपात करने में जो लगभग तीन सौ वर्ष तक जारी रही, किस व्यक्ति का सबसे अधिक हाथ था तो निस्संदेह हमारा उत्तर होगा : गैलिलियो (१५६४–१६४२)। लेयोनार्डो, कापर्निकस और गिलबर्ट की रचनाओं में आने वाली क्रान्ति के चिह्न अवश्य थे परन्तु गैलिलियो इन सबसे बहुत आगे था और उसकी रचनाओं में प्रथम-प्रथम हम निश्चित रूप से आधुनिक प्रणाली की झलक पाते हैं। कापर्निकस के सिद्धान्त की उसने दूरबीन से परीक्षा की, परन्तु उसका इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य यह था कि उसने निरीक्षण तथा निरीक्षण पर आधारित अनुमान के साथ, प्रयोग द्वारा परीक्षित निष्कर्ष का संयोग कराकर, भौतिक विज्ञान के अध्ययन की वास्तविक प्रणाली का सूत्रपात किया। उसकी रचनाओं में शास्त्रीय-मत तथा बौद्धिक-विश्लेषण को वैसा महत्त्व नहीं दिया गया है जैसा कि 'तर्कवाद' में दिया गया था। उसकी प्रणाली के अनुसार प्रत्येकसमस्या कोस्वतंत्र रूप से हल किया जाता है और प्रत्येक तथ्य को ठीक उसी रूप में स्वीकार कर लिया जाता है जिस रूप में वह पाया जाता है। तथ्यों को येन-केन प्रकारेण विश्व के एक पूर्व-कल्पित 'पूर्ण' चित्र के अनुकूल बनाने का प्रयत्न नहीं किया जाता। तथ्यों और उस पूर्ण चित्र में यदि कोई सामंजस्य होता है तो वह अपने आप धीरे-धीरे प्रकट होता है। मध्यकालीन 'तर्कवाद' बुद्धि पर आधारित था परन्तु आधुनिक विज्ञान मुख्यतया अनुभव पर आधारित है। वह शुष्क

तथ्यों को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेता है। वह इसकी पर्वाह नहीं करता कि वे तथ्य युक्तिसंगत हैं कि नहीं।

१६०६ में गैलिलियो ने यह अफवाह सुनी कि हालैण्ड के एक व्यक्ति ने एक ऐसे शीशे की ईजाद की है जिससे यदि दूर की वस्तुओं को देखा जाय तो वे बड़ी प्रतीत होती हैं। वह प्रकाशवर्त्तन क्रिया से परिचित था और इस ज्ञान के आधार पर वह स्वयं एक ऐसा शीशा बनाने में समर्थ हुआ। उसने शीघ्र ही एक ऐसे दूरबीन का निर्माण किया जो वस्तुओं के व्यास को तीस गुना बढ़ाने में समर्थ था। फिर क्या था, एक से एक आश्चर्यवर्द्धक आविष्कारों का तांता लग गया। चन्द्रमा की सतह को अरस्तू ने समतल और निर्विकार बताया था, परन्तु दूरबीन से देखने पर पता चला कि पहाड़ों और घाटियों से वह पूर्णतया विकृत है। अगणित नवीन नक्षत्रों ने 'आकाश गंगा' की समस्या को हल कर दिया। चार उपग्रह ज्यूपिटर की परिक्रमा करते हुए पाये गए; ठीक वैसे ही जैसे चन्द्रमा के साथ पृथ्वी, सूर्य के चारों ओर घूमती रहती है। कापर्निकस गणित के आधार पर पहले ही इस निष्कर्ष पर पहुँच चुका था। इतना सब होते हुए भी पडुवा के दर्शन के अध्यापक ने दूरबीन को अपनी आंखों के पास लाना ठीक नहीं समझा। इस अध्यापक के एक सहयोगी ने, पिसा में, ग्रैण्ड ड्यूक के सामने, उपर्युक्त प्रत्यक्ष एवं निर्विवाद तथ्यों को भी असत्य सिद्ध करने के लिये तर्कों और युक्तियों का एक पहाड़ खड़ा कर दिया।

गैलिलियो का सबसे महत्वपूर्ण कार्य था गणित और प्रयोग के संयुक्त आधार पर 'गति-विज्ञान' (डायनैमिक्स) की स्थापना। ब्रग्स निवासी स्टेविनस ने आनत धरातल (इन्क्लाइण्ड प्लेन) और बल-संयोजन (कम्पोज़िशन आव फ़ोर्सेज़) की समस्याओं पर विचार किया था और इस प्रकार स्थिति-विज्ञान (स्टैटिक्स) में कुछ प्रगति सम्भव हुई थी। परन्तु जहां तक गति का प्रश्न था, लोगों की धारणायें बहुत अस्पष्ट थीं और अरस्तू के सिद्धान्त एवं असम्बद्ध निरीक्षणों पर आश्रित



प्लेट ४

गैलिलियो

थीं। ऐसा समझा जाता था कि वस्तुयें अनिवार्यतः हल्की या भारी होती हैं और वे अपने स्वाभाविक स्थानों की तलाश में ऊपर उठती हैं या नीचे गिरती हैं। स्टेविनस ने एक भारी और एक हल्की वस्तु को एक ही साथ एक स्थान से गिराकर यह मालूम किया कि दोनों लगभग एक ही साथ पृथ्वी पर गिरीं। एक प्रयोग द्वारा गैलिलियो ने भी इस तथ्य का समर्थन किया। जेनेवा में धनुषधारियों के नायक बेलियानी ने इस प्रयोग को और अधिक सावधानतापूर्वक करने के पश्चात् इस बात की ओर संकेत किया कि दोनों वस्तुओं के गिरने के समयों में जो थोड़ा-सा अन्तर होता है उसका कारण वायु का प्रतिरोध है। चूँकि दोनों वस्तुओं को नीचे की ओर ले जाने वाला बल उनके वज़न के बराबर होता है, इसलिये प्रत्येक वस्तु में वज़न के अतिरिक्त एक और 'चीज़' होनी चाहिये जो गति का प्रतिरोध करती है। इस चीज़ की आवश्यकता, जैसा हमने ऊपर देखा है, गिलबर्ट ने भी स्वीकार की थी। इस चीज़ को हम 'पदार्थ-मात्रा' (माँस) कहते हैं। न्यूटन ने स्पष्ट रूप से इसका विवेचन किया।

कापर्निकस और केप्लर ने सिद्ध किया था कि ग्रहों की गति का वर्णन गणित की सहायता से किया जा सकता है। गैलिलियो का विश्वास था कि पृथ्वी-तल पर पाई जाने वाली वस्तुओं का संचालन भी गणित के नियमों के अनुसार होना चाहिये। पिसा स्थित गिरिजाघर के छत से लटकते हुए दीपकों का निरीक्षण कर गैलिलियो ने मालूम किया कि जब कोई दीपक झूलता रहता है तो उसे एक किनारे से दूसरे किनारे तक का अंतर तै करने में, चाहे वह अन्तर छोटा हो या बड़ा, समान समय लगता है। इस प्रकार उसने दोलक (पॅंड्यूलम) का सिद्धान्त मालूम किया। एक गिरती हुई वस्तु की गति उत्तरोत्तर अधिक होती जाती है। गति में यह वृद्धि किस नियम का पालन करती है? गैलिलियो ने पहले यह अनुमान किया कि किसी बिन्दु पर उस वस्तु की गति, उस वस्तु द्वारा तै की हुई दूरी पर निर्भर होती है।

परन्तु इस अनुमान ने एक असंगत दोष को जन्म दिया। फिर उसने एक दूसरे अनुमान का सहारा लिया। उसने सोचा कि किसी क्षण एक गिरती हुई वस्तु की गति आरम्भ से लेकर उस क्षण तक व्यतीत हुए पूरे समय पर निर्भर होती है। उसने इस अनुमान के स्वाभाविक निष्कर्षों को मालूम किया ताकि वह उनको प्रयोगों द्वारा परीक्षा कर सके। गिरती हुई वस्तुओं की गति इतनी तीव्र होती है कि गैलिलियो के यंत्र उन्हें नापने में असमर्थ थे। इसलिये उसने आनत धरातलों (इन्क्लाइन्ड प्लेन्स) का प्रयोग किया क्योंकि वह यह जानता था कि ऐसे धरातल से लुढ़कती हुई कोई वस्तु जब नीचे की ओर गिरती है तो नीचे आने पर उसकी गति उतनी ही होती है जितनी धरातल के ऊपरी सिरे से लम्बवत् गिरने पर होती। गैलिलियो ने पाया कि द्वितीय अनुमान और उस अनुमान का यह निष्कर्ष कि किसी समय में तै की हुई दूरी उस समय के वर्ग पर निर्भर होती है, दोनों, प्रयोगों तथा तथ्यों के सर्वथा अनुकूल हैं।

गैलिलियो के आनत धरातल की सहायता से एक दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य मालूम किया गया। एक धरातल से नीचे गिरने के बाद एक गेंद दूसरे आनत धरातल पर उतनी ही लम्बी ऊँचाई तक चढ़ने में समर्थ होगा। अगर दूसरा धरातल, पृथ्वी-तल के समानान्तर हो तो गेंद उस पर तब तक दौड़ता रहेगा जब तक वह पारस्परिक घर्षण द्वारा रुक न जाय। इसका अर्थ यह हुआ कि एक गतिशील वस्तु निरन्तर चलती रह सकती है यदि कोई विरोधी शक्ति उसकी गति रोकने का प्रयत्न न करे। यह तथ्य बड़ा ही क्रान्तिकारी था, क्योंकि इसके पहले ऐसा समझा जाता था कि किसी वस्तु को निरन्तर गतिशील रखने के लिए यह आवश्यक है कि कोई शक्ति निरन्तर उसे अग्रसर करती रहे। इसी दृढ़ विश्वास के कारण अरस्तू ने यह कल्पना की थी कि ग्रहों को एक अचल 'संचालक' निरन्तर गतिशील रखता है। केप्लर ने भी ग्रहों के ऊपर सूर्य के प्रभाव-संवाहन के लिए 'ईथर'

की आवश्यकता अनुभव की थी। गैलिलियो के प्रयोगों तथा उनके परिणामों ने यह सिद्ध कर दिया कि ग्रह, किसी समय, अतीत में किसी प्रकार गतिशील हो गये थे, तब से वे बिना किसी बाहरी शक्ति की सहायता के ही निरन्तर चलायमान् हैं। अधिक-से-अधिक उन्हें केवल एक ऐसी शक्ति की आवश्यकता है जो उन्हें सीधे एक ही दिशा में न जाने देकर सूर्य की परिक्रमा करने के लिए विवश करदे। इस प्रकार गैलिलियो ने न्यूटन के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

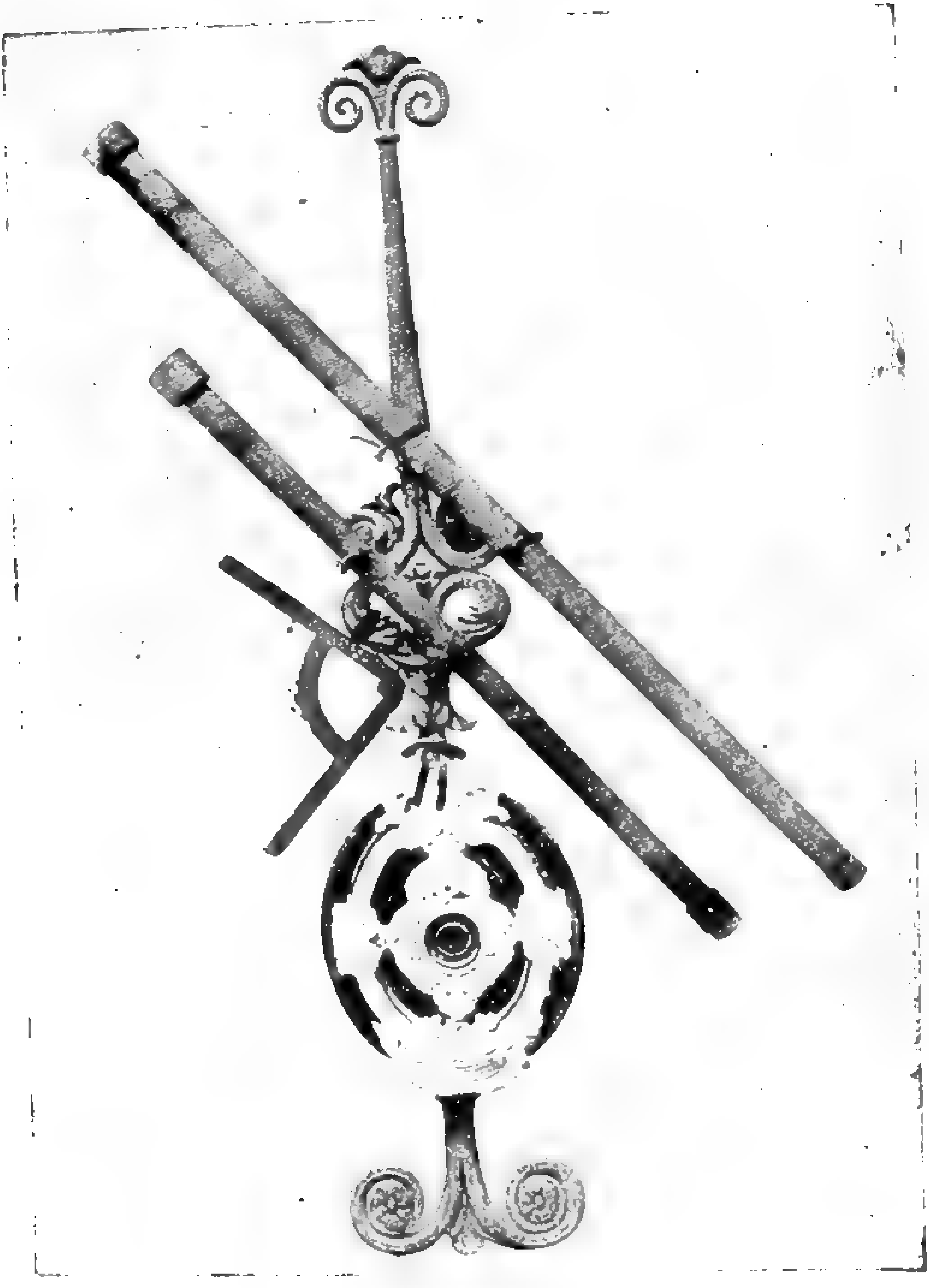
किसी दिशा में फेंकी गई एक वस्तु के मार्ग पर भी गैलिलियो ने विचार किया। उसने उस वस्तु की गति को दो भागों में विभक्त किया। एक पृथ्वी के समानान्तर जो सर्वदा समान रहती है और दूसरी लम्बी जो गिरती हुई वस्तुओं की गति से सम्बन्धित नियमों से नियंत्रित होती है। ये दोनों गतियां एक विशेष प्रकार के मार्ग को जन्म देती हैं जिसे परावलय कहते हैं। उसने विभिन्न पदार्थों की शक्ति, उन पदार्थों के दण्डों के झुकाव तथा लचीलेपन से सम्बन्धित अन्य समस्याओं का भी अध्ययन किया एवं स्थिर-द्रव-विज्ञान के सम्बन्ध में कार्य किया। शीशे की नली की सहायता से, जिसकी ईजाद हाल ही में हुई थी, उसने एक तापदर्शक यंत्र का निर्माण किया। इस नली के साथ एक बल्ब जुड़ा हुआ था। बल्ब के भीतर हवा गर्म होकर फैलती थी और इस फैलाव के आधार पर तापक्रम मालूम किया जाता था। शीशे की नलियों का प्रयोगात्मक विज्ञान की उन्नति में बहुत बड़ा हाथ रहा है।

केप्लर की भांति गैलिलियो भी प्रकृति के कार्य कलापों में गणित के नियमों को ढूंढने का प्रयत्न करता था। परन्तु उसके इस प्रयत्न का उद्देश्य, रहस्यात्मक संख्याओं पर आधारित कारणों का उद्घाटन नहीं था; वह केवल उन नियमों को जानना-भर चाहता था जिनके अनुसार प्रकृति अपना कार्य करती है। प्रकृति क्यों उन्हीं नियमों के अनुसार कार्य करती है, इस प्रश्न का उत्तर देने में मानव मस्तिष्क

समर्थ हो या न हो, गैलिलियो को इसकी चिन्ता नहीं थी। यह दृष्टिकोण 'मानव-केन्द्रित तर्कवाद' के पूर्णतया प्रतिकूल था, जिसके अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना मनुष्य के लिए की गई है। अरस्तू की दृष्टि में स्थान और काल का कोई विशेष महत्त्व नहीं था और वे अस्पष्ट सत्तायें थीं। परन्तु गैलिलियो ने उन्हें एक निश्चित, स्पष्ट और मूलभूत विशेषता से युक्त कर दिया। न्यूटन तथा बाद के विचारकों ने भी उस विशेषता को अपनाया और स्वीकार किया।

गैलिलियो के अनुसार प्रत्येक वस्तु में मुख्य और गौण दो प्रकार के गुण होते हैं। मुख्य गुण जैसे आकृति या विस्तार उस वस्तु से अलग नहीं किये जा सकते परन्तु गौण गुण जैसे रंग या गंध अनुभवकर्त्ता की इन्द्रियों पर निर्भर हैं। वस्तु तो केवल परमाणुओं और शून्य का संकलन मात्र है। इस क्षेत्र में स्पष्ट ही वह डिमाक्रिटस से प्रभावित था। गैलिलियो ने परमाणु-सिद्धान्त को स्वीकार किया और इस बात पर विचार किया कि परमाणुओं की गति, आकृति, संख्या और गुरुता की भिन्नता किस प्रकार स्वाद, गंध और ध्वनि की भिन्नता को जन्म देती है। गैलिलियो की काल और स्थान सम्बन्धी धारणाओं और उसके परमाणु-सिद्धान्त के आधार पर आगे चल कर कुछ लोगों ने द्वैतवाद का और कुछ ने जड़त्ववाद का प्रतिपादन किया। यही नहीं, कुछ ने गैलिलियो द्वारा मालूम किये गए तथ्यों को वर्तमान काल के बहुत-से दार्शनिक असंतोषों का कारण बताया है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि गैलिलियो ने उन कठिनाइयों को प्रकट और स्पष्ट कर दिया जिन्हें अरस्तू ने छिपा रखा था या घपले में डाल रखा था। गैलिलियो ने स्वीकार किया कि वह गुरुत्वाकर्षण के कारण, या ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता। उसने 'मैं नहीं जानता' इस बुद्धिमत्तापूर्ण एवं नम्रता से ओत-प्रोत वाक्य का प्रयोग करना ही उचित समझा।

ब्वायल, हाइजिन्स तथा अन्य वैज्ञानिक—गैलिलियो के विज्ञान



प्लेट २ — गैलिलियो का प्रथम दूरबीन

पर आश्रित हाब्स का दर्शन आलोचकों की दृष्टि से न बच सका। कैम्ब्रिज निवासी, प्लैटो के अनुयायियों ने इस बात की ओर संकेत किया कि वह सिद्धान्त जो केवल विस्तार को वस्तुओं का वास्तविक गुण मानता है, जीवन और विचार की समस्याओं पर प्रकाश नहीं डाल सकता। उन्होंने आकाश कोदैवी शक्ति से सम्पन्न मान कर यांत्रिक दृष्टिकोण और धर्म में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। मैलिब्रान्ची ने अनन्त आकाश और ईश्वर को अभिन्न माना। स्पिनोज़ा के अनुसार ब्रह्म-स्वरूप ब्रह्माण्ड का ईश्वर नित्य कारण है। उसका विश्वास था कि व्यापक दृष्टि से विचार करने पर मस्तिष्क और जड़ पदार्थ का द्वैत एक उच्चतर अद्वैत में परिवर्तित हो जायगा। इस प्रकार उस काल के विचारकों ने बढ़ती हुई कठिनाइयों से बचने के लिए ईश्वर का सहारा लिया।

सर केनम डिग्बी (१६०३-१६६५) ने उस समय प्रचलित प्रायः सभी मुख्य सिद्धान्तों का विवेचन किया। उसने अरस्तू के 'अनिवार्य गुणों' की धारणा को मिथ्या बताया और गैलिलियो के इस मत का समर्थन किया कि प्रत्येक क्रिया का स्पष्टीकरण उन कणों की सहायता से किया जा सकता है जो स्थानीय गति के अनुसार कार्य करते हैं। पुनः कैम्ब्रिज में न्यूटन के अध्यापक आइज़क बरो ने अपने व्याख्यानों में गैलिलियो की नवीन गणित प्रणाली का स्पष्ट रूप से निरूपण किया। उसने स्वीकार किया कि काल और स्थान वास्तविक, अनन्त और नित्य हैं क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक और नित्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि काल और स्थान की वास्तविकता को निश्चित रूप से प्रथम-प्रथम इसी समय स्वीकार किया गया।

एक द्रव का किसी गहराई पर दबाव मालूम कर स्टेविनस ने स्थिर-द्रव विज्ञान का अध्ययन पुनः आरम्भ कर दिया था। राबर्ट ब्वायल (१६२७--१६९१) ने, जो एक रसायन-शास्त्री, भौतिक विज्ञान-वेत्ता और दार्शनिक था, यह सिद्ध किया कि वायु एक पार्थिव पदार्थ है जिसका वज़न होता है। उसने यह महत्त्वपूर्ण नियम, जो 'ब्वायल का नियम'

के नाम से प्रसिद्ध है, मालूम किया कि वायु का आयतन (वाल्यूम) दबाव बढ़ाने से एक निश्चित अनुपात में कम हो जाता है। इस नियम को आगे चलकर मैरियट ने भी मालूम किया। ब्वायल ने यह भी देखा कि वायुमंडल के दबाव में परिवर्तन होने से पानी के उबाल-ताप-क्रम में भी परिवर्तन हो जाता है। उसने विद्युत और चुम्बकत्व के सम्बन्ध में बहुत-से तथ्यों का संकलन किया और ताप को कणों की चंचलता का परिणाम बतलाया। रसायन-शास्त्र के क्षेत्र में उसने मूलतत्व, मिश्रण और यौगिक पदार्थ की भिन्नता को स्वीकार किया, फास्फोरस को प्राप्त किया, पानी के ऊपर एक पात्र में हाइड्रोजन गैस को इकट्ठा किया, यद्यपि इस गैस को उसने 'नव-उत्पन्न वायु' नाम दिया और रासायनिक गठन की जानकारी के लिये विभिन्न प्रकार के मणिभों (क्रिस्टलों) का अध्ययन किया। इन अर्द्ध-रहस्यात्मक सिद्धान्तों पर ध्यान न देते हुए, जो उस समय तक भी जीवित थे, उसने साधारण वस्तुओं के रासायनिक गुणों का अध्ययन किया। सच तो यह है कि उसने चार मूलतत्वों की प्राचीन धारणा और तीनसार पदार्थों, गंधक, परा एवं लवण की कल्पना, दोनों को अस्वीकार किया। १६६१ और १६७६ में उसने अपनी पुस्तक 'दि स्केप्टिकल किमिस्ट' प्रकाशित की जिसमें उसने, अपने ही शब्दों में, 'उन प्रयोगों की समीक्षा की जिनके द्वारा धूर्त लोग यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि सब वस्तुओं के सार, गंधक, पारा और लवण हैं।' एक कथोपकथन में, जिसमें तीन पात्र भाग लेते हैं, ब्वायल का प्रतिनिधि कहता है कि 'प्राचीन विचारकों के अद्भुत तर्कों को पढ़ने और रसायन-शास्त्रियों की प्रयोगशालाओं में चमत्कारपूर्ण प्रयोगों को देखने के बावजूद भी, मूलतत्वों और सार पदार्थों के सम्बन्ध में मेरा संदेह दूर नहीं हो सका है।' सोना को दूसरी धातुओं के साथ मिलाकर मिश्र धातुएँ प्राप्त की जा सकती हैं। अम्ल-राज में सोना घुल जाता है। परन्तु इन परिवर्तनों के बाद स्वर्ण अपने पूर्व रूप में पुनः प्राप्त किया जा सकता है। इससे यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि स्वर्ण की

रचना, अपरिवर्तनशील कणों से होती है जिनकी सत्ता विभिन्न परिवर्तनों और क्रियाओं में ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। अरस्तू के अनिश्चित मूलतत्व और सार पदार्थ स्वर्ण को यह स्थायित्व प्रदान करने में असमर्थ हैं। इस प्रकार ब्वायल ने उन धारणाओं को हृदयंगम कर लिया था जिनके सहारे आधुनिक रसायन-शास्त्र का विकास आगे चलकर सम्भव हुआ।

ब्वायल ने यद्यपि यह स्वीकार किया कि गौण गुण अनुभवकर्ता की ज्ञानेन्द्रियों पर निर्भर हैं, परन्तु उसने इस ओर भी संकेत किया कि चूँकि संसार में सोचने वाले और अनुभव करने वाले 'मनुष्य' नामधारी कुछ ऐसे जीव हैं जिनकी सत्ता में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता, इसलिए उनके अनुभव और उन अनुभवों से सम्बन्धित गौण गुण भी संसार के अंग हैं, और मुख्य गुणों की भांति वास्तविक हैं। जड़ और चेतन उस समस्या के दो अंग हैं जिसे हल करने का प्रयत्न दर्शनशास्त्र करता है। आरम्भ में ईश्वर ने सृष्टि की रचना की और ब्वायल का विश्वास था कि सृष्टि के संचालन और अस्तित्व के लिए सृष्टि के सभी अवयवों की निरन्तर आवश्यकता है। प्रतिक्षण परिवर्तन-शील सृष्टि की भारतीय और अरबिक धारणा की ओर यह आंशिक झुकाव, इसाई धर्म के इस सिद्धान्त का कि 'ईश्वर सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त है,' भौतिक पहलू है।

इस प्रकार ब्वायल केवल भौतिक विज्ञान और रसायन शास्त्र का ही ज्ञाता नहीं था बल्कि एक उत्कृष्ट दार्शनिक भी था। उसकी बहुमुखी प्रतिभा का वर्णन उसकी कब्र के पास स्थापित एक प्रस्तर-खण्ड पर इस प्रकार किया गया था, 'रसायन शास्त्र के पिता और कार्क के सामंत के चाचा।'

ब्लेज़ पास्कल (१६२३–१६६२) मुख्यतया ईश्वर और ईश्वर सम्बन्धी विश्वासों की समीक्षा के लिए प्रसिद्ध है, परन्तु वह भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में एक प्रयोगकर्ता भी था। हाल ही में टारिसेली द्वारा

ईजाद किये गए वायुमंडल-दबाव-मापकयंत्र को वह 'पाई डि डोम' नामक पर्वत के ऊपर ले गया। वहां उसने देखा कि पारे के स्तम्भ की ऊँचाई कम हो गई। स्पष्ट ही यह कमी वायुमंडल के दबाव की कमी के कारण सम्भव हुई; इसलिए नहीं कि 'प्रकृति शून्य स्थान से घृणा करती है' जैसा कि अरस्तू के अनुयायियों का विश्वास था। पास्कल ने ही 'सम्भावना-सिद्धान्त' (थियरी आव प्राबबिलिटी) का सूत्रपात किया था। संयोग पर निर्भर खेलों से आरम्भ होकर यह सिद्धान्त दर्शन, विज्ञान और सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में बहुत सहायक सिद्ध हुआ है। ऐसा कहा जा सकता है कि कोई भी ज्ञान अंतिम और पूर्ण रूप से सत्य नहीं है; अधिक-से-अधिक केवल यह बतलाया जा सकता है कि उसके यथार्थ होने की 'सम्भावना' कितनी है।

गैलिलियो के बाद गति-विज्ञान में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रगति हाइजिन्स (१६२६–६५) द्वारा सम्भव हुई जिसने १६७३ में अपनी पुस्तक 'हारोलाजियम आसिलाटोरियम' प्रकाशित की। इस विश्वास पर कि गतिशील वस्तुओं की गति-जन्य-शक्ति अक्षुण बनी रहती है, उसने दोलन-केन्द्र-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और इस प्रकार यंत्र विज्ञान में एक नवीन प्रणाली का सूत्रपात्र किया। यदि एक वस्तु की वेग, व, एक विरोधी बल, ब, द्वारा कुछ समय के अन्दर शून्य कर दिया जाय और इस बीच यदि वह वस्तु द दूरी तै करले तो उस वस्तु द्वारा $\frac{1}{2}$ म व^2 कार्य होता है। (म=वस्तु की पदार्थमात्रा)। यही उस वस्तु की गति-जन्य-शक्ति है। उसने दोलक (पेन्ड्यूलम) की लम्बाई और उसके एक दोलन काल का पारस्परिक सम्बन्ध मालूम किया। वृत्ताकार गति का भी उसने अध्ययन किया। यदि एक वस्तु जिसकी पदार्थ मात्रा म हो, एक वृत्ताकार पथ पर जिसकी त्रिज्या र हो, व वेग से भ्रमण करे तो गैलिलियो के अनुसार वह एक बल द्वारा केन्द्र की ओर आकर्षित होगी। हाइजन्स ने मालूम किया कि वेग वृद्धि

(ऐक्सलरेशन) $\frac{व^2}{र}$ के बराबर होगी और इसलिये खींचने वाला बल $\frac{म व^2}{र}$ के बराबर होगी। न्यूटन भी इस नतीजे पर १६६६ में पहुँच गया रहा होगा परन्तु उसने अपने निष्कर्षों को बाद में प्रकाशित किया। हाइजन्स ने दूरबीन और घड़ियों में भी सुधार किया और 'सैटर्न' की कुंडलियों (रिंग्स) को मालूम किया।

वैज्ञानिक संस्थाएं—न्यूटन और उसके समकालीन विचारकों के बौद्धिक वातावरण को समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम उन संस्थाओं को दृष्टि में रखें जो उस समय स्थापित की जा रही थीं। नया ज्ञान, जो अरस्तू के अनुयायियों के विरुद्ध अपना मार्ग प्रशस्त कर रहा था, यूरप के विश्वविद्यालयों में बहुत मंद गति से प्रवेश पा सका। परन्तु उन लोगों की संख्या जो 'प्राकृतिक दर्शन' में दिलचस्पी रखते थे, शीघ्रता के साथ बढ़ रही थी और ऐसे लोग विचार-विनिमय के लिये यत्र तत्र एकत्र होते रहते थे। १५६० में नेपल्स में 'ऐकडेमिया सेक्रेटोरम नेचर' नाम की संस्था स्थापित हुई; १६०३ और १६३० के बीच रोम में 'ऐकडेमिया दि लिन्सी' नाम की एक संस्था थी और १६५१ में मेडिसी द्वारा फ्लोरेंस में 'ऐकडेमिया डेल सिमेन्टो' नामक संस्था स्थापित की गई।

इंगलैण्ड में दार्शनिक या अदृश्य विद्यालय नामक एक संस्था ग्रेशम कालिज या लंदन के भीतर अन्य किसी स्थान पर १६४५ में कार्य करने लगी। १६४८ में गृहयुद्ध के कारण इसके बहुत से सदस्य आक्सफोर्ड चले गये, परन्तु १६६० में यह संस्था पुनः लन्दन लौट आई। १६६२ में चार्ल्स द्वितीय की राजाज्ञा से इसका नाम 'रायल सोसायटी' रखा गया। १६६३ में एक दूसरी राजाज्ञा द्वारा इसका नाम 'प्राकृतिक ज्ञान की वृद्धि करने वाली लंदन की रायल सोसायटी' रखा गया। चौदहवें लुई द्वारा १६६६ में 'ऐकडमी दि साइन्सेज़' नामक संस्था

फ्रान्स में स्थापित की गई। अन्य देशों में भी ऐसी ही संस्थायें स्थापित की गई।

पारस्परिक विचार-विनिमय के लिये सुविधा प्रदान कर तथा विभिन्न अन्वेषकों और अनुसंधानकर्त्ताओं के परिणामों को प्रसारित कर, इन संस्थाओं ने विज्ञान की तीव्र वृद्धि में बहुत सहायता प्रदान की है। इनमें से अधिकांश ने शीघ्र ही मासिक या साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन आरम्भ कर दिया। इन पत्रों ने व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार की प्राचीन प्रणाली का स्थान ग्रहण कर लिया। १६६५ में 'जर्नल डि सैवन्ट्स' पेरिस में प्रकट हुआ और तीन मास बाद रायल सोसायटी का 'फिलसाफ़िकल ट्रैन्ज़ैक्शन्स' (दार्शनिक कार्यवाही) भी अवतीर्ण हुआ। आरम्भ में यह पत्र सोसायटी के मंत्री के व्यक्तिगत प्रयत्न का परिणाम था।

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भी, मध्यकालीन विचारधारा के कुछ अवशेष, विशेषकर अरस्तू का तर्कवाद, गणित और प्रयोग पर आधारित नवीन विज्ञान का विरोध करने का साहस करते थे। गैलिलियो के कार्य के बाद यंत्र-विज्ञान में, नवीन दृष्टिकोण अपने परिणामों को केवल पदार्थ और गति की सहायता से ही प्रकट करने का अभ्यास कर रहा था। इस कार्य में गैलिलियो द्वारा स्वीकृत और गैसन्डी द्वारा विकसित 'परमाणु सिद्धान्त' का पुनरुद्धार सहायक सिद्ध हो रहा था। हाइजिन्स ने इस प्रवृत्ति को और प्रोत्साहन प्रदान कर दिया, यद्यपि प्राचीन विवादों की प्रतिध्वनि पूर्णतया विलीन नहीं हो सकी थी। १६६१ में भी ब्वायल ने रसायन शास्त्र के क्षेत्र में 'तर्कवादी' एवं 'सारवादी' धारणाओं के विरुद्ध तर्क उपस्थित करना आवश्यक समझा। कीमिया और ज्योतिष में लोगों का अभी भी विश्वास था। न्यूटन अध्ययन के लिए जब केम्ब्रिज गया और वहां उससे यह पूछा गया कि वह किस विषय का अध्ययन करेगा तो उसने जवाब दिया था, 'गणित, क्योंकि मैं ज्योतिष की सत्यता की परीक्षा करना चाहता हूं।' आगे चलकर उसने एक रासायनिक प्रयोगशाला स्थापित की, जिसमें उसने भ्रमात्मक कीमिया

और रसायन शास्त्र के अध्ययन में उससे कहीं अधिक समय व्यय किया, जितना उस गति-विज्ञान के अध्ययन में, जिसने आकाश शास्त्र का रूप ही बदल दिया।

यूनानियों की ईथर सम्बन्धी धारणा का विभिन्न विचारकों ने भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयोग किया। केप्लर ने उसकी सहायता से यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया कि सूर्य किस प्रकार ग्रहों को चलायमान् रखता है। अपनी भंवरों (वार्टिसेज़) के निर्माण के लिये, डकार्ट ने ईथर को एक द्रव माना। गिलबर्ट ने विद्युत् और चुम्बकत्व सम्बन्धी सिद्धान्तों के प्रतिपादन में ईथर की सहायता ली और हार्वे का यह विश्वास था कि ईथर की सहायता से ही सूर्य प्राणियों के हृदयों और रक्त तक ताप पहुँचा पाता है। परन्तु उस समय तक लोग आकाशीय ईथर और गैलेन द्वारा प्रतिपादित सूक्ष्म चेतना-मूलक तत्वों को एक ही समझते थे। रहस्यवादी इन सूक्ष्म तत्वों द्वारा प्राणियों के मूल अस्तित्व पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करते थे। उस समक तक मस्तिष्क और जड़ पदार्थ तथा शरीर और आत्मा का भेद स्पष्ट नहीं हो सका था। 'आत्मा', 'प्राणि-तत्व' और ऐसी ही अन्य धारणायें, वाष्प जैसे पदार्थों की द्योतक थीं जिन्हें आज हम निश्चय ही पार्थिव समझते हैं। इस प्रकार बहुत से विचारक सृष्टि को अद्वैतपरक समझते थे। डकार्ट एक अपवाद था क्योंकि प्रथम-प्रथम उसीने जड़ पदार्थ और चैतन्य मस्तिष्क के अनिवार्य भेद को स्वीकार किया। उसके अतिरिक्त अन्य विचारकों की दृष्टि में यदि कोई भेद था तो वह केवल यह कि ठोस और द्रव पदार्थ एक श्रेणी में थे और वायु, अग्नि, ईथर और सूक्ष्म चेतना-मूलक तत्व दूसरी में; परन्तु थे सब पार्थिव। यही नहीं, सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में प्रायः सभी वैज्ञानिक और दार्शनिक संसार को इसाई दृष्टिकोण से देखते थे। विज्ञान और धर्म में विरोध बाद में उत्पन्न हुआ। हाब्स भी जो जड़वादी था और जिसने धर्म की परिभाषा 'स्वीकृत अंध विश्वास' के रूप में की थी,

इस बात के पक्ष में था कि धर्म का प्रसार सरकार की देख-रेख में होना चाहिये। परन्तु हाब्स एक अपवाद था, उसके अतिरिक्त प्रायः सभी विचारकों का दृष्टिकोण धार्मिक था। उनका विश्वास था कि ब्रह्माण्ड सम्बन्धी किसी भी सिद्धान्त के सत्य होने के लिये यह आवश्यक है कि वह धार्मिक विश्वासों के अनुकूल हो।

न्यूटन और गुरुत्वाकर्षण—वैज्ञानिकों में आज भी न्यूटन (१६४२–१७२७) का सर्वोच्च स्थान है। लिंकन शायर में उलस्थ्रूप स्थान पर उसका जन्म १६४२ में २५ दिसम्बर को हुआ था; इसी वर्ष गैलिलियो की मृत्यु हुई। केम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालिज में वह १६६१ में प्रविष्ट हुआ और वहाँ उसने आइज़क बरो से गणित की शिक्षा प्राप्त की। वह १६६४ में कालिज का स्कालर और १६६७ में फ़ेलो चुना गया। केम्ब्रिज में प्लेग के आक्रमण के कारण उसने १६६५–६६ का समय उलस्थ्रूप में व्यतीत किया। इस अवकाश का उपयोग उसने ग्रहों से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करने में किया। 'क्योंकि (वह कहता है) उन दिनों नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिये मैं अपनी आयु के सर्वोत्कृष्ट काल में था। उस समय मैंने गणित और दर्शन की ओर जितना ध्यान दिया उतना उसके बाद और कभी नहीं दिया।'

इतिहास की यह एक दुःखद घटना है कि न्यूटन ने उस काल के बाद गणित और दर्शन से अपना ध्यान हटाने और अपने अन्वेषण के परिणामों को प्रकाशित न करने का भरसक प्रयत्न किया।

गैलिलियो के कार्य ने यह सिद्ध कर दिया था कि प्रत्येक ग्रह को उसकी कक्षा में चलायमान् रखने के लिये एक ऐसी शक्ति की आवश्यकता है जो उसे सूर्य की ओर खींचती रहे। परन्तु यह शक्ति आती कहाँ से है? ऐसा कहा जाता है कि उलस्थ्रूप के एक उद्यान में एक सेब को गिरते देखकर न्यूटन इस प्रश्न के उत्तर की झांकी पाने में समर्थ हुआ था। वह इस नतीजे पर पहुँचा कि सेब के नीचे की ओर गिरने का कारण पृथ्वी का आकर्षण है। उसके मन में यह प्रश्न उठा कि क्या पृथ्वी

का आकर्षण चन्द्रमा तक नहीं पहुँच सकता ? यदि इस प्रश्न का उत्तर 'क्यों नहीं' हो तो यह समस्या हल हो जाय कि एक सीधी रेखा में न जाकर चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा क्यों करता रहता है।

केप्लर के तीसरे नियम के आधार पर न्यूटन ने यह निष्कर्ष निकाला कि किसी ग्रह को खींचने वाली शक्ति उतनी ही कम होती है जितना केन्द्र से उस ग्रह की दूरी का वर्ग अधिक होता है। इस आधार पर उसने चन्द्रमा को खींचने वाली शक्ति की तुलना सेब को खींचने वाली शक्ति से की। उसने स्वीकार किया कि इस तुलना का परिणाम काफी सन्तोषजनक था। परन्तु प्रकाशन की ओर उदासीन होने के कारण, उसने लोगों को अपने इस आविष्कार से परिचित कराने का कोई प्रयत्न नहीं किया। शायद केवल 'काफी संतोषजनक' परिणाम उसके लिए पर्याप्त नहीं था।

परन्तु उपर्युक्त परिणाम के प्रकाशित करने में न्यूटन द्वारा किये गए विलम्ब के सबसे अधिक सम्भव कारण की ओर जे० डब्ल्यू० एल० ग्लेशर ने १८८७ में संकेत किया। सूर्य और ग्रहों के आकार उनके बीच की दूरियों की तुलना में इतने छोटे हैं कि हम उनमें से प्रत्येक को एक बिन्दु मान सकते हैं। परन्तु सेब के आकार या पृथ्वी और सेब के बीच की दूरी की तुलना में पृथ्वी का आकार बहुत ही बड़ा है। सेब के ऊपर पृथ्वी के विभिन्न भागों का सम्मिलित आकर्षण मालूम करने की समस्या बड़ी विकट थी। परन्तु इस समस्या को न्यूटन ने १६८५ में हल कर दिया। उसने गणित द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि आकर्षण-शक्ति-सम्पन्न पदार्थ का एक गोलाकार पिण्ड अपने बाहर की वस्तुओं को इस प्रकार आकर्षित करता है मानो उसकी सारी पदार्थ-मात्रा केन्द्र में ही स्थित है। इस आविष्कार ने सूर्य, ग्रहों, पृथ्वी और चन्द्रमा को पदार्थीय बिन्दु मानकर गणना करने की प्रणाली का औचित्य सिद्ध कर दिया। ग्लेशर लिखता है—

'न्यूटन द्वारा इस महान् सिद्धान्त के सिद्ध होते ही—और उसी के

कथनानुसार हम जानते हैं कि उसे ऐसे सुन्दर फल की, जब तक वह उसके गणित सम्बन्धी अन्वेषणों द्वारा प्रकट नहीं हुआ, आशा नहीं थी—ब्रह्माण्ड का पूर्ण चित्र उसकी आंखों के सामने उपस्थित हो गया। अब वह इस स्थिति में हो गया कि वह गणित का प्रयोग पूर्ण यथार्थता के साथ वास्तविक आकाशीय समस्याओं को हल करने में कर सके।'

सेब और चन्द्रमा की पुरानी समस्या पर विचार करने के लिए अब मार्ग प्रशस्त हो चुका था। पिकार्ड नामक एक फ्रांसीसी द्वारा हाल ही में मालूम किये गए पृथ्वी के आकार के आधार पर उसने गणना की और वह पूर्णतया सन्तोषजनक परिणाम प्राप्त करने में सफल हुआ। उसे विश्वास हो गया कि पृथ्वी पर सेब के गिरने एवं अपनी कक्षा में चन्द्रमा के निरन्तर भ्रमणशील रहने के लिए एक ही कारण उत्तरदायी है।

आकर्षण की समस्या की ओर प्रायः सभी विचारकों का ध्यान आकृष्ट हो चुका था। रायल सोसायटी के सदस्य विशेष रूप से इस प्रश्न की छान-बीन कर रहे थे। यदि ग्रहों की कक्षाओं को वृत्ताकार मान लिया जाय तो हाइजिन्स के परिणामों और केप्लर के तृतीय नियम के अनुसार ग्रहों को खींचने वाली शक्तियां त्रिज्याओं के वर्ग के अनुसार कम होनी चाहिएं। परन्तु कक्षाएं वास्तव में अण्डाकार हैं और लन्दन में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो इस वास्तविक समस्या को हल कर सके। इसलिए हैले न्यूटन की सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से केम्ब्रिज गया और वहां उसे मालूम हुआ कि न्यूटन ने इस समस्या को दो वर्ष पहले ही हल कर लिया था परन्तु दुर्भाग्यवश उस समस्या से सम्बन्धित सारी लिखित सामग्री गायब हो चुकी थी। फिर भी उसने उपर्युक्त समस्या का एक दूसरा हल अन्य बहुत-सी सामग्री के साथ हैले के पास भेज दिया। हैले के अनुरोध से, जिसने प्रकाशन सम्बन्धी व्यय का भार स्वयं वहन किया, न्यूटन ने अपने गणित सम्बन्धी ज्ञान को लिपिबद्ध कर, १६८७ में, विज्ञान के इतिहास में महानतम पुस्तक 'प्रिन्सिपिया' [प्राकृतिक दर्शन के गणितमूलक सिद्धान्त] को प्रकाशित किया।

उन आकाशीय लोकों को, जो अरस्तू की दृष्टि में दैवी, विकार रहित और हमारे अपूर्ण संसार से भिन्न थे, न्यूटन ने मनुष्य की अध्ययन सीमा के भीतर ला दिया। उसने सिद्ध कर दिया कि आकाशीय लोक भी, गति विज्ञान के उन्हीं सिद्धांतों के अनुसार भ्रमण करते हैं जिनके अनुसार इस संसार की वस्तुएं चलती हैं। उनकी गतिविधि के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी केवल इस कल्पना के आधार पर प्राप्त की जा सकती है कि प्रत्येक पदार्थ-कण, प्रत्येक दूसरे पदार्थ-कण को आकर्षित करता है और यह आकर्षण शक्ति उतनी ही अधिक होती है जितना उन दोनों कणों की पदार्थ-मात्राओं का गुणनफल अधिक होता है, परन्तु उतनी ही कम होती है जितना उन दोनों के बीच की दूरी का वर्ग अधिक होता है। इस आधार पर उन लोकों की गतिविधियों के सम्बन्ध में जो गणनाएं की गईं वे उन निरीक्षणों के पूर्णतया अनुकूल पाई गईं जो आगे आनेवाली दो से अधिक शताब्दियों में किये गए। हैले ने सिद्ध किया कि पुच्छल तारे भी आकर्षण सिद्धांत के अनुसार भ्रमण करते हैं। उसने उस पुच्छल तारे के, जिसका नामकरण हैले के नाम पर ही किया गया है, प्रकट होने के समयों की गणना की और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह वही तारा है जो १०६६ई० में प्रकट हुआ था और जिसे सैक्सन जाति ने अपने भावी अमंगल का सूचक माना था।

न्यूटन ने सूर्य और चन्द्रमा के समुद्रीय जल पर पड़ने वाले आकर्षण-प्रभाव का भी अध्ययन किया और उसने ज्वार-भाटे के सिद्धांत को एक दृढ़ आधार पर स्थापित किया। परन्तु जलमार्गों और स्थल-खण्डों के प्रभावों से उत्पन्न जटिलताओं के कारण इस विषय का पूर्ण स्पष्टीकरण अभी तक नहीं हो पाया है।

प्रिन्सिपिया में कल्पनाओं और सिद्धान्तों को ज्यामिति की सहायता से सिद्ध किया गया है परन्तु बहुत सम्भव है न्यूटन ने उनमें से कुछ को उन नवीन गणित-प्रणालियों द्वारा पहले सिद्ध कर लिया हो जिनका आविष्कार उसने स्वयं किया था। इन प्रणालियों में मुख्य 'फ्लक्सियन'-

प्रणाली थी। इसके द्वारा यह मालूम करना सम्भव था कि जब एक परिवर्तनशील 'राशि', स, परिवर्तित होती है तो उस पर आश्रित दूसरी राशि य किस रफ्तार से परिवर्तित होती है। न्यूटन ने इस रफ्तार के लिये यं चिह्न का प्रयोग किया परन्तु लिबनिज़ ने, जो स्वतंत्र रूप से उसी प्रणाली का आविष्कार करने में समर्थ हुआ था, इस रफ्तार के लिये एक अधिक उपयुक्त चिह्न $\frac{\text{द स}}{\text{द य}}$ का प्रयोग किया। 'डिफरेन्शियल कैल्क्युलस' के विकास में आगे चलकर यही चिह्न अपनाया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि न्यूटन अपनी अन्तर्दृष्टि से ही किसी समस्या का हल मालूम करने में समर्थ था। उसके लिये सबूत की आवश्यकता नहीं होती थी; दुर्बल मस्तिष्क लोगों के लिये ही वह प्रमाण उपस्थित करता था।

पदार्थ मात्रा और वज़न—किसी वस्तु का वज़न उसकी पदार्थ-मात्रा से भिन्न होता है, यह धारणा गैलिलियो की रचनाओं में परोक्ष रूप से निहित थी। यह धारणा स्पष्ट रूप में गिलबर्ट और बेलियानी की रचनाओं में प्रकट हुई। बेलियानी ने 'मोल्स' और 'पान्डस' दोनों राशियों का ज़िक्र किया। न्यूटन ने पदार्थ-मात्रा की परिभाषा इस प्रकार की, 'किसी वस्तु में पदार्थ की वास्तविक मात्रा, जो घनत्व और आयतन के गुणनफल के बराबर होती है।' 'बल या ताक़त वह प्रभाव है जो किसी वस्तु को अचल अवस्था से चल अवस्था में कर देता है या करने का प्रयत्न करता है, अथवा एक सरल रेखा में एक निश्चित वेग (वेलासिटी) से चलती हुई किसी वस्तु के वेग को परिवर्तित कर देता है या करने का प्रयत्न करता है।' उसने अपने परिणामों को गति सम्बन्धी तीन नियमों में समाविष्ट किया। द्वितीय नियम के अनुसार गति में परिवर्तन, जिसे हम आजकल आवेग (मोमेन्टम) परिवर्तन की रफ्तार कहते हैं, बल पर निर्भर है।

इन उपर्युक्त परिभाषाओं के विरुद्ध कोई गम्भीर आलोचना १८८३ तक नहीं हुई। परन्तु १८८३ में मैच ने इस बात की ओर संकेत किया

कि न्यूटन द्वारा की गई पदार्थ-मात्रा और घनत्व की परिभाषाएं 'परस्पर निर्भरता' दोष से युक्त हैं। न्यूटन पदार्थ-मात्रा की परिभाषा घनत्व की सहायता से करता है परन्तु घनत्व की परिभाषा बिना पदार्थ-मात्रा की सहायता के नहीं की जा सकती। परन्तु इस कठिनाई से बचा जा सकता है। यदि दो वस्तुयें एक दूसरे को, चाहे परस्पर आकर्षण द्वारा या एक घुमावदार कमानी द्वारा सम्बन्धित होने के कारण, प्रभावित करें तो विपरीत दिशाओं में उनके वेगों का अनुपात उन वस्तुओं में विद्यमान किसी 'चीज़' पर निर्भर होगा। इसी चीज़ को यदि हम चाहें तो पदार्थ-मात्रा कह सकते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार दो वस्तुओं की पदार्थ-मात्राओं का अनुपात उनकी वेग-वृद्धियों के अनुपात का उलटा होगा। उन दोनों वस्तुओं के बीच प्रभावकारी बल, उनमें से किसी भी वस्तु की पदार्थ-मात्रा और वेग-वृद्धि (एक्सलरेशन) के गुणनफल के बराबर होगा। इस प्रकार हम 'परस्पर निर्भरता' दोष से बच जाते हैं।

इस दोष से हम एक और प्रकार से भी बच सकते हैं। अनुभव के आधार पर स्थान या लम्बाई और काल के सम्बन्ध में हमारी एक निश्चित धारणा है। मांसपेशियों के संचालन द्वारा उत्पन्न बल या ताकत का भी हमें अनुभव है। हम जानते हैं इस प्रकार के लगभग समान बल द्वारा विभिन्न वस्तुओं को प्रदान किये गए वेग समान नहीं होते। प्रत्येक वस्तु के जड़त्व (इनर्शिया) अर्थात् बल का विरोध करने की उसकी क्षमता को हम उस वस्तु की पदार्थ-मात्रा कह सकते हैं। विरोध की क्षमता जितनी अधिक होती है, उस वस्तु में उत्पन्न वेग-वृद्धि उतनी ही कम होती है। गणित की भाषा में हम कह सकते हैं कि $म = \frac{ब}{ग}$ (म = पदार्थ-मात्रा, ब = बल, ग = वेग वृद्धि)। ऐसा कहा जा सकता है कि उपर्युक्त प्रणाली के अनुसार भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में मनोविज्ञान का प्रवेश हो जाता है जो वांछनीय नहीं है। परन्तु इससे एक लाभ यह है कि 'परस्पर निर्भरता' दोष से हम बच जाते हैं। पुनः

हम पाते हैं कि दो वस्तुओं की पदार्थ-मात्राओं का अनुपात लगभग स्थायी होता है। हम एक पग और आगे बढ़ सकते हैं और कह सकते हैं कि उपर्युक्त अनुपात लगभग नहीं बल्कि पूर्ण रूप से या यों कहिये बहुत हद तक स्थायी और निश्चित होता है। इस प्रकार लम्बाई और समय की इकाइयों के अतिरिक्त हम पदार्थ मात्रा की एक तीसरी मूल इकाई भी प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। पदार्थ-मात्रा की स्थिरता के सिद्धान्त के आधार पर जितने भी निष्कर्ष निकाले गये, वे सभी सत्य सिद्ध हुए। हाँ, वर्तमान शताब्दी में इस सिद्धान्त की सत्यता में विश्वास करना अवश्य असम्भव हो गया है।

पदार्थ-मात्रा की समस्या हल हो जाने के पश्चात् दूसरा प्रश्न यह है कि किसी वस्तु की पदार्थ-मात्रा और उस वस्तु के वज़न या उस शक्ति में जिसके द्वारा वह पृथ्वी की ओर आकर्षित होती है, क्या सम्बन्ध है। इस प्रश्न का उत्तर अप्रत्यक्ष रूप में स्टेविन, गैलिलियो और थेलियानी के गिरती हुई वस्तुओं से सम्बन्धित प्रयोगों ने दिया था। इन प्रयोगों के द्वारा मालूम किया गया कि एक हल्की और एक भारी वस्तु साथ ही पृथ्वी पर गिरती हैं, अर्थात् उनकी वेग-वृद्धियाँ समान होती हैं। प्रत्येक सेकण्ड के बाद उनके वेग में ३२ फीट प्रति सेकण्ड की वृद्धि होती रहती है। यदि उनके वज़न $ब_1$ और $ब_2$ हों तो प्रयोग द्वारा हम जानते हैं कि $ग_1 = ग_2$ ($ग_1$ औ $ग_2$ उन वस्तुओं की वेग वृद्धियां हैं)। अर्थात् $\frac{ब_1}{म_1} = \frac{ब_2}{म_2}$ या $\frac{ब_1}{ब_2} = \frac{म_1}{म_2}$। इस प्रकार उन वस्तुओं के वज़नों का अनुपात उनकी पदार्थ मात्राओं के अनुपात के बराबर है। न्यूटन ने यह दिखाकर कि विभिन्न पदार्थ-मात्रा परन्तु समान लम्बाई वाले दोलकों (पेन्ड्यूलम) का दोलन काल समान होता है, और भी निःसंदिग्ध रूप से उपर्युक्त परिणाम को सत्य सिद्ध कर दिया। चूँकि दोलक का वज़न उसके वेग को बढ़ाना चाहता है परन्तु उसकी पदार्थ मात्रा उस वेग को रोकना चाहती है, इसलिये न्यूटन द्वारा मालूम

किया गया दोलन काल की समानता से सम्बन्धित तथ्य इस बात की ओर स्पष्ट रूप से संकेत करता है कि वज़न और पदार्थ मात्रा का अनुपात निश्चित होता है। न्यूटन को इस बात से आश्चर्य हुआ कि आकर्षण का कारण वस्तुओं की बाहरी सतहों पर नहीं निर्भर है बल्कि उन वस्तुओं के भीतर पाई जाने वाली 'ठोस पदार्थ मात्राओं' पर निर्भर है। इसका अर्थ यह हुआ कि आकर्षण शक्ति, सूर्य और ग्रहों के केन्द्रों तक प्रवेश करने में समर्थ है।

मैच ने इस बात की ओर संकेत किया कि गैलिलियो, हाइजिन्स और न्यूटन द्वारा मालूम किये गए, गति विज्ञान सम्बन्धी तथ्य, वास्तव में एक ही मूल तथ्य के भिन्न-भिन्न रूप हैं। गिरती हुई वस्तुओं पर प्रयोग कर गैलिलियो ने मालूम किया कि समय के साथ वेग बढ़ता जाता है, $व = ग \times स$, इसलिए $म \times व = म \times ग \times स = ब \times स$; $व =$ वेग, $ग =$ वेग-वृद्धि, $स =$ समय, $म =$ पदार्थ-मात्रा, $ब =$ बल अर्थात् आवेग ($म \times व$) समय और बल के गुणनफल के बराबर होता है। इस परिभाषा की सहायता से हम न्यूटन का नियम मालूम कर सकते हैं, क्योंकि $ब = \frac{म \times ग \times स}{स} = म \times ग$। अन्तिम गति का आधा औसत गति के बराबर होता है। इस औसत गति और समय का गुणनफल उस वस्तु द्वारा तै की गई दूरी द के बराबर है। इस प्रकार गैलिलियो का $व = ग \times स$ या न्यूटन का $म \times व = ब \times स$, हाइजिन्स के $\frac{1}{2} म \times व^2 = ब \times द$ ($द =$ दूरी) में परिवर्तित हो जाता है जिसके अनुसार गति-जन्य शक्ति, वस्तु द्वारा किये गए कार्य के बराबर होती है। जैसा मैच ने कहा, केवल एक ही मूल सिद्धान्त मालूम किया गया था।

यदि गैलिलियो कहीं पहले इस तथ्य को जान गया होता कि दूरी के साथ वेग बढ़ता जाता है, अर्थात् $व^2 = २ ग \times द$ तो वह निश्चय ही इस निष्कर्ष पर पहुँच गया होता कि हाइजिन्स का कार्य और शक्ति सम्बन्धी समीकरण $\frac{1}{2} म \times व^2 = ब \times द$ ही मूल नियम है।

इतिहास की यह एक केवल सांयोगिक घटना थी कि बल और आवेग को प्रथम स्थान मिला। इसी कारण कार्य और शक्ति की धारणाओं का प्रयोग बहुत विलम्ब से हुआ।

प्रकाश-विज्ञान—वर्त्तन (रिफ्रैक्शन) का नियम, जिसके अनुसार आपतन कोण और वर्त्तन कोण की साइनों का अनुपात निश्चित होता है, १६२१ में स्नेल ने मालूम कर लिया था। इन्द्रधनुष और शीशे के कटे हुए टुकड़ों में दिखाई देने वाले रंगों से मनुष्य बहुत पहले से परिचित रहा है। १६६२ में न्यूटन ने 'रंगों की प्रसिद्ध क्रिया को उत्पन्न करने के उद्देश्य से शीशे के एक त्रिभुजाकार पार्श्व (प्रिज़्म) को प्राप्त किया।' न्यूटन के प्रथम निबन्ध का विषय जो १६७२ में प्रकाशति हुआ, प्रकाश था।

न्यूटन ने मालूम किया कि उज्वल प्रकाश विभिन्न रंग वाले कई प्रकाशों का मिश्रण है। ये रंगीन प्रकाश पार्श्व के भीतर भिन्न-भिन्न वर्त्तन कोणों से होकर गुजरते हैं। बैगनी प्रकाश सबसे अधिक और लाल प्रकाश सबसे कम मुड़ता है। इन तथ्यों की सहायता से इन्द्र-धनुष की समस्या हल करने में वह सफल हुआ। उस काल के वर्त्तक दूरबीनों के भीतर, निरीक्षण के समय दिखाई देने वाले अवांछित रंगों की उपस्थिति का कारण भी स्पष्ट करने में वह सफल हुआ। परन्तु वह इस ग़लत नतीजे पर पहुँचा कि दूरबीन के भीतर इन रंगों से तब तक छुटकारा नहीं पाया जा सकता जब तक वस्तुओं का आकार वर्द्धन करने वाली वर्त्तन क्रिया को ही नष्ट न कर दिया जाय। इस कठिनाई से बचने के लिये उसने परावर्त्तन (रिफ्लेक्टिङ्ग) दूरबीन को ईजाद की।

उसने पतली पत्तरों के रंगों की परीक्षा की। ये रंग द्रवों के बुलबुलों और उनकी पतली परतों में प्रायः देखे जा सकते हैं। शीशे के एक पार्श्व को एक लेन्स के ऊपर रखकर उसने देखा कि विभिन्न रंग वृत्तों में व्यवस्थित हो जाते हैं, जिनके व्यास को वह सरलतापूर्वक नाप सकता था। ये रंगीन वृत्त तब से 'न्यूटन की कुंडलियों' के नाम से प्रसिद्ध

हैं। जब एक ही रंग के प्रकाश का प्रयोग किया गया तो एकान्तर क्रम से उस रंग की कुंडलियाँ तथा काली कुंडलियाँ दिखाई दीं। इससे यह स्पष्ट हो गया कि उज्ज्वल प्रकाश द्वारा रंगीन कुंडलियों के बनने का कारण यह है कि एक के बाद दूसरा रंग क्रम से लुप्त हो जाता है। ग्रिमाल्डी ने प्रयोगों द्वारा मालूम किया था कि प्रकाश की पतली किरणें अवरोधक पटों के किनारों पर मुड़ती हैं और आशा के विरुद्ध बड़ी परछाइयों को जन्म देती हैं। इन परछाइयों के किनारे रंगीन होते हैं। न्यूटन ने इन प्रयोगों को दुहराया और विस्तृत किया। उसने पाया कि यदि प्रकाश को एक अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र से होकर जाने दिया जाय तो वह और अधिक मुड़ता है। इस क्रिया का उसने बहुत सावधानी से निरीक्षण किया और इससे सम्बन्धित नापों को ठीक-ठीक मालूम किया। आइलैंड स्पार (एक प्रकार का क्रिस्टल) की द्विवर्त्तन क्रिया के सम्बन्ध में हाइजिन्स द्वारा किये गए प्रयोगों को न्यूटन ने और विस्तार के साथ किया और उनके आधार पर इस बात की ओर संकेत किया कि प्रकाश-किरणें सममिताकार (सिमेट्रिकल) नहीं होतीं।

प्रकाश की प्रकृति के सम्बन्ध में रोमर द्वारा आविष्कृत एक दूसरा तथ्य महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। पृथ्वी जब सूर्य और जुपिटर के बीच होती है तब जुपिटर के एक उपग्रह का ग्रहण उसी उपग्रह के उस ग्रहण से, जब सूर्य, पृथ्वी और जुपिटटर के बीच होता है, पन्द्रह मिनट पहले दिखाई देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में प्रकाश को कुछ निश्चित समय लगता है।

प्रकाश क्या है ? यह प्रश्न सर्वदा से आश्चर्य और कल्पना का विषय रहा है। इस धारणा से कि प्रकाश की रचना कणों से होती है, यूनानी भी परिचित थे। ये कण या तो प्रकाशमान् वस्तु से निकलते हुए या आंख से निकलकर उस वस्तु को प्रकाशित करते हुए कल्पित किये जाते थे। अरस्तू की धारणा थी कि प्रकाश एक माध्यम (मिडियम) में एक प्रकार की क्रिया है। डकार्ट का विचार था कि प्रकाश एक

प्रकार का दबाव है जो माध्यम से होकर चलता है। हुक ने इस बात की ओर संकेत किया कि प्रकाश एक माध्यम में तीव्र कम्पन है। हाइ-जिन्स ने उपर्युक्त कम्पन-सिद्धान्त का विस्तारपूर्वक विवेचन किया।

शून्य स्थान में से होकर ताप के सम्वाहन पर विचार करते हुए न्यूटन ने यह प्रश्न उठाया था :

शून्य में से होकर ताप का सम्वाहन, क्या, हवा से भी सूक्ष्म और अत्यन्त लचीले और क्रियाशील एक माध्यम के कम्पन का परिणाम नहीं है ?

परन्तु इस बात को ध्यान में रखते हुए कि प्रकाश साधारणतया सरल रेखाओं में गमन करता है, न्यूटन इस नतीजे पर पहुंचा कि प्रकाश, कणों से निर्मित होता है। परन्तु प्रकाश के अन्य बहुत-से गुणों के स्पष्टीकरण के लिये उसे यह मानना पड़ा कि प्रकाश-कण जिन वस्तुओं के सम्पर्क में आते हैं उनमें कम्पन पैदा कर देते हैं। वस्तुओं के ये कम्पन प्रकाश-कणों को सरलतापूर्वक क्रम से परावर्तित और वर्तित करते रहते हैं। इस प्रकार न्यूटन के प्रकाश-कण तरंगों के कुछ गुणों से युक्त थे।

न्यूटन के बाद वैज्ञानिक निर्विवाद रूप से यह स्वीकार करने को बाध्य हुए कि प्रकाश कणात्मक नहीं बल्कि तरंगात्मक है। परन्तु बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में यह पाया गया कि प्रकाश को तरंगीय गुणों से युक्त कणों का समूह मानना अर्थात् प्रकाश को न्यूटन द्वारा कल्पित कणों का समूह मानना कहीं अधिक उचित है। यही नहीं आज हम मूलभूत विद्युत् कणों को भी तरंगों से वेष्ठित मानने के लिये विवश हैं। विद्युत् कणों का वर्तमान रूप भी उन प्रकाश कणों जैसा है, जिनकी कल्पना न्यूटन ने अपनी उज्वल अन्तर्दृष्टि से की थी। प्राकृतिक क्षेत्र में उसकी अपूर्व और आश्चर्यजनक कल्पना-शक्ति का यह एक दूसरा प्रमाण है।

ट्रिनिटी कालिज में अपने कमरों के पीछे स्थित उद्यान में न्यूटन ने एक प्रयोगशाला स्थापित की थी जिसमें वह अपना अधिकांश समय

रसायन और कीमिया से सम्बन्धित प्रयोगों को करने में व्यतीत करता था। परन्तु इस विषय पर उसने कोई पुस्तक या निबन्ध नहीं लिखा। इस विषय पर केवल उसकी हस्तलिखित टिप्पणियाँ प्राप्य हैं। उसकी पुस्तक आप्टिक्स (प्रकाश-विज्ञान) के अन्त में इस विषय से सम्बन्धित कुछ प्रश्न अंकित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी विशेष दिलचस्पी धातुओं, रासायनिक-प्रीति (केमिकल ऐफिनिटी) और पदार्थ-रचना के अध्ययन की ओर थी। उसने लिखा है कि सीसा, वङ्ग (टिन) और बिस्मथ को यदि ५ : ७ : १२ के अनुपात से परस्पर मिलाकर एक धातु-मिश्रण बनाया जाय तो वह मिश्रण इन धातुओं के अन्य सब मिश्रणों से शीघ्र पिघलने वाला होगा। इकतीसवें प्रश्न में वह लिखता है :

टार्टर लवण के पिघलने का कारण क्या यह नहीं है कि इस लवण के कणों और हवा में पाये जाने वाले जलकणों में परस्पर आकर्षण है? और क्या यह सही नहीं है कि साधारण नमक, शोरा और तूतिया इसलिये नहीं पिघलते क्योंकि उनके कणों और जलकणों में उपर्युक्त आकर्षण का अभाव है?

न्यूटन और दर्शन शास्त्र—वैज्ञानिक अन्वेषण की गैलिलियो द्वारा अपनाई गई प्रणाली का न्यूटन ने भी अनुकरण किया। घटनायें 'क्यों' घटती हैं, इस प्रश्न की अपेक्षा उसने इस प्रश्न की ओर विशेष ध्यान दिया कि घटनायें 'कैसे' घटित होती हैं। गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी उसके कार्य में इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। यद्यपि यह कहा जाता है कि न्यूटन ने सिद्ध कर दिया था कि 'बीच में व्यवधान होते हुए भी एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर प्रभाव पड़ता है,' फिर भी वह इस प्रकार की धारणा को असंगत समझता था। उसने सिद्ध किया कि वस्तुएँ इस प्रकार चलती हैं मानो कण एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं, परन्तु उसने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि वह यह नहीं जानता कि पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण क्यों और किस प्रकार कार्य करता है। यह एक दूसरी समस्या है। इस समस्या का समाधान हो भी नहीं सकता। विज्ञान

प्रकृति के बाह्य रूप का ही वर्णन और अध्ययन कर सकता है। उस रूप के पीछे जो वास्तविकता है उसे शायद विज्ञान स्पर्श नहीं कर सकता।

यही भेद न्यूटन के एक दूसरे प्रश्न में मिलता है :

'क्या वस्तुओं के सूक्ष्म कण, कुछ शक्तियों और गुणों से युक्त नहीं होते जिनके द्वारा वे एक दूसरे को प्रभावित कर प्रकृति की अधिकांश घटनाओं को घटित करने में समर्थ होते हैं ? मैं यहां इस बात पर विचार नहीं करता कि वे एक दूसरे को किस प्रकार आकर्षित करते हैं। वह क्रिया जिसे मैं आकर्षण कहता हूँ, सम्भव है संवेग (इम्पल्स) या किसी अन्य साधन द्वारा सम्पादित होती हो जिसे मैं नहीं जानता।'

गैलिलियो और न्यूटन द्वारा अपनाई गई वैज्ञानिक अध्ययन की प्रणाली में सबसे प्रथम, ज्ञात तथ्यों की परीक्षा की जाती है और उन तथ्यों को एक व्यवस्था के अन्तर्गत लाने के लिए एक कामचलाऊ सिद्धान्त की कल्पना की जाती है। इसके पश्चात् गणित या अन्य प्रकार द्वारा मालूम किये गए उपयुक्त काम चलाऊ सिद्धान्त के स्वाभाविक और तर्क-संगत निष्कर्षों और परिणामों की जांच प्रयोगों और निरीक्षणों की कसौटी पर की जाती है। यदि वे इस परीक्षा में खरे उतरते हैं तो वह कामचलाऊ सिद्धान्त वास्तविक और सत्य सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता है। यह सत्य सिद्धान्त, नवीन प्रयोगों और निरीक्षणों की ओर संकेत करता है, क्योंकि जैसा कहा गया है, हमारे ज्ञान का क्षेत्र जितना बढ़ता जाता है अज्ञात सत्य हमसे उतना ही दूर होता जाता है।

न्यूटन के गति विज्ञान और आकाश शास्त्र में स्थान और समय प्रत्येक को स्वतंत्र और वास्तविक सत्ता स्वीकार की गई है, यद्यपि अपेक्षावाद के अनुसार आज हम जानते हैं, समय और स्थान एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं बल्कि एक दूसरे पर निर्भर हैं। गैलिलियो की भांति न्यूटन ने भी परमाणु सिद्धान्त को स्वीकार किया यद्यपि अभी समय

नहीं आया था कि उस सिद्धान्त को गणित की सहायता से एक निश्चित रूप दिया जा सके, जैसा रूप एक शताब्दी बाद डाल्टन उसे देने में समर्थ हुआ।

गैलिलियो और न्यूटन की विचारधारा, जो भौतिक तथा गति सम्बन्धी क्रियाओं और घटनाओं का वर्णन स्थान, समय एवं गतिशील पदार्थकणों की धारणाओं की सहायता से करने में पूर्णतया सफल हुई, निस्सन्देह एक यांत्रिक या जड़वादी दार्शनिक दृष्टिकोण के विकास में सहायक सिद्ध हुई। अठारहवीं शताब्दी में और विशेषकर फ्रांस में यह जड़वादी दृष्टिकोण पूर्ण रूप से पल्लवित हुआ। फ्रांस में इस दृष्टिकोण ने प्रथम देववाद (थियीज़्म) को और बाद में नास्तिकवाद को प्रोत्साहन प्रदान किया। परन्तु न्यूटन और उसके समकालीन विचारकों के हृदयों में उपर्युक्त जड़वादी या नास्तिकवादी दृष्टिकोण के लिए कोई स्थान नहीं था। जैसा ऊपर कहा गया है, न्यूटन स्पष्ट रूप से, प्राकृतिक क्रियाओं के गणित मूलक सफल वर्णन और उन क्रियाओं के कारणों के दार्शनिक स्पष्टीकरण के भेद से अवगत था। न्यूटन और उसके तत्कालीन अनुयायियों की दृष्टि में नये आविष्कार ईश्वर की शक्ति और बुद्धिमत्ता के परिचायक थे। न्यूटन ने लिखाः

'सूर्य, ग्रहों और पुच्छल तारों की यह अत्यन्त सुन्दर व्यवस्था केवल एक बुद्धिशाली और शक्तिमान् सत्ता की इच्छा से ही अस्तित्व में आ सकी होगी। ईश्वर का कभी अन्त नहीं होता और वह सर्वव्यापक है। अनन्त और सर्वव्यापी होने के कारण वह समय और स्थान का संस्थापक है।'

इस प्रकार न्यूटन के अनुसार, ईश्वर केवल सृष्टि का आदि कारण ही नहीं है बल्कि प्रकृति में उसकी सत्ता सर्वदा विद्यमान है। न्यूटन लिखता हैः

'जब हम इन सब बातों पर विचार करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ में ईश्वर ने पदार्थ की रचना ठोस, भारी, कठोर, अभेद्य

एवं गतिशील कणों के रूप में की। उन कणों के आकार तथा उनके अन्य गुण उस उद्देश्य के सर्वथा अनुकूल थे जिसकी पूर्ति के लिए निर्माता ने उन कणों की रचना की।'

केम्ब्रिज निवास के आरम्भिक वर्षों में जहाँ न्यूटन ने गणित और दर्शन का अध्ययन किया वहाँ उसने रहस्यवादी रचनाओं, धार्मिक साहित्य और कीमिया से सम्बन्धित ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। यह उसकी रहस्यवादी प्रवृत्ति का प्रमाण है। उसके धार्मिक विश्वास, रूढ़िवादी नहीं थे। यद्यपि वह अपने कालेज का 'फेलो' था फिर भी उसने कभी 'होली आर्डर' (पवित्र आदेश) नहीं लिया। परन्तु ईश्वर में उसका दृढ़ विश्वास था और उसका विचार था कि उसका वैज्ञानिक अनुसंधान कार्य उसके इस विश्वास के औचित्य को सिद्ध करने में सफल होगा।

न्यूटन लंदन में:—जेम्स द्वितीय के विरुद्ध, विश्वविद्यालय की स्वातंत्र्य रक्षा में न्यूटन ने महत्वपूर्ण भाग लिया। वह 'कन्वेन्शन पार्लमेन्ट' का सदस्य निर्वाचित किया गया जिसने राज-सिंहासन के उत्तराधिकार का प्रश्न हल किया। १७०१ में वह पुनः निर्वाचित किया गया।

१६९३ में उसे मानसिक उद्विग्नता की बीमारी हो गई और उसके मित्रों ने निश्चय किया कि उसे केम्ब्रिज से हट जाना चाहिये। वे मित्र उसे टकसाल के वार्डन का पद दिलाने में समर्थ हुए। बाद में वह वहाँ का सर्वोच्च पदाधिकारी, मास्टर, हो गया। उसने अपने रासायनिक और कीमिया से सम्बन्धित अन्वेषण कार्य को त्याग दिया और इस कार्य से सम्बन्धित कागजों को उसने एक सन्दूक में बंद कर दिया।

लंदन में आते ही उसके जीवन में पूर्ण परिवर्तन हो गया। अपनी वैज्ञानिक सफलताओं के कारण वह एक आदरणीय और विशिष्ट स्थान प्राप्त करने में सफल हुआ। १७०३ से लेकर अपनी मृत्यु तक अर्थात् चौबीस वर्षों तक वह रायल सोसायटी का अध्यक्ष रहा। न्यूटन की प्रसिद्धि और उसकी अद्वितीय प्रतिभा के कारण सोसायटी का महत्व

बहुत बढ़ गया। मानसिक विक्षिप्ति के होते हुए भी, जिससे वह नियुक्ति के आरम्भिक दिनों में आक्रांत रहा, उसने टकसाल का कार्य जिस योग्यता के साथ सम्पादित किया उससे पता चलता है कि वह एक कुशल प्रबन्धकर्ता भी था। हां, यह सत्य है कि आलोचना या विरोध सहन करने की क्षमता उसमें नहीं थी।

उसकी भांजी कैथराइन बार्टन, जो एक हास्यप्रिय और सुन्दर स्त्री थी, न्यूटन के घर का प्रबन्ध करती थी। न्यूटन के जीवन के इस दूसरे भाग से सम्बन्धित बहुत-सी दंतकथायें अठारहवीं शताब्दी में गढ़ी गईं। कैथराइन ने जॉन कान्डुयिट से विवाह किया। उनकी एक मात्र पुत्री, विस्काउन्ट लिमिन्गटन की पत्नी बनी। लिमिन्गटन का पुत्र, पोर्टस्माउथ के अर्लडम का उत्तराधिकारी हुआ। इस प्रकार न्यूटन की वस्तुयें वैलप परिवार के पास चली गईं। ※

※ १८७२ में पंचम लार्ड पोर्टस्माउथ ने न्यूटन के कुछ वैज्ञानिक कागजों को, केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के पुस्तकालय को दे दिया। इसके बाद उसके कुछ कागजों और पुस्तकों की बिक्री हुई। कुछ कागज लार्ड किनिस ने प्राप्त किया। पुस्तकें पिल्ग्रिम ट्रस्ट द्वारा क्रय की गईं और ट्रस्ट ने उन्हें (१९४३) में ट्रिनिटी कालेज को दे दिया।

छठवां अध्याय

अठारहवीं शताब्दी

दर्शन—न्यूटन के समकालीन और उसके बाद वाले लेखकों ने जो प्रधानतया दार्शनिक थे, या तो स्पष्ट रूप से वैज्ञानिक विषयों का विवेचन किया या दर्शन के ऐसे अंगों का विवेचन किया जो विज्ञान से सम्बन्धित थे। इनमें से जॉन लाक, (१६३२–१७०४) वस्तुतः आनेवाले काल, अठारहवीं शताब्दी, का प्रतिनिधि था, यद्यपि उसके जीवन का अधिकांश भाग सत्रहवीं शताब्दी में व्यतीत हुआ। इसलिए अठारहवीं शताब्दी में प्रवेश करने के पहले उसके विचारों पर एक विहंगम दृष्टि डाल लेना अच्छा होगा।

लाक एक चिकित्सक था। चिकित्सा-क्षेत्र में उसने तर्कवादी धारणाओं का विरोध और अपने मित्र डा० सिडेन्हम द्वारा प्रयुक्त निरीक्षण-पद्धति का समर्थन किया। परन्तु लाक की रचनाओं में उसके 'मानव ज्ञान शक्ति से सम्बन्धित निबन्ध' का प्रमुख स्थान है जिसमें उसने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि विचारों की उत्पत्ति अनुभव द्वारा होती है। ये अनुभव या तो बाहरी वस्तुओं की अनुभूति या मानसिक क्रियाओं की उहापोह के रूप में प्राप्त किये जाते हैं। हम पदार्थों के विषय में सिवा उनके गुणों के और कुछ नहीं जानते। ये गुण केवल ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मालूम किये जाते हैं। जब इन गुणों के पारस्परिक सम्बन्ध स्थायी होते हैं तब हम इन गुणों के पीछे स्थित पदार्थ की कल्पना करने में समर्थ होते हैं। बाह्य रूपों में परस्पर सामंजस्य स्थापित करने में प्राप्त सफलता के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना कि उन

वाह्य रूपों के पीछे किसी-न-किसी रूप में एक वास्तविक सत्ता भी है, लाक को असंगत नहीं प्रतीत हुआ। भाववाचक धारणाओं को शब्दों द्वारा प्रकट करना वांछनीय नहीं है क्योंकि शब्दों का अर्थ परिवर्तित हो सकता है। यह एक प्रकार से भाषा की प्रथम आलोचना थी। लाक ने अपने मस्तिष्क की कार्य-प्रणाली की, ध्यानपूर्वक समीक्षा कर अन्तर्मुखी मनोविज्ञान के अध्ययन का सूत्रपात किया। वह इस परिणाम पर पहुंचा कि विचारों या वाह्य क्रियाओं के पारस्परिक सम्बन्ध को ढूंढ निकालना ही ज्ञान प्राप्त करना है। परन्तु ये सम्बन्ध केवल कुछ थोड़े-से तथ्यों के आधार पर स्थापित किये जा सकते हैं। बहुत सम्भव है कि भविष्य में ज्ञात होने वाले नवीन तथ्यों द्वारा इन सम्बन्धों का समर्थन न हो सके। इस प्रकार प्रकृति के विषय में हमारा ज्ञान अनिवार्य रूप से और हर हालत में पूर्ण और निश्चित नहीं कहा जा सकता। इसी कारण लाक ने राजनीतिक, दार्शनिक और धार्मिक क्षेत्रों में उदार एवं विवेकपूर्ण विचार-स्वातन्त्र्य का समर्थन किया। उसने विभिन्न धार्मिक विश्वासों के प्रति सहिष्णु होने की आवश्यकता पर जोर दिया, और उस समय की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए यह उसकी मौलिकता का एक बहुत बड़ा प्रमाण है।

न्यूटन के विज्ञान और लाक के दर्शन से प्रभावित होकर बर्कले ने न्यूटन द्वारा प्रतिपादित संसार के चित्र को स्वीकार किया परन्तु उसने इस बात की ओर संकेत किया कि हम संसार का वही रूप देखने में समर्थ हैं, जिसे हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ उपस्थित करती हैं। हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ ही संसार को वास्तविकता प्रदान करती हैं। एक जीवित मस्तिष्क द्वारा अनुभूत होने के कारण ही पार्थिव जगत वास्तविक प्रतीत होता है। ईश्वर के अस्तित्व को मानना अनिवार्य है क्योंकि मानव-मस्तिष्कों के अभाव में पार्थिव जगत् को वास्तविकता प्रदान करने के लिये एक ऐसे मस्तिष्क की आवश्यकता है जो संसार को निरन्तर अनुभव करता रहे।

एक साधारण व्यक्ति के लिये इसका अर्थ यह हुआ कि वास्तव में

पदार्थ-जैसी कोई चीज़ है ही नहीं। उपर्युक्त विचारधारा ने अच्छी और बुरी हर प्रकार की आलोचना को जन्म दिया। डा० जान्सन से आरम्भ होकर, जिसका विचार था कि एक पत्थर के टुकड़े को ठोकर लगाकर वह बर्कले के तर्कों को निर्मूल सिद्ध कर सकता है, आलोचना का क्रम आज तक जारी रहा है। परन्तु इस कथन में बहुत कुछ सचाई है कि जिस संसार को हम जानते हैं उसकी वास्तविकता हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर ही निर्भर है। इस संसार के पीछे जो वास्तविक संसार है उसे हम नहीं जान सकते परन्तु लाक की तरह हम कह सकते हैं कि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभूत बाह्य जगत् सम्बन्धी ज्ञान के आधार पर वास्तविक जगत् के अस्तित्व में विश्वास करना बहुत हद तक उचित है।

डेविड ह्यूम (१७११--१७७६) और आगे गया। उसकी दृष्टि में न मस्तिष्क वास्तविक था न पदार्थ। उसके अनुसार केवल धारणाओं और मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभावों का तारतम्य ही सत्य है। अनुभववादियों की उसने यह कहकर आलोचना की कि चूँकि अनुभववादी केवल ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभवों पर जोर देते हैं इसलिये वे सार्वभौमिक नियमों की झलक नहीं पा सकते। ह्यूम का विचार था कि एक घटना को किसी दूसरी घटना का कारण समझना केवल मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति का द्योतक है। इस प्रवृत्ति के लिये शायद संयोग उत्तरदायी है। कुछ भी हो, इस प्रवृत्ति का औचित्य नहीं सिद्ध किया जा सकता। लाक और ह्यूम दोनों आध्यात्मिक सत्य को मानव बुद्धि और तर्कशक्ति की पहुंच के बाहर समझते थे। ह्यूम ने तर्क और विश्वास के भेद को भी स्वीकार किया।

वास्तविकता के ज्ञान की सम्भावना के सम्बन्ध में कान्ट (१७२४--१८०४) भी सन्देहशील था। यही नहीं, वैज्ञानिक और दार्शनिक सिद्धान्तों की सत्यता में भी उसका विश्वास नहीं था। विज्ञान जिस जगत् को जानता है वह ज्ञानेद्रियों द्वारा मालूम किया हुआ जगत् है, वास्तविक जगत् नहीं है। लिबनिज़ का विचार था कि विशुद्ध तर्क बाह्य

एवं अपरिवर्तनशील सत्य का दर्शन कराने में समर्थ है। कान्ट ने भी तर्क की उपादेयता और क्षमता को कुछ हद तक स्वीकार किया। कान्ट का विश्वास था कि नैतिक भाव उतना ही वास्तविक है जितना नक्षत्रों से सुशोभित आकाश। नैतिक भाव एक रूप है जिसमें वास्तविकता मानव मस्तिष्क के सम्मुख प्रकट होती है।

इन दार्शनिकों की रचनाओं को छोड़कर, आइये हम यह देखने का प्रयत्न करें कि न्यूटन के विज्ञान का अठारहवीं शताब्दी की साधारण विचारधारा पर, विशेषकर फ्रांस में, क्या प्रभाव पड़ा। फ्रांस में यह प्रभाव प्रसिद्ध पुस्तक, 'एन्सायक्लोपिडाई' में प्रकट हुआ। न्यूटन और उसके मित्र, न्यूटन द्वारा चित्रित ब्रह्माण्ड के चित्र को ईश्वर की महानता का द्योतक समझते थे और वनस्पति शास्त्रवेत्ताओं जैसे रे ने भी ऐसे ही उद्‌गारों को प्रकट किया। परन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि न्यूटन के वैज्ञानिक कार्य ने वाल्टेयर तथा कुछ अन्य विचारकों पर एक भिन्न प्रकार का प्रभाव डाला। आकाशीय लोकों की गतिविधि का रहस्य उद्‌घाटन करने में न्यूटन को जो सफलता मिली, तथा विज्ञान की अन्य शाखाओं में ऐसे ही यांत्रिक सिद्धान्तों की सफलता की जो सम्भावना दिखाई दी, उसने इन विचारकों की संदेहात्मक धार्मिक विचारधारा को बहुत बल प्रदान किया। फलतः उन्होंने अतिशयोक्ति से काम लिया। लैप्लास ने एक ऐसे मस्तिष्क की कल्पना की जो प्रकृति के अनन्त काल तक के कार्यक्रम के सम्बन्ध में भविष्यवाणी कर सकता है, यदि वस्तुओं की पदार्थ मात्राएँ और उनका वेग मालूम हो। ऐसा साहसपूर्ण विचार रखने वालों की संख्या आज बहुत कम है क्योंकि आज के द्विविधा-ग्रस्त वैज्ञानिक के सर के ऊपर 'अनिश्चितता-सिद्धान्त' की तलवार लटक रही है। परन्तु वाल्टेयर ने लिखा :

'यह एक आश्चर्य की बात होगी यदि सम्पूर्ण प्रकृति, सारे ग्रह, नित्य नियमों का पालन करें और एक पांच फुट का छोटा जानवर

(मनुष्य) इन नियमों का तिरस्कार करता हुआ अपनी इच्छा के अनुसार जो चाहे वह करे।'

वाल्टेयर ने प्राकृतिक नियमों के अर्थ एवं जीवन और मानव-मस्तिष्क की क्रियाओं से सम्बन्धित समस्याओं की ओर तथा स्वतन्त्र इच्छा के लिये अभी भी जो क्षेत्र बाकी बचा हुआ था, उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि न्यूटन के विज्ञान के धार्मिक और दार्शनिक पक्ष के सम्बन्ध में प्रचलित फ्रांसीसी विचारों को वह बहुत स्पष्टता के साथ व्यक्त कर रहा था। लैप्लास ने न्यूटन से कहा था कि सृष्टि के लिये वह सृष्टिकर्त्ता की आवश्यकता अनुभव नहीं करता। इस पर टिप्पणी करते हुए लैग्रेन्जी ने कहा था कि सृष्टि-रचयिता की कल्पना एक अच्छी कल्पना है; इसकी सहायता से बहुत-सी बातों का स्पष्टीकरण किया जा सकता है। इंगलैण्ड में, जहां अठारहवीं शताब्दी में चर्च उदार नीति से काम ले रहा था तथा जहां लोग परस्पर-विरोधी विश्वासों और विचारों में आस्था रखने के आदी थे, यांत्रिक दृष्टिकोण उतना प्रचलित न हो सका जितना अन्य तर्क-प्रधान देशों में। न्यूटन के देशवासियों ने साधारणतया न्यूटन के विज्ञान और अपने पुरातन धर्म दोनों को स्वीकार किया। धर्म और विज्ञान में विरोध, जहां तक इंगलैण्ड का सम्बन्ध है, केवल उन्नीसवीं शताब्दी में प्रकट हुआ।

इसी बीच फ्रांस में एक प्रचलित विचारधारा 'पदार्थवाद' की ओर प्रवाहित हो रही थी। इस 'वाद' का तत्त्व सरलतापूर्वक हृदयंगम किया जा सकता है। यह उतना ही प्राचीन है जितना यूनानी परमाणुवाद। हाल ही में हाब्स ने इसकी व्याख्या की। 'पदार्थवाद' (मैटीरियलिज़्म) शब्द का प्रयोग प्रायः मनमाने ढंग से किया जाता है। लोग इसे अनीश्वरवाद या वास्तव में किसी भी अप्रिय मत का पर्यायवाची समझते हैं। परन्तु यहाँ इसका प्रयोग इसके वास्तविक अर्थ को दृष्टि में रख कर किया गया है। पदार्थवाद के अनुसार, न्यूटन द्वारा कल्पित, ठोस और अभेद्य कणों (या उनके वर्तमान संस्करण इलेक्ट्रान आदि) के रूप में

पाया जानेवाला पदार्थ ही अंतिम सत्य है, विचार और चेतना पदार्थ के गौण परिणाम हैं।

फ्रान्स के पदार्थवादियों ने 'यांत्रिक निर्धारणवाद' (मिकैनिकल डिटर्मिनिज़्म) का भी विवेचन किया जो पदार्थवाद का समरूप तो नहीं परन्तु उससे मिलता जुलता अवश्य है। होलबाच ने दलील दी कि चूँकि पदार्थ से निर्मित मनुष्य सोच सकता है इसलिए पदार्थ स्वयं सोचने की शक्ति से युक्त है। परन्तु इस दलील से मूल समस्या का कि 'मनुष्य में सोचने की शक्ति कहां से आती है' समाधान नहीं होता। प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन में और विज्ञान के विवरणपूर्ण अनुसंधान-कार्य में पदार्थवाद की उपयोगिता स्वीकार की जा सकती है परन्तु इसे सम्पूर्ण विज्ञान का निचोड़ समझना या आवश्यकता से अधिक महत्व प्रदान करना जो विज्ञान की सफलता के कारण स्वाभाविक प्रतीत हो सकता है, वांछनीय नहीं है। पदार्थ भी अन्य वैज्ञानिक धारणाओं की तरह, हमारी ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करता है और इस प्रभाव के कारण हम उसकी सत्ता से अवगत हो पाते हैं। इस प्रकार यहाँ भी वही समस्या हमारे सम्मुख उपस्थित होती है कि यह अनुभूत पदार्थ, स्वयं सत्य है या किसी अज्ञात सत्य का केवल बाह्य रूप है। अठारहवीं शताब्दी में भी लाक, बर्कले और ह्यूम की दृष्टि में पदार्थवाद, कम-से-कम अपने तत्कालीन रूप में पूर्णतया संतोषजनक नहीं था। पदार्थवाद को हम पुनः उन्नीसवीं शताब्दी में और विशेषकर जर्मनी में पायेंगे।

गणित और आकाश-विद्या—डिफरेन्शियल कैल्क्युलस का आविष्कार पहले न्यूटन ने किया कि लिबनिज़ के इस अप्रिय विवाद के कारण इंगलैण्ड और शेष यूरप के गणितज्ञ एक दूसरे के विरोधी हो गये। इंगलैण्ड के गणितज्ञ ज्यामिति या न्यूटन की फ्लक्शियन प्रणाली का प्रयोग करते रहे और डिफरेन्शियल कैल्क्युलस तथा उसके परिणामों के विकास में उनका बहुत कम हाथ रहा। गणित की इस शाखा का विकास शेष यूरप में जेम्स बर्नोली, यूलर और अन्य गणितज्ञों द्वारा

हुआ। परन्तु इंगलैण्ड में भी टेलर और मेक्लारिन ने 'गणित-श्रेणियों' (सीरिज़) के विस्तार में सहायक, महत्त्वपूर्ण परिणामों को मालूम किया।

फ्रांस निवासियों को न्यूटन की रचनाओं से परिचित कराने में मापर्टुइस का विशेष हाथ था। वाल्टेयर ने जनसाधारण के लिये न्यूटन की रचनाओं का एक सरल विवरण प्रकाशित किया। कुछ काल तक वैज्ञानिक क्रियाशीलता का फ्रांस मुख्य केन्द्र था। लैग्रेन्ज (१७३६--१८१३) ने परिवर्तनों के कैल्क्युलस की सृष्टि की और डिफरेन्शियल समीकरणों के विषय को व्यवस्थित किया। उसका यह कार्य भौतिक विज्ञान और आकाश विद्या सम्बन्धी समस्याओं को हल करने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। अपनी पुस्तक 'यांत्रिक विश्लेषण' में उसने सम्पूर्ण यंत्र विज्ञान का विवेचन 'शक्ति अणुता' और 'काल्पनिक (वर्चुअल) गति' के सिद्धान्तों के आधार पर किया। इन सिद्धान्तों के अनुसार शक्ति में यदि वृद्धि होती है तो गति उसी अनुपात में क्षीण हो जाती है। मापर्टुइस ने स्थान (या लम्बाई) और वेग के गुणनफलों के योग को 'क्रिया' (ऐक्शन) नाम दिया। उसने सिद्ध किया कि प्रकाश न्यूनतम क्रिया वाले मार्ग से होकर गमन करता है। एक ऐसी ही 'क्रिया' हम क्वैन्टम भौतिक विज्ञान में भी पायेंगे।

न्यूटन द्वारा चित्रित ब्रह्माण्ड को लैप्लास (१७४६-१८२७) ने और विस्तृत किया। वह एक साधारण किसान का लड़का था परन्तु अपनी योग्यता के कारण 'रेस्टोरेशन के मार्क्विस' जैसे उच्च पद को प्राप्त करने में सफल हुआ। उसने आकर्षण से सम्बन्धित समस्याओं का विवेचन लैग्रेन्ज की प्रणाली से किया। उसने सिद्ध किया कि सूर्य परिवार की व्यवस्था सुदृढ़ और स्थायी है। एक ग्रह पर दूसरे ग्रहों तथा पुच्छलतारों का विचलित करने वाला प्रभाव अस्थायी होता है। इस प्रकार के प्रभाव परस्पर एक दूसरे को ठीक कर देते हैं। उसने एक गैस-मेघ (नेबुला = आकाश-गंगा के भीतर पाये जाने वाले लोक जो गैस के बादलों जैसे मालूम पड़ते हैं) सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस सिद्धांत

के अनुसार सूर्य-परिवार की उत्पत्ति एक दहकते हुए और चक्कर काटते हुये गैस-मेघ से हुई है। कान्ट ने भी ऐसी ही कल्पना की थी। आधुनिक अनुसंधानों के अनुसार यह सिद्धान्त सूर्य-परिवार के सम्बन्ध में ठीक नहीं है परन्तु जहाँ तक चक्राकार गैस-मेघों का सम्बन्ध है, जिनमें नक्षत्रों का निर्माण बहुत बड़े पैमाने पर आज भी हो रहा है, यह सिद्धांत बहुत कुछ सत्य प्रतीत होता है।

न्यूटन ने मालूम किया था कि किसी तरंग का वेग उस माध्यम के स्थिति स्थापकत्व गुणक (माडुलस आव इलैस्टिसिटी) और घनत्व के भाज्यफल के वर्गमूल के बराबर होता है, जिसमें से होकर तरंग चलती है। वायु में ध्वनि-तरंगों का वेग प्रयोग द्वारा मालूम किया गया। इस प्रकार मालूम किये गए वास्तविक वेग से उपर्युक्त नियम द्वारा मालूम किया गया वेग बहुत कम था। लैप्लास इस कमी का कारण मालूम करने में समर्थ हुआ। ध्वनि-तरंगे जब वायु में से होकर चलती हैं तो उनके मार्ग में स्थित वायु की विभिन्न परतें क्रम से फैलती और सिकुड़ती रहती हैं। यह क्रिया इतनी शीघ्रता के साथ होती है कि उन परतों से न ताप बाहर जा पाता है न बाहर से ताप उन परतों में आ पाता है। लैप्लास ने संकेत किया कि ऐसी दशा में वायु का स्थिति स्थापकत्व गुणक साधारण अवस्था में स्थित वायु के स्थिति स्थापकत्व गुणक से अधिक होता है। यह तथ्य न्यूटन को नहीं मालूम था।

परस्पर आकर्षण सिद्धान्त पर आधारित आकाश विद्या का विकास न्यूटन और लैप्लास द्वारा दिखाये गए मार्ग का अनुसरण कर किया गया है। जे० सी० ऐडम्स और लेवेरियर ने १८४६ में भविष्यवाणी की कि ज्ञात ग्रहों के अतिरिक्त सूर्य-परिवार में एक और ग्रह होना चाहिये क्योंकि उस ग्रह की कल्पना किये बिना यह बतलाना असम्भव है कि यूरैनस ग्रह क्यों विचलित हो जाता है। इस नवीन ग्रह नेप्च्यून का अस्तित्व जब निरीक्षण द्वारा भी निस्सन्देह रूप से सिद्ध कर दिया गया, तो न्यूटन की प्रणाली की सत्यता और क्षमता अंतिम रूप से प्रमाणित

हो गई। न्यूटन के सिद्धान्तों की सफलता विस्मयजनक है। यह सत्य है कि कुछ शक्तिशाली आधुनिक उपकरणों की सहायता से यह सिद्ध किया जा सकता है कि न्यूटन के सिद्धान्त त्रुटियों से रहित नहीं हैं और आइन्स्टीन के सिद्धान्त न्यूटन के सिद्धांतों की अपेक्षा कहीं अधिक उत्कृष्ट हैं। फिर भी साधारणतः, न्यूटन के सिद्धांतों की सहायता से बहुत हद तक यथार्थ परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। ये सिद्धांत अपेक्षाकृत व्यापक सिद्धांतों में खप जाते हैं परन्तु वे अन्य सिद्धान्तों द्वारा स्थानान्तरित नहीं किये जा सके हैं। गुरुत्वांक (ग्रैविटेशन कान्स्टैन्ट) के ज्ञात हो जाने पर न्यूटन के कार्य ने पूर्णता प्राप्त करली; १७७४ में मैस्कलाइन ने एक पर्वत द्वारा एक साहुल सूत्र (प्लम्ब लाइन) को विचलित कर तथा कैवेन्डिश (१७३१–१८१०) ने ऐंठनतुला (टार्शन बैलन्स) द्वारा दो गेंदों के परस्पर आकर्षण को मालूम कर गुरुत्वांक मालूम किया। १८६४ में सी० वी० ब्वायज़ ने गुरुत्वांक का और यथार्थ मूल्य मालूम किया।

केप्लर के निरीक्षणों ने सूर्य-परिवार का एक चित्र उपस्थित किया था परन्तु इस चित्र में यह बतलाना कि एक लोक दूसरे से कितनी दूरी पर है तब तक सम्भव नहीं हो सका जब तक कम-से-कम किसी एक लोक की दूसरे किसी लोक से दूरी निश्चित नहीं की जा सकी। हम अगले किसी अध्याय में इन दूरियों का वर्तमान मान देंगे। परन्तु रिचर ने १६७२ में ही इनका बहुत कुछ यथार्थ मान मालूम कर लिया था। पृथ्वी जब अपनी कक्षा पर घूमती रहती है तो नक्षत्र अपना स्थान परिवर्तित करते हुए-से प्रतीत होते हैं। इस प्रकार के निरीक्षणों के आधार पर ब्रैडले ने १७२९ में प्रकाश का वेग मालूम किया।

रसायन शास्त्र—अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में होम्बर्ग ने सिल्वियस के विचारों के प्रकाश में अम्लों और क्षारों के संयोग से लवण-निर्माण क्रिया का अध्ययन किया। यह अध्ययन आगे चलकर रासायनिक-गठन सम्बन्धी सिद्धान्तों के विकास में सहायक सिद्ध हुआ। १७३२ में

लेडन निवासी बोरहाव ने उस काल के सर्वोच्च रसायन-ग्रंथ की रचना की और इस प्रकार वह प्रस्तुत ज्ञान को व्यवस्थित करने में सहायक हुआ।

रसायन-शास्त्र से सम्बन्धित आरम्भिक अनुसंधान-कार्य का उद्देश्य था ज्वलन क्रिया का रहस्य-उद्घाटन। जब वस्तुयें जलती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनके भीतर से कोई चीज़ बाहर निकलती है। इस बाहर निकलने वाली चीज़ को, जो बहुत दिन तक गंधक के नाम से प्रसिद्ध रह चुकी थी, स्टाल (१६६०—१७३४) ने जो प्रुशिया नरेश का चिकित्सक था, 'फ्लाजिस्टन', अग्नि का सार, नाम दिया। रे और ब्वायल दिखा चुके थे कि जब धातुएं जलाई जाती हैं तो उनके वज़न में वृद्धि होती है। इसका अर्थ हुआ, जैसा कि वेनल ने संकेत किया, कि फ्लाजिस्टन ऋण वज़न से युक्त होता है। यह धारणा बहुत कुछ अरस्तू की इस धारणा के समान थी कि कुछ वस्तुयें अनिवार्य रूप से हल्की होती हैं। इस प्रकार रसायन शास्त्र ने भौतिक विज्ञान की सफलताओं की अवज्ञा कर तथ्यों और सिद्धान्तों का वर्णन फ्लाजिस्टन की सहायता से करने का प्रयत्न किया। अठारहवीं शताब्दी की उत्तरकालीन रासायनिक विचारधारा पर फ्लाजिस्टन सिद्धान्त का अप्रतिम प्रभुत्व रहा।

इसी बीच बहुत से नवीन पदार्थों का आविष्कार हुआ। आक्सीजन बोर्च द्वारा १६७८ में शोरा से प्राप्त की गई थी। १७२९ में हेल्स द्वारा वह पुनः तैयार की गई और पानी के ऊपर एकत्रित की गई। उस समय भी हेल्स का विचार था कि उसके द्वारा प्राप्त नवीन पदार्थ वायु था, जिसमें कोई और दूसरा पदार्थ मिला हुआ था। परन्तु १७५५ में एडिन्वर्ग निवासी जोसफ ब्लैक ने एक ऐसी गैस प्राप्त की जो हवा से सर्वथा भिन्न थी। उसने उस गैस को (स्थिर वायु) नाम दिया। यह वही गैस थी जिसे आज हम कार्बनडाइआक्साइड कहते हैं। १७७४ में शील ने क्लोरीन का आविष्कार किया। जोसफ प्रिस्टले (१७३३—१८०४) ने पारे के भस्म को गरम कर आक्सीजन तैयार किया। उसने यह भी मालूम किया कि इस नवीन गैस में जलती हुई वस्तुयें और अधिक

तीव्रता के साथ जलती हैं और जानवर अधिक सुविधापूर्वक स्वांस ले सकते हैं। १७८१ में कैवेन्डिश ने यह सिद्ध कर दिया कि जल दो पदार्थों के योग से बना है। इस प्रकार जल अंतिम रूप से मूल तत्वों की सूची से निकाल दिया गया। परन्तु कैवेन्डिश ने उन दोनों गैसों को जिन के संयोग से जल का निर्माण होता है, फ्लाजिस्टन और फ्लाजिस्टनरहित वायु नाम दिया था।

इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी में वैज्ञानिक रासायनिक तथ्यों का संग्रह कर रहे थे और भ्रमपूर्ण कल्पनाओं और सिद्धान्तों के निविड़ अन्धकार में अपना पथ खोज रहे थे। अंत में लवायशियर के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप इस कष्टकर यात्रा का अंत हुआ और वैज्ञानिक अपने को भ्रमजाल से निकालने में सफल हुए। लवायशियर (१७४३-१७९४) ने जो अपने विशेष धार्मिक विचारों के कारण मार डाला गया, प्रिस्टले और कैवेन्डिश के प्रयोगों को फिर से किया। प्रयोग के आरम्भ में लिये गए पदार्थों और प्रयोग के अंत में प्राप्त पदार्थों के वज़नों को उसने ठीक ठीक मालूम किया। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यद्यपि आरम्भ में लिये गए पदार्थों के रूपों और गुणों में परिवर्तन हो जाता है परन्तु हर हालत में आरम्भ में लिये गए पदार्थों के वज़नों का योग अन्त में प्राप्त पदार्थों के वजनों के योग के बराबर होता है। लवावसियर ने पाया कि जल का निर्माण करने वाली दोनों गैसें, जिन्हें उसने हाइड्रोजन और आक्सीजन नाम दिया, पदार्थ-मात्रा और वज़न से युक्त थीं। इस प्रकार ऋण-वज़न से युक्त फ्लाजिस्टन की भ्रामक धारणा से विज्ञान छुटकारा पा सका और गैलिलियो तथा न्यूटन के सिद्धान्तों का रासायनिक क्षेत्र में भी प्रवेश हुआ।

शरीर विज्ञान, प्राणीशास्त्र और वनस्पति विज्ञान—श्वास-क्रिया शरीर के किन आंतरिक अंगों को किस प्रकार प्रभावित करती है तथा इस क्रिया में और ज्वलन क्रिया में परस्पर क्या सम्बन्ध है, इन प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न सत्रहवीं शताब्दी में, विशेष कर ब्वायल, हुक, लोअर, और मेयो द्वारा किया गया। उन्होंने सिद्ध किया कि हवा

एक शुद्ध पदार्थ नहीं है बल्कि एक से अधिक पदार्थों का मिश्रण है। इनमें एक पदार्थ बहुत ही क्रियाशील है और वह श्वास क्रिया और ज्वलन क्रिया दोनों के लिए आवश्यक है। धातुयें जब जलती हैं तो वे इसी क्रियाशील पदार्थ का शोषण करती हैं और इस प्रकार उनके वज़न में वृद्धि हो जाती है। लोअर ने सिद्ध किया कि हलके गुलाबी रंग से गहरे लाल रंग में, रक्त हृदय में नहीं बल्कि फेफड़ों में परिवर्तित होता है, जहां वह वायु के सम्पर्क में आता है और उस क्रियाशील पदार्थ का शोषण करता है। परन्तु इन ठोस एवं विचारणीय तथ्यों की ओर लोगों का ध्यान तब तक आकर्षित नहीं हुआ जब तक अठारहवीं शताब्दी में प्रिस्टले और लवायशियर द्वारा कुछ महत्वपूर्ण रासायनिक तथ्यों का आविष्कार तथा उन तथ्यों का स्पष्टीकरण नहीं हुआ।

हम देख चुके हैं कि सिल्वियस ने हेल्मान्ट की इस धारणा का खण्डन किया कि शरीर का नियंत्रण एक संवेदनशील आत्मा द्वारा होता है। उसने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि शारीरिक क्रियाओं का सम्पादन उसी प्रकार की बुदबुदाहट द्वारा होता है जैसी बुदबुदाहट खड़िया के ऊपर गंधकाम्ल डालने से उत्पन्न होती है।

परन्तु अब धारा बिलकुल दूसरी ओर बह चली। स्टाल ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि जीवित शरीर की क्रियायें, साधारण रासायनिक क्रियाओं से मूलतः भिन्न प्रकार की होती हैं। शारीरिक क्रियायें एक ऐसी आत्मा द्वारा नियंत्रित होती हैं जो भौतिक विज्ञान और रसायन शास्त्र की सीमा के बाहर है। स्टाल आधुनिक जीववादियों (वाइटलिस्ट) का अग्रदूत था। परन्तु इन जीववादियों ने स्टाल की बहुत कुछ निश्चित 'संवेदनशील आत्मा' को एक अनिश्चित 'सजीव तत्व' में परिवर्तित कर दिया।

शरीर विज्ञान से सम्बन्धित इन प्रश्नों पर बोरहाव ने, जो आधुनिक युग का महान् चिकित्सक था, 'इन्स्टिट्यूशनिस मेडिका' (१७०८) में विचार किया। रक्त का दबाव सर्वप्रथम हेल्स द्वारा मालूम किया गया

जिसने रे द्वारा दिखाये मार्ग का अनुसरण करते हुए वृक्षों के भीतर पाये जाने वाले द्रव का भी दवाव मालूम करने का प्रयत्न किया।

अठारहवीं शताब्दी में अपनाई गई एक नवीन प्रथा महत्वपूर्ण है। इसके महत्वपूर्ण होने के कई कारणों में एक कारण यह है कि वह विशेष बीमारियों से बचाव प्राप्त करने की आधुनिक प्रणालियों की अग्रिम सूचना थी। १७१८ में श्रीमती मान्टेग्यू ने कुस्तुन्तुनियां से, चेचक का टीका लगाने की प्रथा का आरम्भ किया। एक आदमी के शरीर से जिसे हल्का चेचक निकल चुका था, पंछा लेकर दूसरे व्यक्तियों के शरीर में उसे प्रवेश करा दिया जाता था। इस प्रकार एक बहुत ही प्रचलित और भयंकर बीमारी का नियंत्रण सम्भव हुआ। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम काल में बेन्जामिन जेस्टी ने इस प्रचलित विश्वास के आधार पर कार्य आरम्भ किया कि दूध दूहनेवाली उन लड़कियों को, जिन्हें गायों वाला हल्का चेचक निकल आता है, फिर बड़ा चेचक नहीं निकलता। ऐसा प्रतीत होता है कि एडवर्ड जेनर ने, जो एक देहात का डाक्टर था, स्वतन्त्र रूप से इस विषय का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया और टीका लगाने की नवीन प्रणाली का आविष्कार करने में समर्थ हुआ। इस प्रणाली में बीमार व्यक्ति नहीं, बल्कि बीमार गाय के पंछे का टीका लगाया जाता है। इस प्रकार चेचक की बीमारी से ग्रस्त व्यक्ति के पंछे का टीका लगाने में जो खतरा था उसे मोल लिए बिना ही, चेचक के आक्रमण से बचाव पाना सम्भव हो सका।

ऐसा कहा गया है कि आधुनिक शरीर विज्ञान और उसके पहले के शरीर विज्ञान के बीच, १७४७ का वर्ष विभाजक रेखा है क्योंकि उसी वर्ष ऐल्बेट वान हालर (१७०८-१७७७) के महान् ग्रन्थ 'आरम्भिक शरीर विज्ञान' का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ का आठवां और अंतिम खण्ड, १७६५ में प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ में उसने शरीर सम्बन्धी तत्कालीन ज्ञान का बहुत अच्छे ढंग से वर्णन किया। उसने स्वयं श्वास-क्रिया, भ्रूण-विकास और मांसपेशियों की उत्तेजनशीलता

का अध्ययन किया। रोगों का निरीक्षण कर और जानवरों पर प्रयोग कर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि केवल तन्तुयें ही वाह्य उत्तेजनाओं से प्रभावित होती हैं। इसलिए ये तन्तुयें ही अनुभूति की साधन हैं। तन्तुयें मांसपेशियों को प्रभावित कर उन्हें संचालित करती हैं। इस प्रकार संचालन क्रिया की भी वे ही साधन हैं। सब तन्तुयें मस्तिष्क के केन्द्रीय भाग, 'मेडुला सेरेब्रो' में इकट्ठा होती हैं। जो संदेश तंतुओं द्वारा एकत्रित होकर मेडुला सेरेब्री तक आते हैं वे उसके द्वारा भी महसूस किये जाते हैं और उसी के (मेडुला)द्वारा मस्तिष्क तक पहुंचा दिये जाते हैं। वान हालर का विचार था कि तंतुयें एक विशेष द्रव से युक्त नलियां हैं और चूंकि अनुभूति और संचालन का स्रोत मस्तिष्क का केन्द्रीय भाग मेडुला है, इसलिए आत्मा भी मेडुला में ही निवास करती है।

इसी बीच राजकीय जन्तुशालाओं के लिए प्राप्त किए गये जानवरों की संख्याओं में बहुत वृद्धि हुई और बफ़न (१७०७-१७८८) ने 'जानवरों का प्राकृतिक इतिहास' नामक एक विस्तृत पुस्तक लिखी। उसके द्वारा किये गए जानवरों के श्रेणी विभाग में मनुष्य का एक विशेष स्थान था, परन्तु उसने कहा कि यदि बाइबिल में जानवरों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से एक निश्चित मत व्यक्त न किया गया होता तो यह सोचने के लिए कि घोड़ा और गधा, मनुष्य और बन्दर एक ही पूर्वज की सन्तान हैं, पर्याप्त प्रलोभन होता।

सूक्ष्मदर्शक यन्त्र ने जानवरों के अंगों की बनावट और क्रियाशीलता पर नवीन प्रकाश डाला और अगणित संख्याओं में पाये जाने वाले अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीवों और पौधों के अस्तित्व का उद्घाटन किया। प्राचीन और मध्य युग में लोगों का विश्वास था कि धूप और कीचड़ के संयोग से जीवित वस्तुयें अपने आप उत्पन्न हो जाती हैं जैसे मेंढक। परन्तु रेडी ने इस सम्बन्ध में संदेह प्रकट किया था। उसने दिखाया कि यदि मृत जानवर से प्राप्त एक मांस के टुकड़े को कीटाणुओं के सम्पर्क में न आने दिया जाय तो उसमें कीड़े नहीं पड़ सकते हैं।

रेडी के कार्य को स्पलांज़नी (१७२६-१७६६) ने दुहराया जिसने यह भी सिद्ध किया कि शोरबे को खौलाकर यदि इस प्रकार रख दिया जाय कि वह हवा के सम्पर्क में न आये, तो उसमें अत्यन्त सूक्ष्म आकार के कृमि भी उत्पन्न नहीं हो सकते।

सत्रहवीं शताब्दी में, विशेषकर ग्र्यू और मौल्पिगी द्वारा, पौधों के अध्ययन के लिए सूक्ष्मदर्शक यंत्र के प्रयोग के परिणामस्वरूप पौधों के गठन के सम्बन्ध में यथार्थ तथ्य मालूम होने लगे। १६७६ में ग्र्यू ने फूलों में पाये जाने वाले उन पतले डंठलों (स्टैमेन), जिनके सिर पर पुष्प-रज या पराग (पोलन) होता है, को पुरुष-लिंग के रूप में स्वीकार किया। सर्वप्रथम इस प्रकार की कल्पना करने का श्रेय उसने सर टामस मिलिंग्टन को प्रदान किया। औरों ने भी इस सम्बन्ध में कार्य किया। यह स्पष्ट हो गया कि यदि उपर्युक्त पतले डंठलों पर पराग का अभाव हो तो गर्भाधान या बीज निर्माण असम्भव हो जाता है।

डाक्टर सी० ई० रैवन द्वारा हाल में लिखित जान रे (१६२७-१७०५) की जीवनी से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने प्राणि शास्त्र और वनस्पति विज्ञान के विकास में बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया था। यही नहीं, वह प्रथम व्यक्ति था जिसने कीटाणु शास्त्र का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया। उसने विज्ञान और धर्म के पारस्परिक सम्बन्ध पर भी लिखा। उसने ट्रिनिटी कालिज केम्ब्रिज की सदस्यता और वहां के अन्य पदों को तिलांजलि दे दी, क्योंकि यद्यपि उसने प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर और चर्च से अपना सम्बन्ध-विच्छेद नहीं किया था, फिर भी वह एकरूपता कानून (ऐक्ट आव यूनिफार्मिटी) से सहमत नहीं था। उसने केम्ब्रिज छोड़ दिया और वह अपने जन्म-स्थान ब्लैक नाट्ले वापस चला आया। जानवरों और पौधों का अध्ययन करने और उनको तालिका बनाने के उद्देश्य से रे ने इंगलैंड के प्रांतों और यूरप के कुछ भागों का प्रायः फ्रैन्सिस विलग्बी के साथ, भ्रमण किया। उसके द्वारा लिखी गई पुस्तकों में से कुछ ये हैं, पौधों का इतिहास, कीटाणुओं का इतिहास

तथा जानवरों, पक्षियों, मछलियों और सर्पों से सम्बन्धित सूक्ष्म विवरण-पुस्तिकायें। पौधों से सम्बन्धित पुस्तकों में उसने पौधों के औषधीय गुणों की ओर विशेष ध्यान दिया।

फूल वाले पौधों में भ्रूणावस्था के बाद तत्काल एक पत्ती प्रकट होती है, जैसे घासों और कोईं में; या दो पत्तियां प्रकट होती हैं जैसे वृक्षों तथा अन्य बहुत-से पौधों में। एक पत्ती और दो पत्ती वाले पौधों के इस भेद का उपयोग रे ने फूल वाले पौधों को दो बड़े समूहों में विभक्त करने में किया। उसने सभी विशेषताओं—फल, फूल, पत्ती आदि— को दृष्टि में रखते हुए अन्य प्रकारों से भी श्रेणी-विभाजन प्रथा में बहुत सुधार किया, जिससे वास्तविक प्राकृतिक समानता वाले पौधों को एक समूह में रखना सम्भव हो सका। जहां तक जानवरों का सम्बन्ध है, रे ने केवल उनकी बाहरी विशेषताओं का ही अध्ययन नहीं किया बल्कि तुलनात्मक दृष्टि से उनकी शारीरिक रचनाओं का भी अध्ययन किया। उसने प्रस्तर-अवशेषों (प्राचीन पौधे या जानवर जो प्रस्तर अवस्था में चट्टानों या पृथ्वी में पाये जाते हैं) की भी परीक्षा की और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ये अवशेष प्राचीन काल के समुद्रीय जानवरों और मछलियों की हड्डियां हैं। उस काल की विचारधारा को ध्यान में रखते हुए यह निष्कर्ष बहुत ही क्रान्तिकारी था क्योंकि उस समय लोग इन अवशेषों को या तो एक प्रकार की अस्पष्ट प्राकृतिक 'लचीली शक्ति' का परिणाम या प्रलयकालीन जल के हट जाने के बाद पृथ्वी-तल पर पीछे छूट जाने वाला कीचड़ समझते थे।

उसने जादू और टोने का खण्डन किया। घटनाओं का स्पष्टीकरण अंधविश्वासों द्वारा नहीं, बल्कि निरीक्षण द्वारा मालूम किये गए प्राकृतिक कारणों द्वारा करने का उसने प्रयत्न किया। रे के दार्शनिक विचारों की झांकी उसकी पुस्तक 'सृष्टि के कार्यों में ईश्वर की बुद्धिमत्ता' में मिलती है। इस पुस्तक में रे ने, जो एक जीव शास्त्री था, न्यूटन और उसके अनुयायियों के विचारों का, जो आकाश शास्त्रवेत्ता थे, समर्थन

किया है। ये विचारक आगस्टाइन से लेकर लूथर तक बार-बार जन्म लेने वाली इस धारणा का अन्त करने में सफल हुए कि प्रकृति और धर्म में परस्पर विरोध हो या न हो, परन्तु उनमें परस्पर कोई सम्बन्ध तो नहीं ही है और प्रकृति का सौन्दर्य केवल मन के लिये एक प्रलोभन तथा उसका अध्ययन केवल समय का अपव्यय है। परन्तु रे लिखता है :

'प्रकृति के सौन्दर्यपूर्ण कार्यों पर विचार करने एवं ईश्वर की अनन्त बुद्धिमत्ता और सौम्यता के प्रति सम्मान प्रकट करने से बढ़कर, समय व्यतीत करने का और कोई साधन नहीं है।'

व्यवस्थित वनस्पति शास्त्र के क्षेत्र में लिनियस (१७०७–१७७८) ने, रे का अनुगमन किया। प्रत्येक पौधे को दो नाम देने की सुविधा पूर्ण प्रणाली का उसने सूत्रपात किया। उसने लिंग के अनुसार पौधों को विभिन्न श्रेणियों में रखने की प्रणाली की भी स्थापना की। यह प्रणाली तब तक प्रचलित रही जब तक इसका स्थान आधुनिक पद्धति ने न ले लिया। नवीन पद्धति के अनुसार, विकासवाद और रे की धारणाओं के प्रकाश में सब विशेषताओं का अध्ययन करने के बाद प्राकृतिक दृष्टि से समान पौधों को एक समूह में रखने का प्रयत्न किया जाता है। लिनियस ने मनुष्यों की विभिन्नताओं पर भी विचार किया। विकास की दृष्टि से, वनमानुष की एप, लीमर और चमगादड़ ये तीन जातियाँ हैं। लिनियस ने मनुष्यों को इन उपर्युक्त तीन प्रकार के वनमानुषों से मिलता-जुलता बताया। रंग तथा अन्य भिन्नताओं को दृष्टि में रखते हुए उसने मनुष्य जाति को चार समूहों में विभाजित किया।

बहुत अंश तक रे के कार्य से प्रभावित और उत्साहित होकर गिल्बर्ट ह्वाइट (१७२०–१७९३) ने अपने निवास-स्थान हैम्प्शायर के आस-पास पाये जाने वाले पौधों और जानवरों का अध्ययन करने के बाद १७८९ में अपना प्रसिद्ध साहित्यिक ग्रंथ 'सेल्बोर्न का प्राकृतिक इतिहास' प्रकाशित किया। अंग्रेज़ों के हृदय में देहात और देहाती जीवन के प्रति अनुराग उत्पन्न करने में रे और ह्वाइट का बहुत बड़ा हाथ रहा है।

गिल्बर्ट ह्वाइट से लेकर एड्वर्ड ग्रे तक यह अनुराग स्पष्ट रूप से अधिकांश लेखकों की रचनाओं को सौन्दर्य प्रदान करता रहा है।

अभाग्यवश इस समय वैज्ञानिकों और उन उद्यान लगाने वालों तथा जानवरों को पालने वालों के बीच जो दो जातियों के योग और उचित चुनाव द्वारा नये प्रकार के पौधे और जानवर उत्पन्न कर रहे थे, विशेष सम्पर्क नहीं था। बाग़वानी में निपुण व्यक्ति अच्छी तरह जानते थे कि दो भिन्न प्रकार के पौधों के योग से सहसा एक पूर्णतया भिन्न प्रकार का पौधा उगाया जा सकता है। जहाँ तक जानवरों का सम्बन्ध है बैकवेल ने चुनाव द्वारा बड़े सींग वाले पशुओं और लीसेस्टर की भेड़ों में सुधार किया। कोलिंग बन्धुओं ने छोटे सींग वाले पशुओं की प्रसिद्ध नस्ल की स्थापना की। इन लोगों की उपर्युक्त जानकारी जीवशास्त्रियों के लिये वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुई होती।

भूगोल और भूगर्भ विज्ञान—सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में संसार के विभिन्न भागों का भौगोलिक अन्वेषण, वैज्ञानिक ढंग और सुचारु रूप से आरम्भ हुआ। प्रथम व्यक्ति, जो आकाश-विद्या सम्बन्धी निश्चित तथ्यों को मालूम करने के लिये समुद्र पार के प्रदेशों में भेजा गया, जीन रिचर था। चौदहवें लुई के प्रसिद्ध मंत्री कोल्बर्ट की प्रेरणा से वह १६७२–७३ 'समुद्र यात्रा के लिये उपयोगी आकाशीय निरीक्षणों के लिए' फ्रान्सीसी गायना गया। मुख्य समस्यायें, जिन्हें उसे हल करना था, ये थीं:—सूर्य और ग्रहों की गतियाँ, आवर्त्तन, (रिफ्रैक्शन) और पैरालक्स (पृथ्वी की कक्षा-त्रिज्या के दोनों सिरों को किसी नक्षत्र से मिलाने वाली रेखाओं के बीच का कोण)। सूर्य से, विभिन्न ग्रहों की दूरियों का परस्पर अनुपात मालूम था। उपर्युक्त समस्यायें यदि हल की जा सकें तो ग्रहों की, सूर्य से वास्तविक दूरियाँ भी मालूम की जा सकती थीं। रिचर के निरीक्षणों का एक असाधारण परिणाम था सूर्य, वृहत्तर ग्रहों और सूर्य-परिवार के विशाल आकारों का उद्घाटन। पृथ्वी और उस पर निवास करने वाले मानव की क्षुद्रता का भण्डाफोड़ हो गया।

रिचर द्वारा मालूम किये गये तथ्यों तथा पिकार्ड द्वारा मालूम किये गए पृथ्वी के व्यास के नवीन और अपेक्षाकृत अधिक यथार्थ परिमाण का आकाश सम्बन्धी ज्ञान की यथार्थता की वृद्धि में बहुत हाथ रहा।

कुछ वर्षों बाद विलियम डैम्पियर (१६५१--१७१५) कुछ आरम्भिक यात्राओं के पश्चात् जमैका गया और विवश होकर कुछ काल तक उसे समुद्री डाकुओं के साथ यात्रा करनी पड़ी। उसने प्रशान्त महासागर को पार किया और सुमात्रा और मद्रास होता हुआ वह इंगलैण्ड वापस आ गया। वह यात्रा के समय दैनिक विवरण लिखता रहा और १६६७ में उसने यात्रा सम्बन्धी एक पुस्तक प्रकाशित की जिसे आशातीत सफलता मिली। १६६८ में वह समुद्री बेड़ा विभाग द्वारा 'रोयबक' नामक जहाज़ का प्रधान संचालक नियुक्त किया गया और उसे भौगोलिक अन्वेषण के लिए (नवीन हालैण्ड) अर्थात् आस्ट्रेलिया जाने का आदेश दिया गया। जहाज़ छोटा और बुरी हालत में था। घर लौटते समय वह असेन्शन द्वीप के पास डूब गया। वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए इंगलैण्ड से आयोजित यह प्रथम समुद्री यात्रा थी। डैम्पियर ने केवल प्राकृतिक भूगोल, पौधों और जानवरों से सम्बन्धित निरीक्षणों को ही यथार्थता के साथ अंकित नहीं किया बल्कि उसने समुद्र, जलवायु और पृथ्वी-चुम्बकत्व से सम्बन्धित ज्ञान की भी अभिवृद्धि की।

डैम्पियर को यात्रा सम्बन्धी पुस्तकों की देखादेखी यात्रा सम्बन्धी साहित्य की बाढ़ सी आ गई। डेफ़ो कृत 'राबिन्सन क्रूसो' और स्विफ्ट रचित 'गुलिवर की यात्राएँ' यात्रा साहित्य की आरम्भिक प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। डैम्पियर, कैबट और अन्य यात्रियों की यात्राओं ने विशेषकर फ्रान्स में बौद्धिक विकास को प्रोत्साहन प्रदान किया। इन यात्राओं ने काल्पनिक 'यूटोपियन' आदर्श द्वीपों के सम्बन्ध में रचना करने के लिए लेखकों को प्रेरणा प्रदान की। अपनी वास्तविक सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं और प्रथाओं से ऊबे हुए लेखक ऐसे द्वीपों की कल्पना से शांति और संतोष प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे जिनकी सामाजिक और राजनीतिक

व्यवस्थाएँ पूर्णतया निर्दोष और स्वाभाविक थीं। इंगलैण्ड में 'अदन के उद्यान' की दंतकथा, इस धारणा के विकास में सहायक सिद्ध हुई कि प्राचीन काल के मनुष्य आजकल के लोगों से अच्छे थे और सभ्यता के अंचल से दूर आज का 'जंगल-निवासी मानव' सभ्य मानव से कहीं अच्छा है। यद्यपि यह धारणा नितान्त भ्रमपूर्ण थी परन्तु आगे चलकर विभिन्न मानव जातियों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए इसने प्रेरणा प्रदान की।

इस प्रकार अन्वेषण की ओर लोगों की दिलचस्पी बढ़ती गई। रायल सोसायटी के अनुरोध से समुद्री बेड़ा विभाग द्वारा १७६८ में 'एन्डेवर' नामक जहाज़ का प्रधान संचालक बनाकर, जेम्स कुक (१७२८–१७७९) दो वैज्ञानिकों, बैन्क्स और सोलैन्डर, के साथ दक्षिणी प्रशान्त महासागर में टैहिटी नामक स्थान पर विनस (शुक्र ग्रह) का याम्योत्तरागमन (सूर्य के सामने से होकर गमन) मालूम करने के लिए भेजा गया। कुक की बाद वाली यात्राएँ जो दक्षिण ध्रुवीय महासागर के बीच एक महाद्वीप ढूंढने के उद्देश्य से की गई थीं, इस दृष्टि से निष्फल सिद्ध हुईं परन्तु वैज्ञानिक महत्व की अन्य सूचनाएँ तथा आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड के समुद्रतटों एवं प्रशान्त महासागर के सम्बन्ध में नवीन ज्ञान प्रदान करने में वे सफल हुईं। प्रथम यात्रा में पचासी मनुष्यों में से तीस, मुख्यतया स्कर्वी रोग (एक रोग जो फलों की कमी के कारण हो जाता है) के कारण मरे परन्तु बाद वाली यात्रा में ११८ व्यक्तियों में से केवल एक व्यक्ति मरा। कुक और उसके डाक्टर ने कई आवश्यक बातों की ओर ध्यान दिया। उन्होंने यात्रियों के लिए नीबू और नारंगी तथा, जब कभी भी मिल सकी, शुद्ध खाद्य सामग्री का प्रबन्ध किया।

इस बीच वैज्ञानिक और कलात्मक दोनों दृष्टियों से समुद्री यात्रा में बहुत सुधार हो चुका था। दोपहर के समय आकाश में सूर्य की ऊंचाई का निरीक्षण कर किसी स्थान का अक्षांश बहुत आसानी से मालूम किया

जा सकता था। परन्तु देशान्तर तभी मालूम किया जा सकता था जब न्यूटन के चन्द्र-सिद्धान्त द्वारा चन्द्रमा की स्थिति के सम्बन्ध में भविष्य-वाणी की जा सके। परन्तु जब जॉन हैरिसन ने दो भिन्न धातुओं के असमान फैलाव द्वारा, तापक्रम में परिवर्तन के कारण उत्पन्न अवांछित प्रभाव को नष्ट कर घड़ियों का सुधार कर दिया, तब देशान्तर को भी यथार्थता और सरलतापूर्वक मालूम करना सम्भव हो गया। इन घड़ियों द्वारा प्रत्येक जहाज़ पर ग्रीनविच का समय मालूम किया जा सकता था और आकाशीय घटनाओं से इस समय की तुलना की जा सकती थी।

पृथ्वी के सम्बन्ध में बढ़ते हुए इस ज्ञान ने स्वभावतः लोगों का ध्यान पृथ्वी की बनावट और उसके इतिहास की ओर अर्थात् भूगर्भ-विद्या की ओर आकर्षित किया। १७२८ में जॉन वुड्वर्ड द्वारा केम्ब्रिज विश्वविद्यालय को प्रदान की गई उसकी संग्रहीत वस्तुओं से यह बात बहुत अंश तक स्पष्ट हो गई कि प्रस्तर अवशेष, जैसा कि लेयोनार्डो, रे तथा अन्य बहुत-से वैज्ञानिक पहले ही कह चुके थे, प्राचीन काल के जानवरों और पौधों के चिह्न हैं। १६७४ में पेरो ने सिद्ध कर दिया था कि पृथ्वी पर होने वाली वर्षा, नदियों और झरनों के बहाव का स्पष्टीकरण करने के लिए पर्याप्त है। गेटार्ड ने इस बात की ओर संकेत किया कि ज़लवायु का प्रभाव, बहुत बड़े पैमाने पर पृथ्वी के वाह्य रूप को परिवर्तित करता रहता है। परन्तु मानव मस्तिष्क बाइबिल द्वारा समर्थित इस धारणा से मुक्ति नहीं पा सका था कि अग्नि या बाढ़ द्वारा असाधारण प्राकृतिक घटनाएँ अकस्मात् घटित होती हैं; जलवायु के प्रभाव से धीरे-धीरे नहीं।

जेम्स हटन ने, जो स्काट्लैण्ड में एक भू-स्वामी और कृषक था, देश और विदेश की भूमियों का अध्ययन करने के पश्चात् १७८५ में 'पृथ्वी सिद्धान्त' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें उसने यह दिखाया कि समुद्रों, नदियों और झीलों में चट्टानों की तहों का निर्माण और इन तहों के बीच प्रस्तर अवशेषों का सुरक्षण आज भी जारी है। 'इस उपर्युक्त क्रिया के सम्पादन में ऐसी किसी भी शक्ति का प्रयोग नहीं

होता जो पूर्णतया प्राकृतिक नहीं है; इस क्रिया का नियंत्रण उन्हीं सिद्धान्तों और नियमों द्वारा होता है जिनसे हम पूर्णतया परिचित हैं।' हटन का ऐसा विश्वास था और उसका यह विश्वास 'हटन का समरूप सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध है। यह सिद्धान्त बहुत हद तक ठीक है, परन्तु यह कहना कठिन है कि यह पृथ्वी की सब आरम्भिक तहों और चट्टानों की बनावट का स्पष्टीकरण करने में समर्थ है।

हटन के बाद विलियम स्मिथ ने विभिन्न चट्टानों की आपेक्षिक आयुओं का निर्धारण उनके भीतर पाये जाने वाले प्रस्तर अवशेषों का निरीक्षण कर, किया। प्रस्तर अवशेषों के रूपों से, वर्तमान काल के जानवरों की तुलना कर क्यूवियर प्राचीन काल के प्रस्तर अवशेषों के आधार पर, लुप्त हुए जानवरों की आकृतियों की कल्पना करने में समर्थ हुआ। इस प्रकार उसने यह स्पष्ट कर दिया कि जीवों के विकास का अध्ययन करने के लिये यह आवश्यक है कि हम भूत और वर्तमान दोनों को दृष्टि में रखें।

मशीनें:—अठारहवीं शताब्दी का सबसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार वाष्प इंजिन था, जिसने उन्नीसवीं शताब्दी में आवागमन के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इंजिन की ईजाद और तत्पश्चात् उसका सुधार दोनों प्रयोग और अनुभव के परिणाम थे। यह नहीं कहा जा सकता कि इंजिन की ईजाद, वैज्ञानिक सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने का फल थी। प्रथम व्यावहारिक स्थिर वाष्प इंजिन का निर्माण न्यूकोमेन ने किया, स्मीटन ने उसमें सुधार किया। यह इंजिन मुख्यतया कार्निश की खानों से पानी बाहर निकालने के लिये काम में लाया जाता था। इन आरम्भिक इंजिनों में मुख्य दोष यह था कि प्रत्येक झटके (स्ट्रोक) के बाद वाष्प सिलिंडर को ठंडा करना पड़ता था और ऐसा करने में शक्ति का बहुत अपव्यय होता था। यह इंजिन पर्याप्त उपयोगी केवल तब हुआ जब १७७७ में जेम्स वाट ने भाप को जल में परिवर्तित करने वाले एक और सिलिंडर का प्रयोग किया जो सर्वदा ठंडा रखा जाता था। शीघ्र वह

क्रैन्क और शाफ्ट द्वारा, सीधी रेखा वाली गति को चक्राकार गति में परिवर्तित करने में सफल हुआ। पांव से चलाई जाने वाली बहुत सी नौकाओं ने आगामी शताब्दी के वाष्प जहाज़ों की घोषणा की। अपेक्षाकृत अच्छे ढंग की पक्की सड़कों के कारण, स्थल-यात्रा सुगम हो गई। इन सड़कों पर सवारी के घोड़ों का स्थान तीव्रगामी बग्गियाँ ले रही थीं और बोझा ढोने वाले घोड़ों का स्थान अच्छे बने हुए माल के डब्बे ले रहे थे।

विभिन्न पदार्थों की दृढ़ता की नाप के कारण भवन निर्माण का कार्य सुगम हो गया। रासायनिक ज्ञान की वृद्धि के कारण वस्तुओं को रंगने और उनके रंगों को हटाने की क्रियाओं में सुधार सम्भव हो सका। कपड़ा बुनने वाली मशीनों में भी बहुत सुधार हुआ। भूमि खंडों को घेरने की प्रथा के कारण कृषि की उन्नति हुई, क्योंकि इस प्रथा का परिणाम यह हुआ कि किसी भूमि खण्ड में लगातार एक ही अन्न उगाने के बजाय, जैसा कि प्राचीन काल में किया जाता था, लोग एक के बाद दूसरा अन्न उगाने की आधुनिक प्रणाली को अपनाने लगे। हलों में भी सुधार हुआ। फसलों को काटने वाले एक पुराने हथियार को जिसका उपयोग कुछ काल से नहीं हो रहा था, फिर से काम में लाने का प्रयत्न किया गया। जेथ्रो टल ने कतारों में बीज बोने के लिए एक यंत्र का निर्माण किया।

उपर्युक्त वर्णन निश्चय ही पूर्ण नहीं है। हमने केवल अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण प्रगतियों में से कुछ का वर्णन किया है। अठारहवीं शताब्दी में जीवन की कलाओं का विकास अनेक दिशाओं में हुआ। परन्तु ये परिवर्तन, यद्यपि महान् थे, परन्तु क्रान्तिकारी नहीं थे। इंगलैंड का रूप बदला अवश्य, परन्तु वह विकृत नहीं हुआ।

सातवाँ अध्याय

उन्नीसवीं शताब्दी का भौतिक विज्ञान और रसायन शास्त्र

वैज्ञानिक युग—उन्नीसवीं शताब्दी, कम-से-कम जहां तक इस पुस्तक में वर्णित विषयों का सम्बन्ध है, पिछली सब शताब्दियों से, पूर्णतया भिन्न थी। इस भिन्नता का रहस्य उस परिवर्तन में निहित है जो विज्ञान और उद्योग-धंधों के परस्पर संबंध में उन्नीसवीं शताब्दी में घटित हुआ। उस समय तक जीवनोपयोगी कलाओं में सुधार और नये यंत्रों और औजारों का निर्माण बिना विज्ञान की सहायता के ही स्वतन्त्र रूप से किया जाता था। अधिक-से-अधिक ये सुधार और नये यंत्र विज्ञान को आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करते थे या विज्ञान के सम्मुख हल करने के लिए कुछ समस्यायें उपस्थित करते थे। ऐसे उदाहरणों की संख्या, जहां उपयोगी कलाओं ने विज्ञान का अनुगमन किया, जैसे समुद्र-यात्रा से सम्बन्धित सुधारों में, बहुत कम है। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में ऐसे उदाहरणों की भरमार है। विद्युत सम्बन्धी वैज्ञानिक ज्ञान के कारण तार का आदान-प्रदान सम्भव हो सका; विद्युत्-चुम्बकत्व के क्षेत्र में फैराडे द्वारा किये गए प्रयोगों ने डायनमो और विद्युत्-इंजिनियरिंग का मार्ग प्रशस्त कर दिया। मैक्सवेल के विद्युत्-चुम्बकीय समीकरणों ने, जिनके सम्बन्ध में लगभग पचास वर्ष तक प्रयोग होते रहे, अन्ततोगत्वा बिना तार के ही विश्व के एक कोने के व्यक्ति को उसके दूसरे कोने में स्थित व्यक्ति के सम्पर्क में क्षणमात्र में ला दिया। ये उदाहरण विज्ञान के केवल एक विभाग से उपस्थित किये गए हैं। अन्य

विभागों से भी ऐसे ही अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। सच पूछिये तो उन्नीसवीं शताब्दी से ही वैज्ञानिक युग का आरम्भ होता है।

स्वयं विज्ञान ने, विशेषकर भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान के क्षेत्र में, महान प्रगति की। इन दोनों विज्ञानों की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्धित आविष्कारों और तथ्यों के स्पष्टीकरण एक दूसरे के इतने अनुकूल थे कि स्वभावतः उन वैज्ञानिक धारणाओं और सिद्धान्तों की सत्यता में आस्था उत्पन्न हो गई, जिनके आधार पर इन तथ्यों और आविष्कारों का स्पष्टीकरण सम्भव हो सका। ऐसा सोचा जाने लगा कि वैज्ञानिक सिद्धान्त की मुख्य-मुख्य बातें निश्चित, निर्विवाद एवं अन्तिम रूप से मालूम कर ली गई हैं और अब वैज्ञानिकों के सम्मुख कोई प्रधान कठिनाई या कार्य नहीं है। अब उन्हें इत्मीनान के साथ केवल ऐसे साधनों को प्रस्तुत करना है जिनकी सहायता से वे विभिन्न राशियों का परिमाण अधिक यथार्थता के साथ अर्थात् दशमलव के और अगले स्थानों तक मालूम कर सकें। इससे जो समय बचे उसे वे तेजो-वाही ईथर की प्रकृति के सम्बन्ध में किसी विश्वसनीय सिद्धान्त के प्रति-पादन करने में व्यय कर सकते हैं। परन्तु १८९५ के बाद ए किरणों, (एक्स रेज़) इलेक्ट्रान, क्वैन्टा और अपेक्षा-सिद्धान्त ने भौतिक विज्ञान में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। यह स्पष्ट हो गया कि न्यूटन और उन्नीसवीं शताब्दी का भौतिक विज्ञान आकार और वेग की कुछ विशेष सीमाओं के भीतर ही सत्य है। परमाणु से भी सूक्ष्मतर कणों के आकारों और प्रकाश-वेग की बराबरी करने वाले वेगों का अध्ययन एवं विवेचन पुरानी धारणाओं द्वारा नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के अध्ययन के लिये एक व्यापक सिद्धान्त की आवश्यकता अनुभव की गई। प्राचीन सिद्धांत, जो केवल बड़े आकार और मन्द वेग-वाले पदार्थ-पिण्डों के अध्ययन के लिए ही उपयुक्त था, इस व्यापक सिद्धान्त का एक विशेष रूपमात्र सिद्ध हुआ।

परिमाणमूलक विज्ञान के विकास के लिए, निश्चित इकाइयों की

आवश्यकता है। वज़न और अन्य नापों की विषम व्यवस्था का स्थान, जिससे ब्रिटेन आज भी ग्रस्त है, फ्रान्स में एक युक्तिसंगत दशमलव व्यवस्था ने ग्रहण किया। १७९१ में आरम्भ होकर १७९९ तक इस सम्बन्ध में आवश्यक कानून बन गये। १८२० से यह व्यवस्था अनिवार्य कर दी गई परन्तु इसे पूर्ण सफलता नहीं मिली।

लम्बाई की इकाई 'मीटर,' पृथ्वी की परिधि के चतुर्थांश का दशलाखवां भाग था परन्तु व्यवहार में यह एक धातु की छड़ पर बनाये गए दो चिह्नों के बीच की दूरी है। किलोग्रैम एक घन मीटर जल का वज़न था परन्तु व्यवहार में यह १७९९ में तैयार किये गए प्लैटिनम-इरिडियम के एक टुकड़े का वज़न है। एक सेकण्ड, दिन का $\frac{१}{८६४००}$ भाग है। यद्यपि उपर्युक्त लम्बाई और वज़न की इकाइयां अपनी परिभाषा के अनुसार पूर्णतया ठीक नहीं हैं फिर भी साधारण कार्यों के लिये वे बहुत हद तक उपयुक्त हैं।

१८७० के आसपास वैज्ञानिक नापों के लिये अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सेंटीमीटर (एक मीटर का शतांश), ग्रैम (एक किलोग्रैम का सहस्रांश) और सेकण्ड, क्रम से लम्बाई, वज़न और समय की इकाइयां स्वीकृत किये गए। इसे इकाइयों की सी. जी. एस. पद्धति कहते हैं।

इन इकाइयों के आधार पर अन्य इकाइयां भी निर्धारित की गईं। वेग की इकाई एक सेंटीमीटर प्रति सेकण्ड और उसका घात (डाइमेंशन) $\frac{ल}{स}$ (ल = लम्बाई, स = समय) है। वेग वृद्धि (एक्सलरेशन) और बल (फोर्स) के घात क्रम से $\frac{ल}{स^2}$ और $\frac{म \times ल}{स^2}$ (म = पदार्थ मात्रा) हैं। बल की इकाई डाइन उस बल के बराबर है जो एक ग्रैम पदार्थ मात्रा में इकाई वेग वृद्धि उत्पन्न कर सकता है। बल और लम्बाई के गुणनफल को शक्ति (एनर्जी) कहते हैं। इसकी इकाई, अर्ग और उसका घात

$\frac{\text{म ल}^{३}}{\text{स}^{२}}$ है। इसी तरह गाउस द्वारा विद्युत् और चुम्बक की इकाइयाँ भी निश्चित की गईं।

ताप और शक्ति—ताप की वैज्ञानिक धारणा हमारी ज्ञानेन्द्रियों की अनुभूति पर निर्भर है और तापक्रम मापक यंत्र की सहायता से हम ताप की अवस्था मालूम कर सकते हैं। गैलिलियो ने सर्वप्रथम तापमापक यंत्र की ईजाद की और अमान्टन्स ने इस यंत्र के निर्माण में प्रथम-प्रथम पारे का प्रयोग किया। फारन्हाइट, रीमर और सेल्सियस ने विभिन्न स्केलों का प्रयोग किया। शराब की भट्टियों में किये कए निरीक्षणों ने इस बात की ओर संकेत किया कि ताप भी एक प्रकार की राशि है जिसका परिमाण मालूम किया जा सकता है। परन्तु सर्वप्रथम जोसफ ब्लैक (१७२८–१७९९) ने ताप और तापक्रम के भेद को स्पष्ट किया। उसने ताप को परिमाण-मूलक और तापक्रम को अवस्था बोधक बतलाया। उसने हिम के पानी और पानी के वाष्प में परिवर्तित होने की क्रिया का अध्ययन किया और पाया कि यद्यपि प्रत्येक परिवर्तन में ताप की पर्याप्त मात्रा का शोषण होता है परन्तु तापक्रम में वृद्धि नहीं होती है। इन परिवर्तनों में ताप, जैसा उसने कहा, गुप्त-सा रहता है। विभिन्न पदार्थों की समान मात्राएँ समान तापक्रम वृद्धि के लिए ताप की भिन्न-भिन्न मात्राओं का शोषण करती हैं। इस तथ्य को उसने प्रत्येक पदार्थ के लिये एक 'निश्चित ताप' (स्पेसिफिक हीट) निर्धारित कर स्पष्ट किया। उसने यह भी दिखाया कि ताप की मात्राओं को किस प्रकार 'तापमापक पात्र' की सहायता से नापा जा सकता है।

इन प्रयोगों के स्पष्टीकरण के लिए एक ऐसे सिद्धान्त की आवश्यकता थी जो इस बात पर ज़ोर दे कि ताप परिमाणमूलक है और एक वस्तु से दूसरी वस्तु तक जाने में ताप-मात्रा में किसी प्रकार की क्षति नहीं होती। यद्यपि कैवेन्डिश, ब्वायल और न्यूटन ने ताप की कल्पना वस्तु-

कणों की गति के रूप में की थी परन्तु यह दृष्टिकोण स्थायी रहने वाली ताप-मात्रा की धारणा को जन्म न दे सका था। इस धारणा की अपेक्षा यह धारणा कि ताप एक अदृश्य, सूक्ष्म और बिना वज़न का द्रव है जो स्वतन्त्रतापूर्वक और बिना किसी बाधा के कणों के बीच से होकर प्रवाहित हो सकता है, कहीं अधिक उपयुक्त थी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक यह धारणा वैज्ञानिकों को अच्छी तरह सहायता देती रही। यह इस बात का प्रमाण है कि कभी-कभी विज्ञान की उन्नति ऐसी असत्य कल्पनाओं द्वारा भी हो सकती है जो तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ हों।

द्रव सिद्धान्त के समर्थकों ने घर्षण द्वारा उत्पन्न ताप का स्पष्टीकरण यह कहकर किया कि रगड़ी हुई वस्तु का, चाहे वह बुरादा हो, या शेष बचा हुआ मुख्य पदार्थ पिण्ड हो, 'निश्चित ताप' अपेक्षाकृत कम होता है। इसलिए ताप मानो निचुड़कर बाहर आ जाता है। यद्यपि अमेरिका के बेन्जामिन टाम्प्सन ने, जो बवेरिया में काउन्ट रम्फर्ड के नाम से प्रसिद्ध हुआ, बन्दूक के कुन्दों को छेदने से सम्बन्धित प्रयोगों द्वारा १७९८ में यह सिद्ध कर दिया था कि ताप की मात्रा किये गए कार्य के अनुसार कम या अधिक होती है और उसका बुरादे के परिमाण से कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी उसका यह महत्त्वपूर्ण कार्य या तो भुला दिया गया या उपेक्षित रहा, और द्रव सिद्धान्त फलता-फूलता रहा।

परन्तु १८४० तक यह स्पष्ट हो चुका था कि प्रकृति की कुछ शक्तियाँ परस्पर परिवर्तन शील हैं। यह मानकर कि जब हवा दबाई जाती है तो इस क्रिया में किया गया सारा कार्य ताप के रूप में प्रकट होता है, जे० आर० मेयर ने यह गणना की कि ताप की इकाई मात्रा उत्पन्न करने के लिये कितना कार्य आवश्यक है। सर डब्ल्यू० आर० ग्रूव ने, जो न्यायाधीश और वैज्ञानिक था, भौतिक शक्तियों के परस्पर सम्बन्ध के विषय में लिखा। जर्मनी के महान् गणितज्ञ एवं भौतिक विज्ञान और शरीर विज्ञान वेत्ता वान हेल्महोल्ट्ज़ (१८२१–१८९४) ने भी इस सम्बन्ध में एक

पुस्तक प्रकाशित की। इस प्रकार शक्तियों के परस्पर सम्बन्ध की चर्चा से वायुमण्डल व्याप्त हो रहा था।

१८४० और १८५० के बीच जूल (१८१८-१८८९) यांत्रिक और विद्युत् कार्यों द्वारा उत्पन्न ताप का परिमाण मालूम करने का प्रयत्न करता रहा। बहुत-से प्रयोगों को करने के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि किसी भी प्रकार से कार्य किया जाय, एक निश्चित मात्रा के कार्य द्वारा एक निश्चित मात्रा में ताप उत्पन्न होगा। आधा सेर पानी को एक फारन्हाइट डिग्री गरम करने के लिए जितने ताप की आवश्यकता है उतना ताप ७७२ फुट पाउण्ड कार्य द्वारा उत्पन्न होता है। आगे चलकर पाया गया कि ठीक मात्रा, ७७८ फुट पाउण्ड है।

यंग ने इस बात की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया कि 'शक्ति' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है, जिससे कठिनाई होती है। इस कठिनाई को रैन्किन और विलियम टाम्सन (लार्ड केल्विन १८२४-१९०७) ने दूर कर दिया। उन्होंने 'शक्ति' शब्द का प्रयोग बल से भिन्न एक विशेष अर्थ में किया। कार्य करने की क्षमता को उन्होंने शक्ति कहा। यदि यह क्षमता पूर्ण रूप से कार्य में परिवर्तित हो जाय तो कार्य की मात्रा ही शक्ति का परिमाण होगी। जूल के प्रयोगों से यह स्पष्ट हो गया कि आस-पास के वातावरण से पूर्णतया असम्पर्क अवस्था में स्थित किसी वस्तु-समूह की शक्ति-मात्रा निश्चित होती है; जो शक्ति, कार्य के रूप में लुप्त होती है, वह ताप के रूप में प्रकट होती है। इस प्रकार 'शक्तियों के परस्पर सम्बन्ध' की बहुत-कुछ अस्पष्ट धारणा, 'शक्ति-अक्षुणता' के निश्चित सिद्धान्त के रूप में अवतीर्ण हुई।

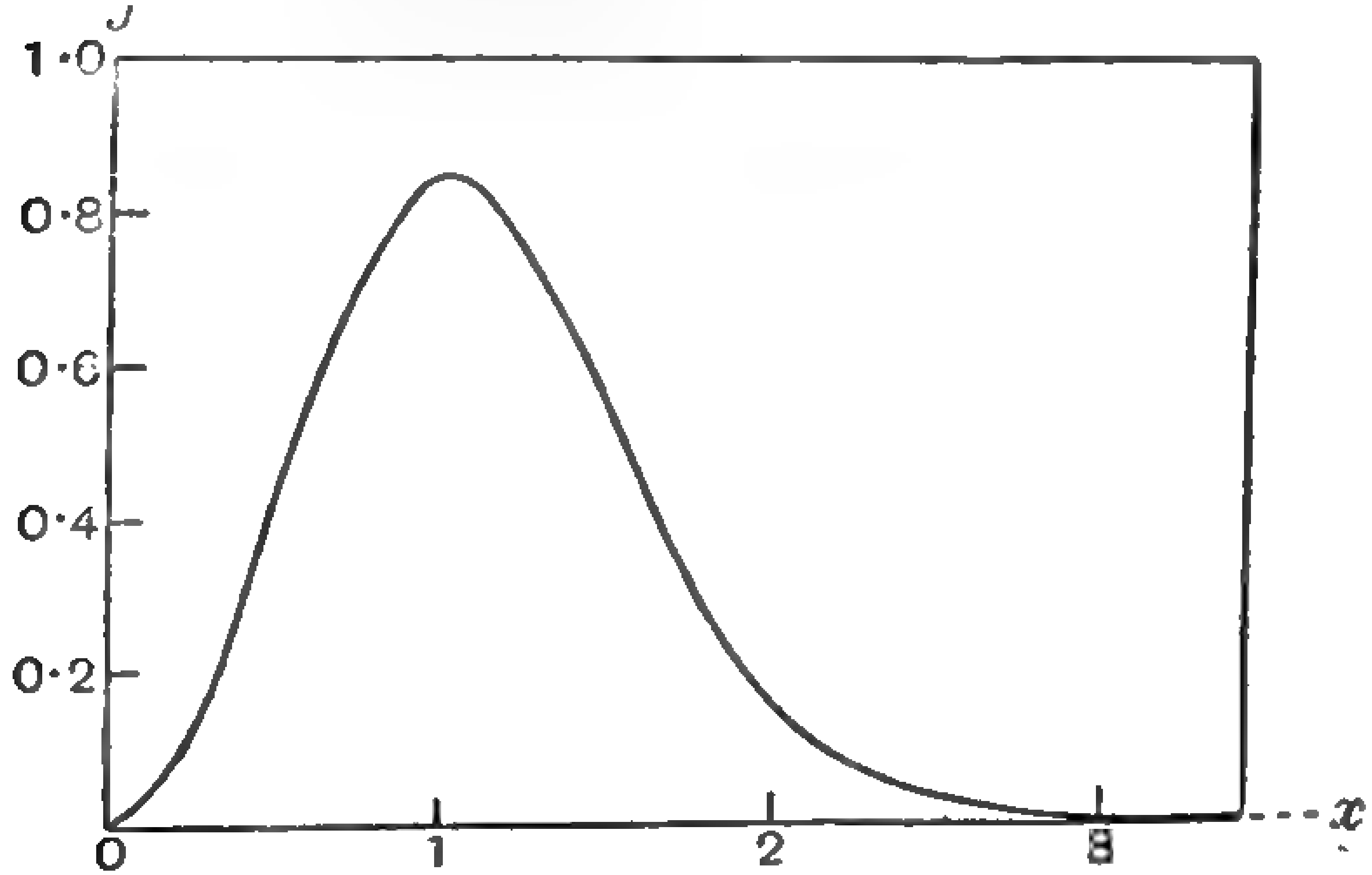
इस परिणाम की तुलना न्यूटन के गति विज्ञान और लवायशियर के रसायन विज्ञान में प्रतिपादित 'पदार्थ की अक्षुणता' से करना अप्रासंगिक न होगा। जब हम एक नये विज्ञान की स्थापना के उद्देश्य से असम्बद्ध घटनाओं और क्रियाओं के जाल में व्यवस्था और नियमितता लाने का प्रयत्न करते हैं तो वे राशियां जो इस अक्षुणता गुण से युक्त

हैं, निश्चय ही हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं। हम इन राशियों का प्रयोग, तथ्यों के स्पष्टीकरण के लिए करते हैं, जैसे पदार्थ मात्रा का प्रयोग गति विज्ञान और रसायन विज्ञान में किया जाता है। अपेक्षाकृत पुराने भौतिक विज्ञान की सीमा के भीतर,जब हम कार्य और ताप के सम्बन्धों का अध्ययन करते हैं तो विशेषकर अपनी 'अक्षुणता' के ही कारण एक दूसरी राशि हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। इसे हम शक्ति कहते हैं। इस प्रकार हम 'शक्ति अक्षुणता' को 'ताप-गति विज्ञान' के प्रथम नियम के रूप में स्वीकार करते हैं और उसे 'पदार्थ मात्रा की अक्षुणता' की श्रेणी में रखते हैं। यह एक महान् आविष्कार था परन्तु यह अहितकर सम्भावनाओं से मुक्त नहीं था। कुछ लोग सोचने लगे कि पदार्थ का कभी विनाश नहीं होता; वह अनादि और अनन्त है। इसी प्रकार उनका विश्वास था कि ब्रह्माण्ड में शक्ति की मात्रा निश्चित है। इन सिद्धान्तों को जो प्रयोगात्मक विज्ञान के विकास में विश्वसनीय पथ प्रदर्शक थे ऐसे दार्शनिक सिद्धान्तों का रूप दे दिया गया जिनकी सत्यता सन्देह से परे नहीं थी। आगे चलकर हम कुछ ऐसे तथ्यों को पायेंगे जिनके स्पष्टीकरण के लिए इन विषयों पर एक नवीन दृष्टिकोण की आवश्यकता अनुभव की गई है।

यदि ताप, शक्ति का एक रूप है जैसा कि जूल के प्रयोगों से स्पष्ट हो गया तो यह अणुओं (मालिक्यूल्स) की गति में निहित है। इस 'चल सिद्धान्त' (काइनेटिक थियरी) के सम्बन्ध में बर्नोली वाटर्स्टन और जूल ने भी विचार किया था परन्तु इसकी सम्यक् व्याख्या प्रथम-प्रथम १८५७ में क्लासियस द्वारा की गई।

निरन्तर चलायमान् अणुओं का एक दूसरे से टकराना अवश्यम्भावी है। इसका अर्थ यह है कि ये अणु प्रत्येक दिशा में प्रत्येक वेग से चलते हुये पाये जा सकते हैं। जूल ने अणुओं के औसत वेग की गणना की। हाइड्रोजन गैस के लिये यह १८४४ मीटर (एक मील से अधिक) और आक्सीजन के लिये ४६१ मीटर प्रति सेकण्ड है। परन्तु मैक्स्वेल और

बोल्ट्ज़मैन ने अणुओं के वेगों के अध्ययन के लिये एक विशेष नियम का, जो 'अयथार्थता का नियम' के नाम से प्रसिद्ध है, प्रयोग किया। इस नियम का प्रतिपादन लैप्लास और गाउस ने पास्कल के सम्भावना सिद्धान्त के आधार पर किया था। दो निश्चित वेगों के बीच वाले वेगों से युक्त अणुओं की संख्या मर्मचित्र द्वारा व्यक्त की जाती है। रेखा, क्ष, वेग को और रेखा, य, उस वेग से चलायमान अणुओं की संख्या को व्यक्त करती है। चित्र से स्पष्ट है कि अधिकतम सम्भव वेग-परिमाण से, जहाँ अणुओं की संख्या अधिकतम है, दोनों ओर, अणुओं की संख्या बड़ी शीघ्रता से कम होने लगती है। अयथार्थता की रेखा तथा इसके अन्य परिवर्द्धित रूप, विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में बहुत महत्त्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध हुए हैं। किसी विशेष अणु के वेग या किसी विशेष व्यक्ति की पूर्ण आयु के सम्बन्ध में भविष्य वाणी करना असम्भव है, परन्तु यदि अणुओं या मनुष्यों की संख्या पर्याप्त हो, तो हम बहु-



दोष रेखा

संख्यक प्रणाली द्वारा यह बतला सकते हैं कि कितने अणु एक निश्चित अवधि वाले वेग से युक्त होंगे या कितने मनुष्यों की मृत्यु किसी एक वर्ष में होगी। इस प्रकार, बहुसंख्यक क्षेत्र में निर्धारणवाद, परन्तु व्यक्तिगत क्षेत्र में अनिश्चितवाद स्वीकार करने के लिये हम विवश हैं।

मैक्स्वेल और बोल्ट्ज़्मैन ने दिखाया कि चल सिद्धान्त के अनुसार किसी अणु की सम्पूर्ण शक्ति उसको 'स्वतंत्रता-संख्याओं' (डिग्रीज़-ऑव फ्रीडम) में समान रूप से विभक्त होनी चाहिये। स्वतंत्रता संख्याओं से अभिप्राय उन नियामक (कोआर्डिनेट) संख्याओं से है जो अणु की स्थिति और अवस्था निश्चित करने के लिये आवश्यक हैं। इससे यह निष्कर्ष निकला कि एक परमाणु वाली गैसों के, जिनकी स्वतंत्रता संख्या तीन होती है, स्थायी दबाव और स्थायी आयतन वाले निश्चित तापों का अनुपात १·६७, परन्तु दो परमाणु वाली गैसों के, जिनकी स्वतंत्रता संख्या पांच होती है, स्थायी दबाव और स्थायी आयतन वाले निश्चित तापों का अनुपात १·४ होगा। यह अनिवार्य निष्कर्ष प्रयोगों की कसौटी पर पूर्णतया खरा उतरा।

ब्वायल का नियम, जिसके अनुसार किसी गैस का आयतन दबाव बढ़ने से कम होता है, इस प्रकार लिखा जा सकता है—

$द \times आ = र \times ता$ ($द = दबाव$, $आ = आयतन$, $ता = तापक्रम$), यदि तापक्रम स्थायी न रखा जाय। ऊँचे दबाव या निम्न तापक्रम पर गैसें इस आदर्श नियम का पालन नहीं करतीं। अणुओं का परस्पर आकर्षण, जो घनत्व के वर्ग या आयतन के उत्क्रम वर्ग $\left(\frac{१}{आ^{२}}\right)$ पर निर्भर है, दबाव को द से $\left(द + \frac{अ}{आ^{२}}\right)$ कर देगा और स्वयं अणुओं द्वारा घेरा हुआ आयतन, ब, परिवर्तित होने वाले आयतन को आ से (आ — ब) कर देगा। इस प्रकार वान डर वाल्स ने १८७३ में निम्नांकित समीकरण की प्रतिष्ठा की—

$\left(द + \frac{अ}{आ^{२}} \right)$ (आ − ब) = र×ता (अ, ब और र स्थायी संख्यायें हैं।) १८६६ के आस पास ऐन्ड्रयूज़ ने गैसीय और द्रवीय अवस्थाओं की अविरतता (कन्टिनिविटी) का अध्ययन कर यह मालूम किया कि चरम (क्रिटिकल) तापक्रम के ऊपर, जो प्रत्येक गैस के लिये भिन्न-भिन्न परिमाण का होता है, कोई गैस द्रव अवस्था में नहीं परिवर्तित की जा सकती, चाहे उसके ऊपर कितना भी दवाव डाला जाय। द्रवीकरण की समस्या का हल यह है कि गैस को उसके चरम तापक्रम से नीचे के किसी तापक्रम पर लाया जाय। इस तथ्य के मालूम होते ही एक गैस के बाद दूसरी गैस द्रव अवस्था में परिवर्तित की जाने लगी। १८६८ में डिवार ने हाइड्रोजन को द्रव अवस्था में ला दिया। कैमर्लिङ्ग ओन्स ने १६०८ में हीलियम गैस को भी द्रव में परिवर्तित कर दिया। हीलियम ने सबसे बाद में हथियार डाला।

ताप-गति-विज्ञान—ताप और शक्ति सम्बन्धी अध्ययन का विस्तार स्वभावतः, ताप-इंजिनों के नियमों को मालूम करने के लिये किया गया। प्रजातन्त्रवादी फ्रान्स के 'विजय युद्ध के नेता' के पुत्र साडी कार्नोट ने १८२४ में एक सरलतम तथा आदर्श इंजिन की कल्पना की जिसमें घर्षण या ताप-चालन (कन्डक्शन) द्वारा ताप का अपव्यय नहीं होता। उसने कल्पना की कि इंजिन एक पूर्ण चक्र से होकर गुज़रता है और कार्य करने वाला पदार्थ, वाष्प, वायु या अन्य कोई पदार्थ, अपनी आरम्भिक अवस्था में पुनः आ जाता है। कार्नोट का सिद्धान्त क्लासियस और विलियम टाम्सन द्वारा अपने वर्तमान रूप में विकसित किया गया। टाम्सन ने दिखाया कि ऐसे सभी आदर्श इंजिनों की सामर्थ्य (एफ़िशियेन्सी) समान होती है चाहे उनकी बनावट कैसी भी हो और उनमें कार्य करने वाला पदार्थ कोई भी हो। यह सामर्थ्य केवल ताप प्रदान करने वाले श्रोत के तापक्रम, त, और ठंडा करने वाले पात्र के तापक्रम त′ पर निर्भर है। इस प्रकार हम एक काल्पनिक आदर्श इंजिन का प्रयोग तापक्रम की परि-

भाषा करने के लिये कर सकते हैं। इस परिभाषा के अनुसार त और त′ का अनुपात वही है जो ह और ह′ का। ह वह तापमात्रा है जो स्रोत से ली जाती है और ह′ वह तापमात्रा है जो ठंडा करने वाले पात्र को दी जाती है।

इस प्रकार टाम्सन तापक्रम का एक ताप-गति मूलक या परम (एब्सल्यूट) स्केल मालूम करने में समर्थ हुआ। यदि सम्पूर्ण ताप, कार्य में परिवर्तित कर दिया जाय तो त′ शून्य हो जाता है और हम एक ऐसे परम शून्य तापक्रम को पाते हैं जिससे नीचे किसी वस्तु को ठंडा नहीं किया जा सकता। टाम्सन और जूल ने १८०७ में गे लुसाक द्वारा किये गए एक प्रयोग को और अच्छे ढंग से करके यह सिद्ध कर दिया कि जब कोई गैस बिना कार्य किये ही फैलती है तो उसके तापक्रम में बहुत ही कम परिवर्तन होता है। इस प्रयोग से यह स्पष्ट हो गया कि तापक्रम की उपर्युक्त आदर्श स्केल, बहुत कुछ वायु या हाइड्रोजन तापमापक यंत्र की स्केल के समान है जो बहुत आसानी से निर्धारित की जा सकती है।

जब तापशक्ति और अन्य शक्तियों में आदर्श अवस्था के अन्तर्गत भी परस्पर रूप परिवर्तन होता है, तो ताप तप्त वस्तुओं से ठंडी वस्तुओं में प्रवाहित होता है। साधारण व्यवहारिक अवस्था में तो चालन और विकरीण क्रियाओं द्वारा भी ताप का अपव्यय होता है। तथ्य ताप गति विज्ञान के द्वितीय नियम को व्यक्त करने के लिये विभिन्न प्रकार से वर्णित किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ 'एक ठंडी वस्तु से एक अधिक गरम वस्तु तक ताप अपने आप नहीं जा सकता'। इसका अर्थ यह हुआ कि एक ऐसे वस्तु-समूह में, जो अपने आस-पास की वस्तुओं से पूर्णतया पृथक् हो, उपयोगी कार्य के लिये, ताप का क्रमशः अभाव होता जायगा। इस क्रिया को 'शक्ति का अपव्यय' कहा गया। क्लासियस ने इसे एक दूसरे रूप में व्यक्त किया। उसने दिखाया कि एक गणित मूलक राशि, जिसे उसने 'एन्ट्रापी' नाम दिया, सर्वदा अपने परिमाण को बढ़ाने का प्रयत्न करती रहती है। जब उसका परिमाण

अपनी उच्चतम अवस्था पर पहुँच जाता है तो पृथक् अवस्था में स्थित वस्तु-समूह (सिस्टम) समतुलित (इक्विलिब्रियम) हो जाता है। इन परिणामों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि अन्ततोगत्वा ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण शक्ति, ताप-शक्ति में परिवर्तित हो जायगी और ताप समान रूप से इस प्रकार वितरित हो जायगा कि प्रत्येक वस्तु का तापक्रम समान हो जायगा। ब्रह्माण्ड एक प्रकार से मृत अवस्था में पहुँच जायगा और इस मृत ब्रह्माण्ड में ताप शक्ति से अन्य प्रकार की शक्तियों की उत्पत्ति असम्भव हो जायगी। निश्चय ही यह एक बहुत ही साहसपूर्ण और व्यापक निष्कर्ष है परन्तु आगे चलकर हम देखेंगे कि नवीन आविष्कारों के कारण इस निष्कर्ष में संशोधन करना आवश्यक हो गया है। परन्तु उस समय भी मृत ब्रह्माण्ड की अप्रिय संभावना से त्राण पाने का एक मार्ग क्लर्क मैक्सवेल (१८३१–१८७९) ने ढूँढ निकाला। उसने इस बात की ओर संकेत किया कि एक काल्पनिक 'दानव' की सहायता से, जो अणुओं को एक-एक कर देखने में समर्थ हो, और एक-एक कर उनका नियंत्रण करने की शक्ति से युक्त हो, समान रूप से वितरित ताप को असमान रूप से वितरित किया जा सकता है और इस प्रकार कार्य-सम्पादन के लिये शक्ति प्राप्त की जा सकती है। यह दानव एक घर्षणहीन द्वार के पास खड़ा रहे। अधिक वेग वाले अणु जब द्वार के पास आवें तो वह द्वार खुला रहने दे और उन्हें दूसरी ओर निकल जाने दे परन्तु जब मंद गति वाले अणु द्वार के निकट आवें तो वह द्वार को बन्द कर दे, जिससे वे द्वार के इसी ओर रह जाँय। इस प्रकार द्वार के एक ओर मन्द गति वाले अणु रह जायेंगे और दूसरी ओर तीव्र गति वाले अणु। चूँकि तापक्रम अणुओं के वेग पर निर्भर होता है इसलिये एक ओर अधिक तापक्रम होगा और दूसरी ओर कम। इस अवस्था में ताप, यांत्रिक शक्ति में परिवर्तित होकर उपयोगी कार्य कर सकता है।

विलियर्ड गिब्स ने १८७७ में समीकरणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि वह वस्तु-समूह जिसका तापक्रम स्थायी होता है साम्य (इक्विलिब्रि-

यम) अवस्था में तब पहुँचता है जब उसका ताप-गति विभव (थर्मोडायनैमिक पोटन्शियल) न्यूनतम होता है। गिब्स के इस सिद्धान्त से ताप-गति विज्ञान की प्रगति में बहुत सहायता मिली।

गुप्त-ताप (लैटन्ट हीट) का ताप क्रम, दबाव और आयतन से क्या सम्बन्ध है यह एक समीकरण द्वारा प्रकट किया जा सकता है। इस समीकरण, एन्ट्रापी और तापगति विभव की धारणाओं द्वारा भौतिक एवं रासायनिक साम्य को एक दृढ़ आधार पर स्थापित करना सम्भव हो सका है। किसी वस्तु समूह की विभिन्न कलाओं (फ़ेज़ेज) के साम्य का वर्णन एक विशेष नियम द्वारा किया जाता है जिसे कला नियम कहते हैं।

प्रकाश का तरंग-सिद्धान्त—इस धारणा से सम्बन्धित कुछ कठिनाइयों को यंग (१७७३-१८२६) ने दूर किया कि ईथर में उत्पन्न तरंग समूह ही प्रकाश है। एक दीपक से आती हुई प्रकाश किरणें जब एक पर्दे के दो बहुत पतले छिद्रों में से होकर निकलती हैं और एक दूसरे पर्दे पर फिर मिलती हैं तो वे उज्वल और काली धारियां बनाती हैं। यंग ने इस प्रकार बनी हुई धारियों का अध्ययन किया। यदि एक तरंग को दूसरी तरंग से एक तरंग दैर्घ्य (वेभ लेन्थ) की आधी दूरी अधिक तै करनी पड़े तो जहां पहली तरंग का शीर्ष (क्रेस्ट) होगा वहां दूसरी तरंग का पाद (ट्रफ) होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि वहां तरंग का प्रभाव नष्ट हो जायगा और उस स्थान पर काली धारी दिखाई देगी। उपकरण (एपरेटस) और धारियों के विस्तार के आधार पर उसने तरंगों की लम्बाई मालूम की। ये लम्बाइयां एक इंच के पचास सहस्त्रवें भाग के लगभग थीं। स्पष्ट है कि इन तरंगों की लम्बाइयां प्रकाश का अवरोध करने वाली साधारण वस्तुओं के आकारों की तुलना में बहुत ही कम हैं। गणित द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि यदि अवरोधक वस्तुओं का आकार भी तरंगों की लम्बाइयों की ही भांति बहुत छोटा हो, तभी प्रकाश किरणें मुड़ सकती हैं अन्यथा वे सीधी रेखा में चलती हुई प्रतीत होंगी।

हुक ने इस बात की ओर संकेत किया था कि प्रकाश तरंगों के कम्पन की दिशा प्रकाश किरणों के पथ से समकोण बनाती है। यंग और फ्रेस्नेल (१७८८-१८२७) ने इस संकेत की सम्भावनाओं पर विचार किया। किरणों के पथ से समकोण बनाते हुये समतल (प्लेन) में प्रकाश का कम्पन बहुत ही जटिल होता है। परन्तु सम-ध्रुवित (प्लेन पोलरा-इज़्ड) प्रकाश में कम्पन, सरल रेखाओं से होता है। ध्रुवन दर्शक (पोला-रिस्कोप) से होकर एक सम ध्रुवित किरण जा सकती है परन्तु दूसरी किरण जो पहली किरण से समकोण बनाती हुई ध्रुवित हुई हो, नहीं जा सकती। फ्रेस्नेल, ग्रीन, मैकुला, काची, स्टोक्स तथा अन्य विज्ञान वेत्ता-ओं ने तरंग सिद्धान्त को अच्छी तरह विकसित किया। वे ऐसे प्रयोग करने में सफल हुए जिनके परिणाम तरंग सिद्धान्त के बहुत ही अनुकूल थे।

तरंगों के संवाहन के लिये एक माध्यम (मिडियम) की आवश्यकता अनुभव की गई और उसके लिये ईथर की कल्पना की गई। तरंगों के अनुप्रस्थ (ट्रैन्स्वर्स) कम्पन के लिये ईथर का दृढ़ता के गुण से सम्पन्न होना आवश्यक था। दृढ़तायुक्त ठोस के रूप में, ईथर की कल्पना को सत्य सिद्ध करने के लिये बहुत से सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया। परन्तु उन सब सिद्धान्तों को इस कठिनाई का सामना करना पड़ा कि यदि ईथर दृढ़ और ठोस है तो ग्रह बिना किसी बाधा के आकाश में कैसे घूमते रहते हैं। परन्तु जब मैक्स्वेल ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रकाश की तरंगे विद्युत्-चुम्बक-परक हैं तब ईथर के ठोस और दृढ़ होने की आवश्यकता जाती रही। सच पूछिये तो ईथर का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया।

वर्णपट-विश्लेषण (स्पेक्ट्रम अनैलिसिस)—गैलिलियो और न्यूटन ने यह सिद्ध किया कि सूर्य परिवार के सब पिण्डों (ग्रह आदि) का नियंत्रण गति सम्बन्धी नियमों से होता है। ये नियम सब पिण्डों पर

समान रूप से लागू होते हैं। यह स्वाभाविक था कि विज्ञानवेत्ता यह दिखाने का प्रयत्न करते कि सब पिण्डों की बनावट भी एक सी है। परन्तु इस प्रयत्न में सफलता मिलने की कोई आशा नहीं प्रतीत होती थी।

१७५२ में मेल्विल ने देखा कि ऐसी लौ (फ्लेम) के प्रकाश को एक सम-पार्श्व (प्रिज़्म) के भीतर से ले जाने पर, जिसमें किसी धातु के कण हों, जो वर्णपट मिलता है उसमें कुछ विशेष रंग की रेखायें होती हैं। १८२३ में हर्शल ने यह सुझाव रखा कि ऐसे वर्णपटों का उपयोग धातुओं की पहचान के लिये किया जा सकता है। इसका परिणाम यह हुआ कि वर्णपट के अध्ययन और निरीक्षण का कार्य आरम्भ हो गया और वर्णपटीय रेखाओं के सम्बन्ध में बहुत से तथ्य मालूम किये गये। वर्णपट विश्लेषण के परिणाम स्वरूप बहुत सी नई बातें मालूम हुईं। कई नये तत्वों का पता चला। यह विश्लेषण हमारे आधुनिक परमाणु सिद्धान्त के समर्थन में कई सबल प्रमाण प्रस्तुत करने में भी सफल हुआ है।

१८०२ में वोलैस्टन ने सूर्य के वर्णपट में कई काली रेखाओं को देखा। १८१४ में फ्रान्हाफर भी उन्हें देखने में समर्थ हुआ और उसने सावधानी के साथ उनका स्थान निर्धारण किया। फ्रोकाल्ट, बन्सन और कर्चाफ ने स्वतन्त्र रूप से, इस तथ्य का उद्घाटन किया कि यदि पूर्ण उज्वल प्रकाश एक ऐसी लौ से होकर जाय जिसमें सोडियम हो तो उससे जो वर्णपट प्राप्त होता है उसमें 'डी' नामक कृष्ण रेखा दिखाई देती है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि सूर्य के वर्णपट में 'डी' कृष्ण रेखा क्यों दिखाई देती है। सूर्य के भीतरी भाग से आने वाला प्रकाश जब सूर्य को घेरे हुए ठंडे गैस मंडल से निकलता है तो उसका (प्रकाश का) सोडियम-प्रकाश, गैस मंडल हरण कर लेता है। इससे सिद्ध होता है कि सूर्य के गैस मंडल में सोडियम धातु, गैस के रूप में वर्तमान है। इसी प्रकार यह सिद्ध कर दिया गया है कि बहुत से तत्व जो पृथ्वी पर

पाये जाते हैं, सूर्य और नक्षत्रों में भी वर्तमान हैं। यही नहीं, एक तत्व हीलियम के अस्तित्व का पता पहले सूर्य में चला। बाद में उसे पृथ्वी पर भी ढूँढ निकाला गया। स्टोक्स के कथनानुसार कृष्ण रेखायें अनुनाद (रेज़ोनैन्स) क्रिया की उदाहरण हैं। एक वस्तु जिन कम्पनों को जन्म देती है उनका शोषण या हरण भी कर सकती है। यदि एक ध्वनि प्रसारित करने वाली वस्तु सुनने वाले की ओर आये तो उस ध्वनि की आवृत्ति (फ्रिक्वेन्सी) बढ़ जाती है। परन्तु यदि वह वस्तु सुनने वाले से दूर जाय तो आवृत्ति घट जाती है। इस तथ्य को 'डाप्लर प्रभाव' कहते हैं। इसी के आधार पर यह मालूम करना सम्भव हो सका है कि नक्षत्र किस वेग से पृथ्वी की ओर आ रहे हैं या उससे दूर जा रहे हैं। सूर्य से आने वाली रश्मियों का केवल अल्प भाग ही दिखाई देने वाले वर्णपट में होता है। शेष भाग इस वर्णपट के दोनों ओर दूर तक फैला होता है यद्यपि हमें दिखाई नहीं देता। इसका पता विशेष उपकरणों से लगाया गया है। दृश्य वर्णपट के एक ओर उपरक्त (इन्फ्रा रेड) वर्णपट और दूसरी ओर नीललोहितोत्तर (अल्ट्रा-वायलेट) वर्णपट होता है। उपरक्त वर्णपट में ताप-किरणें होती हैं और नीललोहितोत्तर वर्णपट में रासायनिक प्रभाव उत्पन्न करने वाली किरणें होती हैं।

वर्णपट केवल सम पार्श्व से ही उत्पन्न नहीं होता। ग्रेटिंग (एक कांच का टुकड़ा या धातु दर्पण जिस पर बहुत पास-पास समानान्तर रेखायें खिंची होती हैं) से भी वह उत्पन्न हो सकता है। यदि प्रकाश किरणें उपयुक्त कोण बनाती हुई ग्रेटिंग पर गिरें, तो ग्रेटिंग वर्णपट उत्पन्न करने में समर्थ होता है।

मैक्स्वेल ने गणित द्वारा यह मालूम किया था कि प्रकाश किरणों के किसी स्थान पर पड़ने से उस स्थान पर एक हल्का दबाव पड़ना चाहिये। प्रयोगों द्वारा मैक्स्वेल की उपर्युक्त भविष्यवाणी सत्य सिद्ध की जा सकी है। आकाशीय पिण्डों से सम्बन्धित भौतिक विज्ञान के अध्ययन के लिये यह तथ्य बहुत महत्व का सिद्ध हुआ है। इसके कारण तापगति विज्ञान

का उपयोग विकीरण क्रिया (रैडियेशन) के अध्ययन के लिये करना सम्भव हो सका। इस प्रकार के अध्ययन से यह प्रकट हुआ कि एक कृष्ण वस्तु का विकीरण, उसके परम (ऐब्सलूट) तापक्रम के चौथे घात के अनुपात में होता है। इस तथ्य को प्रयोगों द्वारा स्टिफैन ने पहले ही मालूम कर लिया था। इन सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक परिणामों के आधार पर सूर्य के ऊपरी सतह का तापक्रम मालूम किया जा सकता है। इसके लिये हमें केवल यह मालूम करना पड़ेगा कि इस सतह से प्रति सेकण्ड कितना ताप विकीरित होता है।

धारा विद्युत्—अठारहवीं शताब्दी में, घर्षण द्वारा प्राप्त स्थिर विद्युत् के सम्बन्ध में बहुत से प्रयोग किये गये। बेन्जामिन फ्रैंक्लिन तथा दूसरों ने यह सिद्ध कर दिया कि घर्षण द्वारा प्राप्त कृत्रिम विद्युत् प्रत्येक दृष्टि से मेघ-विद्युत् के समान है। यह भी मालूम किया गया कि कुछ पदार्थ विद्युत्-चालक होते हैं और कुछ पदार्थों में से होकर विद्युत् संचालित नहीं हो सकती। कूलम्ब, प्रिस्टले और कैवेन्डिश ने यह भी सिद्ध कर दिया कि दो विद्युत् आवेशित वस्तुओं के या दो चुम्बकों के बीच आकर्षण या प्रतिसारण (रिपल्शन) उन वस्तुओं के बीच की दूरी के वर्ग के अनुपात में कम होता जाता है। गाउस ने विद्युत् आकर्षण सम्बन्धी उपर्युक्त नियम तथा गुरुत्वाकर्षण के आधार पर एक व्यापक गणित-मूलक नियम का प्रतिपादन किया जिसे उत्क्रम वर्ग (इन्वर्स स्क्वायर) नियम कहते हैं। विद्युत् से सम्बन्धित राशियों की इकाइयों की वैज्ञानिक परिभाषा के लिये भी हम गाउस के ऋणी हैं। उदाहरणार्थ, उसने विद्युत् आवेश की इकाई की परिभाषा इस प्रकार की—यदि दो समान आवेश एक दूसरे से एक सेन्टीमीटर की दूरी पर हों और वे एक दूसरे को एक 'डाइन' (बल की इकाई) बल से प्रतिसारित करें तो उनमें से प्रत्येक की आवेश-मात्रा इकाई होगी। यदि आवेशों के बीच वायु की जगह कोई और माध्यम हो तो वे एक दूसरे को कम बल से आकर्षित या प्रतिसारित करेंगे। माध्यम का वैद्युतागम्य अंक (डायलेक्ट्रिक

कान्स्टैन्ट) जितना ही अधिक होगा बल में उतनी ही कमी होगी। यही बातें चुम्बक के सम्बन्ध में भी सत्य हैं।

गैल्वानी के एक प्रयोग के आधार पर वोल्टा ने १८०० में यह तथ्य मालूम किया कि यदि एक पात्र में हल्का अम्ल लिया जाय और उस में ताम्र और जस्ता की दो पट्टियाँ रखी जांय तो उन पट्टियों को एक तार से मिलाने पर तार में एक विशेषता आ जाती है। वोलस्टन ने सिद्ध किया कि यह विशेषता तार में विद्युत धारा के प्रवाहित होने से आ जाती है। इस विद्युत धारा में, स्थिर विद्युत की अपेक्षा विद्युत् की मात्रा अधिक होती है परन्तु तनाव (टेन्शन) कम होता है। निकल्सन और कार्लिज़ल ने प्रयोग द्वारा दिखाया कि यह विद्युत् धारा जब जल में से होकर प्रवाहित होती है तो आक्सीजन और हाइड्रोजन गैसें जल में से निकलने लगती हैं। यह जल की यौगिक प्रकृति का एक नया और सबल प्रमाण, और विद्युत्-रसायन के क्षेत्र में प्रथम प्रयोग था। विद्युत् और रसायन शास्त्र के पारस्परिक सम्बन्ध के इस ज्ञान ने लोगों को इस दिशा में अपनी कल्पना से काम लेने के लिये बहुत प्रोत्साहित किया। बर्ज़िलियस ने यह विचार प्रकट किया कि प्रत्येक यौगिक पदार्थ (कम्पाउण्ड) की रचना दो भागों के संयोग से होती है। एक भाग धन विद्युत् और दूसरा ऋण विद्युत् से आवेशित होता है। इन भागों को आयन कहते हैं। १८०७ में सर हैम्फरी डेवी (१७७८--१८२६) ने सोडा और पोटाश का विच्छेद किया और क्रम से सोडियम तथा पोटेशियम नामक दो महत्वपूर्ण धातुओं को उनसे अलग किया। पहले सोडा और पोटाश को मूलतत्व माना जाता था और इसलिये उनका विच्छेद असम्भव समझा जाता था। चूँकि विच्छेदन क्रिया द्वारा प्राप्त पदार्थ केवल विद्युद्वार (इलेक्ट्रोड) पर प्रकट होते थे इसलिये ग्रोथस और क्लासियस ने यह कल्पना की कि धन और ऋण विद्युत से आवेशित आयन लड़ियों में व्यवस्थित होते हैं। प्रत्येक लड़ी एक विद्युद्वार से दूसरे विद्युद्वार तक होती है और उसमें बहुत से आयन होते हैं। लड़ी में आयनों की

व्यवस्था, धन के बाद ऋण और ऋण के बाद धन इस प्रकार होती है। लड़ी के दोनों सिरों पर के आयन विरुद्ध आवेशों से युक्त होते हैं और वे ही मुक्त होते हैं।

विद्युत् के क्षेत्र में दूसरी उल्लेखनीय महान् प्रगति माइकेल फैराडे (१७६१–१८६७) द्वारा सम्भव हुई। वह रायल इन्स्टीट्यूशन की प्रयोग शाला में डेवी का सहायक रह चुका था। उसने ह्वेवेल की सलाह से १८३३ में एक नवीन पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जो आज भी प्रचलित है—विद्युत् विच्छेदन (इलेक्ट्रालिसिस), आयन, धन विद्युद्वार (एनोड) ऋण विद्युद्वार (कैथोड) आदि। वह विद्युत्-रसायन विषयक ज्ञात सब तथ्यों का समावेश दो सरल नियमों में करने में सफल हुआ। प्रथम नियम के अनुसार विद्युत्- विच्छेदन क्रिया द्वारा प्राप्त पदार्थ की मात्रा विद्युत् की प्रबलता और समय के अनुपात में होती है अर्थात् द्रव में से होकर प्रवाहित होने वाली विद्युत् की सम्पूर्ण मात्रा के अनुपात में होती है। दूसरे नियम के अनुसार विभिन्न पदार्थों की मात्रायें उनके रासायनिक तुल्यांक वज़नों (इक्विवैलन्ट वेट) के अनुपात में होती हैं। उदाहरणार्थ, जब एक ऐम्पियर विद्युत् किसी अम्लीय घोल में एक सेकण्ड तक प्रवाहित होती है तो $१\cdot०४४ \times १०^{-४}$ ग्राम हाइड्रोजन मुक्त होता है परन्तु उस घोल से जिसमें चांदी का कोई लवण घुला हुआ हो, ·००१११८ ग्राम चाँदी मुक्त होती है। चांदी का वज़न आसानी से मालूम किया जा सकता है और उसका उपयोग धारा विद्युत् की व्यावहारिक इकाई, ऐम्पियर, की परिभाषा के लिये किया जा सकता है।

फैराडे के कार्यों से यह स्पष्ट हो गया कि विद्युत् चालक द्रव में विद्युत् का प्रवाह, चलायमान् परमाणुओं या आयनों द्वारा विद्युत् आवेशों के संवाहन से सम्भव होता है। ये आयन धन आवेशों को एक ओर और ऋण आवेशों को विरुद्ध दिशा में ले जाते हैं। कुछ दिन बाद हेल्म होल्ट्ज़ ने इस बात की ओर संकेत किया कि उपर्युक्त

तथ्य का स्वाभाविक निष्कर्ष यह है कि पदार्थ की भाँति विद्युत् भी परमाणु-मूलक है अर्थात् विद्युत् की रचना भी विद्युत्-परमाणुओं से होती है। एक-बन्धक (मानो वैलन्ट) परमाणु या आयन पर जितना विद्युत् आवेश होता है वही विद्युत की इकाई मात्रा है।

धारा-विद्युत् के दो और गुण शीघ्र ही ज्ञात हुए। एक यह कि वह ताप उत्पन्न करती है; घरों को गरम और प्रकाशित करने के लिये विद्युत् का यही गुण काम में लाया जाता है। दूसरा यह कि धारा विद्युत् एक चुम्बकीय सूई को अपने स्थान से विचलित कर देती है। इस गुण को ओर्स्टेड ने १८२० में मालूम किया। ऐम्पियर ने इस गुण का अध्ययन विस्तृत रूप से किया और वह यह दिखाने में समर्थ हुआ कि एक धारा-विद्युत् दूसरी धारा-विद्युत् को भी विचलित करती है अर्थात् उसे आकर्षित या प्रतिसारित करती है। यदि एक वृत्ताकार तार में जिसकी त्रिज्या र हो एक धारा विद्युत् प्रवाहित हो रही हो जिसकी प्रबलता स हो तो धारा-विद्युत् केन्द्र पर $\frac{२\pi स}{र}$ चुम्बकीय बल उत्पन्न करती है। इस परिणाम के आधार पर धारा विद्युत् की परम (ऐब्सलूट) सेंटीमीटर-ग्राम-सेकण्ड इकाई को स्थिर करना सम्भव हो सका। ऐम्पियर के कार्यों के परिणाम स्वरूप तार द्वारा समाचार भेजने की कला का जन्म हुआ।

१८२७ में जी० एस० ओम ने (१७८७–१८५४) ने उस समय प्रचलित विद्युत् की 'मात्रा' और 'तनाव' जैसी अस्पष्ट धारणाओं के स्थान पर 'विद्युत् की प्रबलता' एवं 'विद्युद्वाहक बल' जैसी स्पष्ट और निश्चित धारणाओं की प्रतिष्ठा की। यदि स और ई क्रम से विद्युत् की प्रबलता और विद्युद्वाहक बल के द्योतक हों तो $स = \frac{ई}{प}$। इस सम्बन्ध को ओम का नियम कहते हैं। प उस पथ के प्रतिरोध का द्योतक है जिसमें से होकर विद्युत् प्रवाहित होती है।

विद्युत्-चुम्बकत्व—१८३१ में फैराडे ने मालूम किया कि जब किसी तार के वेष्ठन (क्वायल) में धारा-विद्युत् का प्रवाह आरम्भ होता है या बंद होता है तो पास में रखे हुए दूसरे वेष्ठन में एक क्षणिक और हल्की धारा-विद्युत् उत्पन्न होती है। उसने दो चुम्बकीय ध्रुवों के बीच तांबे की एक वृत्ताकार पट्टी को घुमाया। एक तार को उसने पट्टी की धुरी से और दूसरे तार को पट्टी के किनारे से सम्बन्धित किया। इन दोनों तारों के दूसरे सिरों को विद्युत् धारा मापक यंत्र के साथ जोड़ने पर उसने देखा कि जब तक पट्टी घूमती रहती है तब तक बराबर यंत्र, विद्युत् के उत्पन्न होते रहने की सूचना देता है। यह प्रथम डायनमो था जो आगे चलकर विद्युत् इंजिनियरिंग का आधार सिद्ध हुआ।

फैराडे ने माध्यम के महत्त्व को स्वीकार किया क्योंकि वैद्युत् और चुम्बकीय बलों का तनाव उसी के भीतर होता है। उसने यह कल्पना की कि विद्युत् आवेशित वस्तुओं और चुम्बकों से निकल कर बल-रेखायें माध्यम में फैली रहती हैं। १८६४ के बाद मैक्सवेल ने उसकी इस कल्पना को गणित की भाषा में प्रकट करने का सफल प्रयत्न किया। माध्यम में जब कोई विद्युत् परिवर्तन होता है तो यह परिवर्तन एक विद्युत्-चुम्बकीय तरंग के रूप में अग्रसर होता है। इस तरंग का वेग

व, $\frac{1}{\sqrt{\text{म} \times \text{क}}}$ के बराबर होता है। म और क क्रम से माध्यम की चुम्बकीयता और विद्युतागम्य अंक हैं। गणना करने पर मालूम हुआ कि विद्युत् चुम्बकीय तरंग का वेग १८६००० मील प्रति सेकण्ड है। प्रकाश का वेग भी इतना ही है। इससे मैक्स्वेल ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रकाश भी विद्युत् चुम्बकीय तरंग है जिसका संवाहन ईथर द्वारा होता है। इससे ईथर के अस्तित्व में विश्वास और भी दृढ़ हो गया यद्यपि यह निश्चित नहीं हो सका कि विद्युत् चुम्बीय तरंगों का कम्पन किस प्रकार होता है। १८८७ में प्रथम-प्रथम हर्ट्ज़ ने विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की भौतिक सत्ता को

प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया। और आज ईथर, यदि ईथर वास्तव में हो, इन तरंगों से ओत-प्रोत है। सहस्रों रेडियो स्टेशनों द्वारा विद्युत् चुम्बकीय तरंगे, रेडियो तरंगों के रूप में प्रायः निरन्तर उत्पन्न होती रहती हैं। पता नहीं उनका संवाहन एक स्थान से दूसरे स्थान तक किस प्रकार होता है परन्तु इतना तो निश्चय है कि वायु उनका संवाहन नहीं करती जैसा कि साधारण जनता समझती है।

परमाणु-सिद्धान्त—डिमाक्रिटस के बाद परमाणु सम्बन्धी धारणा, समय-समय पर स्पष्ट रूप में प्रकट होती रही। ब्वायल और न्यूटन ने भौतिक जगत् से सम्बन्धित अपनी कल्पनाओं में इसका उपयोग किया था, परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में डाल्टन (१७६६–१८४४) ने इसे एक निश्चित सिद्धान्त का रूप दिया। यह सिद्धान्त पदार्थों के रासायनिक संयोगों से सम्बन्धित तथ्यों और नियमों पर आधारित था, केवल कल्पना पर नहीं।

लवायशियर तथा दूसरे रसायन शास्त्रियों ने सिद्ध कर दिया था कि एक रासायनिक यौगिक पदार्थ की रचना निश्चित मूलतत्वों के निश्चित अनुपात में मिलने से होती है चाहे वह यौगिक पदार्थ कहीं से और किसी भी तरह से प्राप्त किया जाय। उदाहरणार्थ जल की रचना हाइड्रोजन और आक्सीजन के १:८ के अनुपात में मिलने से होती है। नव सेर पानी में एक सेर हाइड्रोजन और ८ सेर आक्सीजन होगा। हाइड्रोजन के एक भाग से किसी मूलतत्व का जितना भाग मिलता है उसे उस मूलतत्व का संयोजन भार (कम्बाइनिंग वेट) कहते हैं। उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि आक्सीजन का संयोजन भार ८ है। परन्तु बहुत से रासायन-शास्त्री जिनमें बर्थालेट भी था इस निश्चित अनुपात वाली बात में विश्वास नहीं करते थे। आगे चलकर हम देखेंगे कि उनका अविश्वास बहुत कुछ ठीक था यद्यपि उनके अविश्वास का कारण निराधार था। डाल्टन यह दिखाने में समर्थ हुआ कि गैसों के गुणों का स्पष्टीकरण बहुत अच्छी तरह किया जा सकता है यदि हम यह मान लें कि उनकी

रचना परमाणुओं से हुई है। उसके सिद्धान्त के अनुसार किसी मूलतत्व का संयोजन भार इस बात का भी सूचक था कि उस मूलतत्व के परमाणु हाइड्रोजन परमाणु से उतने गुना भारी थे। किसी मूलतत्व का परमाणु हाइड्रोजन परमाणु से जितने गुना भारी होता है उसे उस मूलतत्व का परमाणु-भार कहते हैं। इस प्रकार आक्सीजन का परमाणु भार ८ हुआ। डाल्टन ने इस तरह बीस मूलतत्वों के परमाणु भारों को मालूम किया। डाल्टन का परमाणु भार मालूम करने का ढंग आवश्यकता से अधिक सरल था परन्तु साथ ही दोष पूर्ण था। यदि दो मूलतत्वों के संयोग से बना हुआ केवल एक ही यौगिक पदार्थ ज्ञात हो तो यह मान लेना कि उस यौगिक पदार्थ के प्रत्येक अणु की रचना दोनों मूलतत्वों के एक-एक परमाणु से हुई है, डाल्टन के विचार में सर्वथा युक्ति संगत था। परन्तु ऐसा होना आवश्यक नहीं है। उदाहरणार्थ जल के अणु की रचना हाइड्रोजन के दो परमाणुओं और आक्सीजन के एक परमाणु के संयोग से होती है। ऐसी हालत में डाल्टन द्वारा निर्धारित परमाणु भारों का दोषपूर्ण होना स्वाभाविक ही था।

गे लुसाक ने सिद्ध किया कि दो गैसों के मिलने से जब किसी यौगिक पदार्थ की रचना होती है तो उन दोनों गैसों तथा यौगिक पदार्थ के आयतन (वाल्यूम) सरल संख्याओं के अनुपात में होते हैं। ऐवोगैड्रो ने यह सुझाव रखा कि सरल संख्यक अनुपात की बात आयतन के सम्बन्ध में ही नहीं, बल्कि उनके परमाणुओं की संख्याओं के सम्बन्ध में भी सत्य है। १८५८ में कैनीज़ारो ने इस बात की आवश्यकता अनुभव की कि प्रकृति और गुण की दृष्टि से परमाणु और अणु को एक दूसरे से भिन्न माना जाय। उसकी परिभाषा के अनुसार जो अब भी स्वीकार की जाती है, परमाणु वह सूक्ष्मतम कण है जो रासायनिक क्रियाओं में भाग लेता है और अणु वह सूक्ष्मता कण है जिसकी रचना प्रायः परमाणुओं के संयोग से होती है और जिसके भौतिक गुण उस पदार्थ के समान होते

हैं जिसका अणु वह होता है। साथ ही वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम रखने की भी क्षमता रखता है। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि कुछ थोड़े से मूलतत्व ऐसे हैं जिनके अणुओं की रचना एक ही परमाणु से होती है और उनके अणु और परमाणु में भेद नहीं होता। ऐवोगैड्रो ने कल्पना की कि यदि विभिन्न गैसों के दबाव और तापक्रम समान हों तो उनके समान आयतनों में अणुओं की संख्या भी समान होगी। गैसों के चल-सिद्धान्त से भी यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है। जल की रचना जब कृतिम रूप से की जाती है तो हम पाते हैं कि हाइड्रोजन के दो आयतनों और आक्सीजन के एक आयतन के संयोग से जल वाष्प के दो आयतनों की उत्पत्ति होती है। इस तथ्य का स्पष्टीकरण बड़ी ही सरलता के साथ किया जा सकता है यदि हम यह मान लें कि आक्सीजन और हाइड्रोजन दोनों के प्रत्येक अणु में दो-दो परमाणु होवे हैं और जल के एक अणु का निर्माण हाइड्रोजन के दो परमाणुओं और आक्सीजन के एक परमाणु के संयोग से होता है। समीकरण द्वारा ये बातें इस प्रकार प्रकट की जाती हैं।

$$२ हा_२ + आ_२ = २हा_२आ$$

हा = हाइड्रोजन, आ = आक्सीजन, $हा_२आ$ (जल)

इसका अर्थ यह हुआ कि आक्सीजन द्विबन्धक (डाइ वैलन्ट) मूलतत्व है। रासायनिक क्षेत्र में बन्धकता की धारणा का बहुत उपयोग हुआ है। ऊपर के वर्णन से यह सरलता पूर्वक सिद्ध किया जा सकता है कि आक्सीजन का परमाणु भार ८ नहीं १६ है। इससे यह स्पष्ट है कि डाल्टन के संयोजन भारों की अन्य तथ्यों के प्रकाश में समीक्षा करने के बाद ही मूलतत्वों के यथार्थ परमाणु-भार निर्धारित किये जा सकते हैं। यह समीक्षा कार्य सुचारु रूप से प्रथम-प्रथम कैनिज़ारो द्वारा किया गया।

ज्ञात मूलतत्वों की संख्या डाल्टन के २० मूलतत्वों से बढ़कर ९२ तक पहुँच गई है। भिन्न-भिन्न अन्वेषणों ने भिन्न-भिन्न अज्ञात मूलतत्वों को

प्रकाश में लाया। वर्णपट विश्लेषण और विद्युत् के परिणामों का उल्लेख किया जा चुका है। १८६५ में लार्ड रेले ने मालूम किया कि वायु से प्राप्त नाइट्रोजन का घनत्व, यौगिक पदार्थों से प्राप्त नाइट्रोजन के घनत्व से कुछ अधिक था। रेले और सर विलियम रैम्ज़े ने घनत्वों की इस विभिन्नता का कारण ढूँढ निकाला। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वायु में एक 'आरगान' नामक गैस और होती है जो नाइट्रोजन से भारी होती है और रासायनिक दृष्टि से क्रिया-हीन होती है। इसी की उपस्थिति के कारण वायु से प्राप्त नाइट्रोजन का घनत्व अधिक होता है। ऐसी चार और क्रिया-हीन गैसों—हीलियम क्रिप्टान, नियान और ज़ीनान का शीघ्र ही पता लगा लिया गया और आरगान के साथ उन्हें, मूलतत्वों की सूची में, शून्य बन्धकता वाले स्तम्भ में रखा गया।

बहुत से रसायन शास्त्रियों ने इस बात को मालूम करने का प्रयत्न किया कि मूलतत्वों के परमाणु-भारों और उनके भौतिक तथा रासायनिक गुणों में क्या सम्बन्ध है। इस प्रयत्न में सब से अधिक सफलता रूसी वैज्ञानिक मेन्डलीफ (१८३४-१६०७) को मिली। उसने मूलतत्त्वों को क्रम से बढ़ते हुये परमाणु-भारों के अनुसार, एक के बाद दूसरा, इस प्रकार रख कर एक सारिणी (टेबुल) तैयार की। उसने देखा कि इस सारिणी में प्रत्येक आठवें मूलतत्व के यथार्थ गुणों में बहुत कुछ समानता थी। इस सारिणी द्वारा उन मूलतत्वों के परमाणु-भार निर्धारित किये जा सके जिनकी बंधकतायें निश्चित रूप से नहीं ज्ञात थीं। मेन्डलीफ ने सारिणी में रिक्त स्थानों को अनुमान द्वारा पूर्ति कर, अज्ञात मूलतत्वों के अस्तित्व और गुणों की भविष्यवाणी की। इनमें से कुछ पीछे आविष्कृत हुये। रासायनिक ढंग से मालूम किये जाने पर बहुत से मूलतत्वों के (परन्तु सब के नहीं) परमाणु-भार पूर्ण संख्याओं के आस-पास होते हैं। इस तथ्य ने प्राउट तथा अन्य विचारकों को यह कल्पना करने के लिये प्रेरित किया कि सब मूलतत्त्वों का निर्माण केवल हाइड्रोजन से हुआ है। परन्तु इस कल्पना की यथार्थता का परीक्षण उस काल की

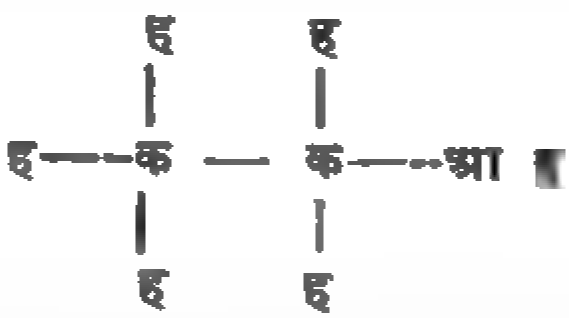
सैद्धान्तिक और प्रायोगिक सामर्थ्य के परे था। इसकी परीक्षा आगे चलकर हुई।

कार्बनिक रसायन शास्त्र (आर्गैनिक केमिस्ट्री)—जानवरों और पौधों के शरीरों का निर्माण जटिल रासायनिक पदार्थों से होता है। इन पदार्थों की रचना में कार्बन का प्रमुख स्थान होता है। कार्बन के परमाणु एक दूसरे के साथ मिल सकते हैं। बहुत दिन तक ऐसा सोचा जाता रहा कि उपयुंक्त जटिल पदार्थों की रचना केवल दैवी शक्ति द्वारा हो सकती है। परन्तु १८२८ में वूलर ने जब सियैनिक अम्ल और अमोनिया के संयोग से यूरिया (एक कार्बनिक पदार्थ जो मूत्र में पाया जाता है) का निर्माण कर लिया तब यह स्पष्ट हो गया कि कम-से-कम एक ऐसा पदार्थ आंशिक रूप में प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से बनाया जा सकता है। बाद में और भी ऐसे ही पदार्थ कृत्रिम रूप से बनाये गये। १८८७ में एमिल फिशर फ्रक्टोज़ (फलों की चीनी) और ग्लुकोज़ (अंगूर की चीनी) को कृत्रिम रूप से, उनके परमाणुओं के संयोग द्वारा बनाने में समर्थ हुआ।

लवायशियर, बर्ज़िलियस, लीबिग तथा और बहुतों ने यह मालूम करने का उपाय मालूम किया कि उपयुंक्त प्रकार के किसी जटिल पदार्थ में विभिन्न मूलतत्वों की प्रतिशत मात्रायें क्या हैं। उस पदार्थ को, ताम्र भस्म से प्राप्त आक्सीजन में जलाते हैं और ज्वलन क्रिया से प्राप्त पदार्थों जैसे जल और कार्बन डायआक्साइड का वज़न मालूम करते हैं। इस प्रकार असंख्य कार्बनिक पदार्थों के प्रतिशत-गठन को मालूम किया गया। इससे एक बहुत ही आश्चर्यमय तथ्य का उद्घाटन हुआ। ऐसा पाया गया कि बहुत से कार्बनिक पदार्थ जिनके भौतिक और रासायनिक गुण एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं, समान प्रतिशत-गठन वाले हैं अर्थात् उनमें से प्रत्येक में मूलतत्वों की प्रतिशत मात्रायें एक जैसी हैं। उदाहरण के लिये यूरिया और अमोनिया सियनेट का नाम लिया जा सकता है। कार्बन और हीरा भी इसके उदाहरण हैं। बर्ज़िलियस ने इस समान

प्रतिशत-गठन परन्तु भिन्न गुण (तुल्यावयवता या 'आइसोमरिज़्म') वाली बात का स्पष्टीकरण करने के लिये यह कल्पना की कि इन पदार्थों के अणुओं में परमाणुओं की परस्पर स्थान-व्यवस्था भिन्न-भिन्न होती है। अर्थात् उनका प्रतिशत-गठन समान होते हुये भी गठन-प्रकार भिन्न होता है।

इसका परिणाम यह हुआ कि प्रयोग-सिद्ध सूत्रों के स्थान पर रचना सूत्रों का व्यवहार, विभिन्न पदार्थों के लिये होने लगा। ऐल्कोहल के लिये केवल क$_{२}$ ह$_{६}$ आ (कार्बन के २, हाइड्रोजन के ६ और आक्सीजन का १ परमाणु) लिखना पर्याप्त न रहा। अब उसके लिये निम्नलिखित गठन-सूत्र का व्यवहार आवश्यक हो गया। १८६५ में केक्यूल ने यह



दिखाया कि बेन्ज़ीन, क$_{६}$ ह$_{६}$, के गुण इस बात की ओर संकेत करते हैं कि कार्बन के ६ परमाणु एक बन्द कुण्डली बनाते हैं। यदि हाइड्रोजन के एक या अधिक परमाणुओं के स्थान दूसरे परमाणु या परमाणु-समूह ले लें तो और अधिक जटिल पदार्थ बनते हैं जो गन्ध युक्त होते हैं। इन गठन सूत्रों की सहायता से कार्बनिक रसायन शास्त्र नियमित और व्यवस्थित किया जा सका है। ये सूत्र नई सम्भावनाओं की ओर संकेत करते हैं। इस प्रकार बहुत से नये पदार्थों के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करना और अन्ततोगत्वा उन्हें ढूँढ निकालना सम्भव हो सका है।

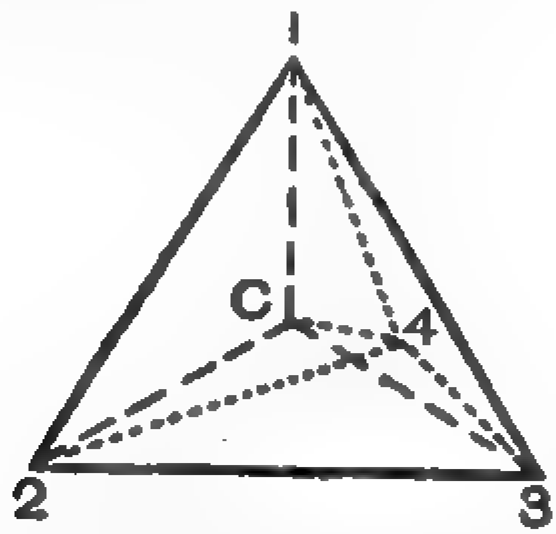
अलकतरे के रासायनिक अध्ययन ने एक महान् उद्योग धंधे को सम्भव बना दिया। अन्वर्डाबन और बाद में हाफ्मैन ने अलकतरे से एक पदार्थ को अलग किया जिसे ऐनीलीन नाम दिया गया। १८५६ में पर्किन ने ऐनीलीन से एक रंग (गुलाबी) प्राप्त किया। यह ऐनलीन

का पहला रंग था। बाद में असंख्य रंग, विशेषकर जर्मनी में, बनाये गये। १८७८ में ई० तथा ओ० फिशर ने इन रंगों की बनावट का अध्ययन किया और यह मालूम किया कि उनमें से बहुतों का आधार ट्राइ फेनिल मिथेन नामक पदार्थ है। १८९७ के आस-पास फेनिल ग्लिसाइन नामक पदार्थ से प्राप्त इन्डिगोटिन ने बाज़ार में प्राकृतिक नील का स्थान लेना आरंभ कर दिया। प्रयोग शालाओं में बनाई गई कार्बनिक औषधियां अस्तित्व में आई—ऐन्टीपाइरीन (१८८३), फिनैसिटीन (१८८७), ऐस्पिरिन (१८९९)। इसके बाद अलिंच द्वारा सैल्वर्सन तथा विशेष बीमारियों की अन्य औषधियाँ आविष्कृत हुईं जिनका वर्णन आगे किया जायगा।

मिशर्लिच ने जिसने पहले यह सुझाव रखा था कि मणिभों (क्रिस्टलों) के रूप और उनके परमाणु-गठन में बहुत घनिष्ट सम्बन्ध होता है, १८४४ में यह दिखाया कि टार्टेरिक अम्ल के तुल्यावयव पदार्थों के गठन-सूत्र यद्यपि एक से होते हैं, फिर भी उनके प्रकाश-सम्बन्धी गुण भिन्न होते हैं। १८४८ में पेस्टियर (१८२२—१८९५) ने, रैसीमेट्स को मणिभ के रूप में प्राप्त करने के प्रयत्न में दो प्रकार के मणिभों को प्राप्त किया जो एक दूसरे से उसी प्रकार सम्बन्धित थे जैसे दाहिना हाथ बांये हाथ से या एक वस्तु अपने प्रतिबिम्ब से सम्बन्धित होती है। जब दोनों मणिभों को एक दूसरे से अलग कर उनके अलग-अलग घोल बनाये गये तो पाया गया कि एक घोल प्रकाश के ध्रुवन-समतल (प्लेन आव-पोलराइज़ेशन) को दाहिने ओर और दूसरा घोल उसे बाईं ओर घुमा देता है। जीवित शरीरों से प्राप्त बहुत से पदार्थ इस प्रकार के गुण से युक्त होते हैं परन्तु उन्हीं पदार्थों को जब कृत्रिम रूप से तैयार किया जाता है तो उनमें ये गुण नहीं पाये जाते।

१८६३ में विलीसेनस और १८७४ में लीवेल और वान हाफ ने यह निष्कर्ष निकाला कि उपर्युक्त पदार्थों के दो प्रकारों के अणुओं में परमाणु स्थानीय दृष्टि से, भिन्न प्रकार से व्यवस्थित होते हैं। उनके गठन-सूत्र

एक दूसरे से उसी प्रकार सम्बन्धित होते हैं जैसे आकृति और प्रतिबिम्ब। उन्होंने यह कल्पना की कि एक टेट्राहेड्रन (चार त्रिभुजों से निर्मित ठोस आकृति) के केन्द्र में एक कार्बन परमाणु होता है और चारों कोनों पर भिन्न प्रकार के परमाणु या परमाणु-समूह स्थित होते हैं। इसीको असममित (ऐसिमेट्रिक) कार्बन परमाणु कहते हैं। कुछ और मूलतत्वों में भी यह बात पाई गई है, विशेषकर नाइट्रोजन में।



असमित कार्बन परमाणु

परमाणुओं के एक विशेष प्रकार के समूह जिन्हें मूलक (रैडिकल) कहते हैं, रासायनिक क्रियाओं की एक शृंखला द्वारा अपने अस्तित्व को बनाये रखते हैं। हाइड्रोआक्सिल (आ ह) मूलक इसका उदाहरण है। इस तथ्य ने प्रतिरूप (टाइप) सिद्धान्त की ओर संकेत किया जिसके अनुसार कुछ काल तक रासायनिक पदार्थों का वर्गीकरण होता रहा।

धीरे-धीरे बहुत-से कार्बनिक पदार्थ ढूंढ निकाले गये और बहुत-से पदार्थों को कृत्रिम रूप में, मूलतत्वों के संयोग से बनाया गया। लिबिग ने इन सबको तीन बड़े वर्गों में विभक्त किया।

(१) प्रोटीन्स—वे पदार्थ जिनमें कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, आक्सीजन और कभी-कभी गंधक और फ़ासफ़ोरस होते हैं।

(२) चर्बियाँ—वे पदार्थ जिनमें कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन होते हैं।

(३) कार्बो हाइड्रेट्स—वे पदार्थ जिनमें कार्बन, हाइड्रोजन और

आक्सीजन होते हैं। इनमें हाइड्रोजन और आक्सीजन उस अनुपात में होते हैं जिस अनुपात में वे जल की रचना करते हैं।

प्रोटीन्स की बनावट सबसे अधिक जटिल होती है। वे जब विघटित होते हैं तो ऐमिनो-अम्लों की उत्पत्ति होती है। १८८३ में कर्टियस ने एक ऐसे पदार्थ को बनाया जो रासायनिक-क्रिया की दृष्टि से प्रोटीनों के समान था। फिशर ने इसकी परीक्षा की और ऐमिनो-अम्लों के संयोग से ऐसे पदार्थों के बनाने के बहुत-से ढंग मालूम किये जो पेप्टोनों से बहुत मिलते-जुलते थे। प्रोटीनों पर पाचक ख़मीरों की रासायनिक क्रिया से पेप्टोन बनते हैं। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के अंत के पूर्व, जीवित वस्तुओं की रचना करने वाले कुछ पदार्थों की प्रकृति जानने और उन्हें कृत्रिम ढंग से बनाने की दिशा में पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी। यही नहीं, कार्बनिक रसायन-शास्त्र को तर्क-मूलक बनाने के प्रयत्न में अर्जित ज्ञान, रसायन विज्ञान की अन्य शाखाओं की बहुत-सी समस्याओं को सुगमतर बनाने में सहायक सिद्ध हुआ।

रासायनिक-क्रिया—रासायनिक-क्रिया के कारणों पर प्राचीन काल से विचार होता रहा है और न्यूटन ने इस ओर बहुत ध्यान दिया। १८५० में विल्हेल्मी ने एक अम्ल की उपस्थिति में चीनी को विपर्यासित (इन्वर्ज़न) की रफ्तार को मालूम किया। सक्रोज़ के जटिल अणुओं के डेक्सट्रोज़ और लिवुलोज़ के सरलतर अणुओं में परिवर्तित होने की क्रिया को विपर्यासित कहते हैं। उसने पाया कि चीनी की मात्रा जैसे-जैसे कम होती जाती है वैसे-वैसे चीनी की कम मात्रा दूसरे पदार्थों में परिवर्तित होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी क्षण, विघटित होने वाले अणुओं की संख्या सम्पूर्ण अणुओं की संख्या के अनुपात में होती है। इसीकी हमें आशा भी करनी चाहिए यदि हम यह मान लें कि प्रत्येक अणु का विघटन स्वतंत्र रूप से होता है; दूसरे अणुओं का किसी अणु के विघटन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस प्रकार के विघटन को एकाणु-क्रिया कह सकते हैं।

परन्तु यदि दो अणु एक दूसरे को प्रभावित करें अर्थात् विघटन द्वि-अणु-क्रिया का परिणाम हो तो विघटन की रफ्तार इस बात पर निर्भर होगी कि एक सेकण्ड में वे अणु कितनी बार एक दूसरे से टकराते हैं। एक सेकण्ड में टक्करों की संख्या दोनों क्रिया-शील पदार्थों की मात्राओं के गुणनफल के अनुपात में होगी। यदि दोनों की मात्रायें समान हों तो यह गुणनफल एक मात्रा के वर्ग के बराबर होगा।

जैसा बर्थलेट ने मालुम किया कुछ रासायानिक क्रियायें उत्क्रमणीय (रिवर्सिबुल) होती हैं अर्थात् वे दोनों दिशाओं में सम्पादित होती हैं। यदि दो यौगिक पदार्थों अ ब और स द से दो यौगिक पदार्थों अ द और स ब का निर्माण हो रहा हो और परिवर्तन क्रिया उत्क्रमणीय हो तो साम्य (इक्विलिब्रियम) अवस्था निश्चय ही तब होगी जब विपरीत दिशाओं में घटित होने वाली क्रियाओं की रफ्तार समान होगी। इस तथ्य को इस प्रकार लिखते हैं।

अ ब + स द = अ द + स ब

यह गत्यात्मक साम्य प्रथम-प्रथम १८५० में विलियम्सन द्वारा प्रतिपादित किया गया। पदार्थमात्रा-नियम (मॉस ला) का और सम्यक् निरूपण १८६४ में गुलबर्ग और वाज द्वारा तथा १८७७ में वान्ट हाफ़ द्वारा किया गया।

चीनी की विपर्यासित किसी अम्ल की उपस्थिति में बहुत तेज़ी के साथ होती है। अम्ल, क्रिया को सुगम बना देता है परन्तु उसमें स्वयं कोई परिवर्तन नहीं होता है। इस कारण बर्ज़ीलियस ने अम्ल को प्रवर्तक (कैटलिस्ट) कहा। इसी प्रकार प्लैटिनम का चूर्ण, हाइड्रोजन और आक्सीजन का संयोग कराने में सहायक सिद्ध होता है। बहुत सी ऐसी क्रियायें रसायन शास्त्र और शरीर-शास्त्र के क्षेत्र में ज्ञात हैं जहां प्रवर्तकों को एन्ज़ाइम या हारमोन कहते हैं। रासायनिक उद्योगों में भी आजकल प्रायः प्रवर्तकों का प्रयोग किया जाता है।

घोल—जल तथा अन्य द्रवों में पदार्थों के घुलने से घोल बनते हैं,

यह सभी लोग जानते हैं। चीनी अच्छी तरह जल में घुलती है परन्तु धातुयें उसमें नहीं घुलतीं। वायु, जल में बहुत कम घुलती है परन्तु अमोनिया और हाइड्रोजन क्लोराइड बहुत घुलनशील हैं। कुछ घोल जैसे नमकों और अम्लों के, विद्युत् का अच्छी तरह संचालन करते हैं परन्तु शुद्ध जल और चीनी के घोल की विद्युत् संचालन शक्ति बहुत कम होती है।

फैराडे के अनुसंधान कार्यों ने सिद्ध कर दिया कि घोलों में विद्युत् का प्रवाह धन और ऋण विद्युत् से आवेशित आयनों के विपरीत दिशाओं में चलायमान् होने से होता है। समान रासायनिक बन्धकता वाले आयन समान विद्युत्-आवेश ले जाते हैं। १८५६ में हिटार्फ ने यह सुझाव रखा कि दोनों विद्युत् द्वारों के आस पास घोल का असमान पतलापन इस बात का द्योतक है कि धन आयनों का वेग ऋण आयनों के वेग से भिन्न होता है और दोनों स्थानों के पतलेपन की तुलना कर आयनों के वेगोंकी परस्पर तुलना की जा सकती है। स्पष्ट है कि अधिक वेग वाले आयन जिस द्वार की ओर जायेंगे वहां नमक की मात्रा अधिक होगी और घोल कम पतला होगा। १८७६ में कोलराश ने द्रवों की चालकता को नापा। उसने विद्युत् द्वारों पर ध्रुवन न होने देने के लिये विद्युत् की सरल धारा की जगह प्रत्यावर्तक धारा (आल्टर्नेटिंग करेंट) का, और धारा मापक (गैल्वानोमीटर) की जगह टेलीफोन का प्रयोग किया। उसने देखा कि ओम के नियम का पूर्ण रूप से पालन होता है और इससे उसने यह निष्कर्ष निकाला कि न्यूनतम विद्युद्वाहक बल (इलेक्ट्रोमोटिव फोर्स) भी विद्युत्-धारा उत्पन्न करने में समर्थ है। इससे यह स्पष्ट है कि घोल में, आयनों को भ्रमण की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। उसने इस बात की ओर भी संकेत किया कि द्रवों की चालकता मालूम कर हम धन और ऋण आयनों के वेगों का योग मालूम कर सकते हैं। चूँकि हिटार्फ के बताये हुये ढंग से विरुद्ध आवेशों वाले आयनों के वेगों का अनुपात भी मालूम किया जा सकता है इस

लिये प्रत्येक आयन का वेग मालूम करना सम्भव है। यदि विभव प्रवणता (पोटन्शियल ग्रेडियन्ट) एक वोल्ट प्रति सेंटीमीटर हो तो हाइड्रोजन का वेग पानी में '००३ सेंटीमीटर प्रति सेकण्ड होता है जबकि नमकों के आयनों के वेग '०००६ सेंटीमीटर प्रति सेकण्ड के आस-पास होते हैं। सर आलिवर लाज ने हाइड्रोजन के वेग की सत्यता को प्रमाणित किया और मैंने कुछ अन्य आयनों के वेगों को मालूम किया। इसके लिये मैंने दो विधियों का प्रयोग किया। एक तो आयनों को जमा (प्रेसीपिटेट) कर, दूसरे उनकी गतियों का निरीक्षण कर यदि वे रंगीन हुए।

जब पौधों की झिल्लियों से होकर पानी जाता है तो झिल्लियों के भीतर स्थित सेलों (वे सूक्ष्मतम टुकड़े जिनसे जीवित पदार्थों का निर्माण होता है) में दबाव उत्पन्न होता है। इस दबाव को अभिसारक (आस्माटिक) दबाव कहते हैं। पेफ़र ने झरझरे (अत्यन्त क्षुद्र छिद्रों युक्त) पात्रों की दीवारों पर, रासायनिक क्रिया द्वारा कृत्रिम झिल्लियाँ उत्पन्न कर चीनी के घोलों का दबाव मालूम किया। वान्ट हाफ़ ने पेफ़र के परिणामों के आधार पर इस बात की ओर संकेत किया कि अभिसारक दबाव, गैसों के दबाव की भांति, आयतन का उत्क्रमानुपाती होता है अर्थात् वह उतना ही अधिक होता है जितना आयतन कम होता है। यही नहीं, अभिसारक दबाव का परिमाण भी समान अणु-संख्या वाली गैस के दबाव के बराबर होता है। घोलों में अभिसारक दबाव की सत्ता हमें यह कल्पना करने के लिये प्रेरित करती है कि अभिसारक पात्र, कार्नोट के आदर्श इंजिन के बेलन की तरह व्यवहार करते हैं। इसी आधार पर, वान्ट हाफ़, ताप-गति-विज्ञान की तर्क-प्रणाली को, घोल सम्बन्धी समस्याओं को हल करने के लिये प्रयुक्त कर, अनुसन्धान के एक नवीन क्षेत्र का मार्ग प्रशस्त करने में समर्थ हुआ। पतले घोलों में सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक दोनों दृष्टियों से, अभिसारक दबाव गैसों के दबाव के बराबर होता है परन्तु गाढ़े घोलों में जिनका अध्ययन बर्कले के अर्ल और हार्टले ने किया, यह बात सत्य नहीं है। वान्ट हाफ़ ने

अभिसारक दबाव का, घोल के अन्य गुणों से जो आसानी से मालूम किये जा सकते हैं, सम्बन्ध स्थापित किया। उदाहरणार्थ, उसने मालूम किया कि इस दबाव का घोल के हिमांक (फ्रीज़िंग प्वाइंट) के अवनमन (डिप्रेशन) से क्या सम्बन्ध है। पतले घोलों और गैसों के बीच कुछ बातों में समानता अवश्य है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अभिसारक दबाव का और गैस दबाव का एक ही कारण है। ताप-गति-विज्ञान की तर्क-प्रणाली परिणाम अवश्य देती है परन्तु इस सम्बन्ध में वह कुछ बताने में असमर्थ है कि यह दबाव किस क्रिया से उत्पन्न होता है। सम्भव है यह दबाव अणुओं के दीवारों से टकराने का परिणाम हो या रासायनिक आकर्षण का या किसी अन्य क्रिया का।

विद्युत् चालक घोलों का अभिसारक दबाव असाधारण रूप से अधिक होता है। यहाँ तक कि पोटैशियम क्लोराइड तथा अन्य द्विआङ्किक (बाइनरी) नमकों के घोलों का अभिसारक दबाव, चीनी या किसी गैस के घोल के अभिसारक दबाव से दो गुना होता है। इससे १८८७ में आर्हिनियस ने यह निष्कर्ष निकाला कि विद्युत् चालक घोलों में दबाव उत्पन्न करनेवाले कणों की संख्या अन्य घोलों में पाये जाने वाले कणों की संख्या सेअधिक होती है। इसी आधार पर उसने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि विद्युत् चालक घोलों में घुलनशील पदार्थों के अणु, आयनों में विघटित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, पोटैशियम क्लोराइड के घोल में कुछ अनावेशित पो क्लो के अणु होते हैं और कुछ विघटित पो+और क्लो⁻ आयन। घोल को जैसे-जैसे अधिक पतला किया जाता है वैसे-वैसे विघटन क्रिया अधिक मात्रा में होती है। अंत में सारे अणुओं का विघटन आयनों में हो जाता है। विघटन क्रिया जैसे-जैसे अधिक होती जाती है वैसे-वैसे अभिसारक दबाव और रासायनिक क्रियाशीलता भी बढ़ती जाती है। हाल में किये गये, विशेषकर डेबाई और हकल के अन्वेषण कार्यों से मालूम हुआ है कि गाढ़े घोलों में भी विघटन-क्रिया पूर्ण रूप से हो जाती है। ऐसे घोलों की न्यून चालकता का कारण कुछ और होता है।

ऐसे घोलों में आयन, द्रव के कणों से किसी प्रकार सम्बन्धित होते हैं। चूँकि ऐसे आयनों की गति मंद होती है इसलिये सम्भव है वे चलते समय द्रव का वातावरण अपने साथ लिये चलते हों। इन्हीं पथों का अनुसरण कर ताप-गति-विज्ञान का, विशेषकर उसके उस रूप का जिसका विकास विलार्ड गिब्स ने किया, विद्युत्-विज्ञान के साथ सम्बन्ध स्थापित किया गया। इस सम्बन्ध स्थापन का सुपरिणाम, सैद्धान्तिक ज्ञान और उपयोगी उद्योग धंधों की उत्तरोत्तर प्रगति और विस्तार के रूप में प्रकट हुआ। यही नहीं, घोल सम्बन्धी सिद्धांत ने आयनों की धारणा को जन्म दिया। इसी धारणा के आधार पर कुछ वैज्ञानिकों ने गैसों के भीतर विद्युत्-चालन क्रिया का अध्ययन किया और अन्ततोगत्वा आधुनिक भौतिक विज्ञान में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी।

कोलायड—१८९० में टामस ग्रैहम का ध्यान उस विभिन्नता की ओर आकर्षित हुआ जो क्रिस्टलायड और कोलायड में पाई जाती है। क्रिस्टलायड उन यौगिक पदार्थों को कहते हैं जो घोलों में मणिभों (क्रिस्टलों) का रूप धारण कर लेते हैं। कोलायड क्रिस्टलायडों की अपेक्षा अधिक बड़े आकारों में प्रकट होते हैं। क्रिस्टलायडों और कोलायडों की विभिन्नता का कारण कोलायड के कणों का आकार है। क्रिस्टलायडों के घोल, जैसे चीनी और नमक के घोल, समावयव (होमोजीनियस) होते हैं परन्तु कोलयडों के घोल में कोलायड के कण और द्रव अलग-अलग होते हैं। कुछ कोलायडों के कणों को सूक्ष्म दर्शक की सहायता से देख सकते हैं परन्तु कुछ कोलायडों के कणों को देखने के लिये अति-सूक्ष्म-दर्शक की आवश्यकता होती है। (क्रिस्टलायड के घोल में कणों को किसी भी यंत्र से नहीं देखा जा सकता)। अति-सूक्ष्म-दर्शक से कणों को देखने की विधि यह है कि निरीक्षक का दृष्टि-पथ एक तीव्र प्रकाश किरण से समकोण बनता है। प्रकाश कणों द्वारा विकीरित होता है और यदि कणों के आकार प्रकाश की तरंग-लम्बाई की तुलना में बहुत छोटे न हों तो कण चमकते हुए अलग-अलग दिखाई देते हैं।

वे निरन्तर चंचल और चलायमान् अवस्था में पाये जाते हैं। इस चंचलता का कारण यह है कि द्रव के अणु इन कणों से निरन्तर टकराते रहते हैं।

प्रोटोप्लाज़्म जिनसे जीवित पदार्थों के सेलों की रचना होती है, कोलायडों के बने होते हैं। यही कारण है कि शरीर के अंगों की क्रिया-विधि के अध्ययन में कोलायडों का इतना महत्वपूर्ण स्थान है। प्रोटो-प्लाज़्म का केन्द्रीय भाग शेष भाग की अपेक्षा अधिक ठोस होता है। कृषि विज्ञान में भी कोलायडों का वर्णन मिलता है क्योंकि आज हम जानते हैं कि मिट्टी कार्बनिक और अ कार्बनिक कोलायडों का एक जटिल मिश्रण है। मिट्टी में बैक्टीरिया तथा अन्य बहुत-से सूक्ष्म कीटाणु होते हैं जो प्राकृतिक पदार्थों जैसे नाइट्रोजन आदि को, पौधों के लिये आवश्यक खाद्य पदार्थों में परिवर्तित कर देते हैं। पुनः, चिकनी मिट्टी की भौतिक बनावट कोलायडों द्वारा नियंत्रित होती है। ऐसी मिट्टी भुरभुरी और उपजाऊ तभी होती है जब कोलायड जम जाते हैं।

कोलायड के कण विद्युत्-क्षेत्र में गति शील हो जाते हैं इसलिए वे निश्चय ही विद्युत् आवेशों से युक्त होते होंगे। सर हार्डी ने मालूम किया कि जब उस द्रव को जिसमें वे होते हैं धीरे-धीरे अम्ल अवस्था से क्षार अवस्था में लाया गया तो कुछ कोलायडों के आवेशों की प्रकृति में परि-वर्तन हो गया अर्थात् धन, ऋण में या ऋण, धन में परिवर्तित हो गया। सम-विद्युत् बिन्दु (आइसो इलेक्ट्रिक प्वाइंट) पर, जब कोला-यडों का कोई आवेश नहीं होता, कोलयड युक्त द्रव डांवाडोल (अन्स्टेबल) अवस्था में पहुँच जाता है और कोलायड जम जाता है।

फैराडे और ग्रैहम को यह बात मालूम थी कि कुछ कोलायडों के घोल, नमकों के डालने से जम जाते हैं। १८६५ में लिन्डर और पिक्टन ने मालूम किया कि एक, दो और तीन बन्धकता वाले आयनों की जमाने की औसत क्षमतायें १ : ३५ : १०२३ के अनुपात में होती हैं। १८६६ में मैंने इस विषय का अध्ययन सम्भावना-सिद्धान्त की सहायता से किया। किसी आयन का विद्युत् आवेश उसकी रासायनिक बन्धकता

के अनुपात में होता है। इसलिये किसी कोलायड कण के पास समान आवेश लाने के लिये दो त्रि-बन्धक, तीन द्वि-बन्धक और छ एक-बन्धक आयनों का एक साथ वहाँ पहुँचना आवश्यक है। गणना करने से पता चलता है कि आयनों की जमाने की क्षमताएँ १: स: स^{२} के अनुपात में होनी चाहिएँ। स एक अज्ञात संख्या है जिसका मान घोल की प्रकृति पर निर्भर है। स को ३२ मान लेने पर हम १: ३२: १०२४ का अनुपात पाते हैं। यह अनुपात प्रयोग द्वारा पाये गये अनुपात के अनुकूल है। स्मरण रहे यह पूर्णतया सत्य परिणाम नहीं है। इसको प्राप्त करने में गड़बड़ी पैदा करने वाली बहुत-सी बातों की उपेक्षा की गई है। परन्तु परिणाम प्राप्त करने की यह विधि त्रि-बन्धक आयनों के असाधारण प्रभाव का स्पष्टीकरण करती है। सम्भावना मूलक ऐसे ही सिद्धान्तों का प्रयोग रासायनिक क्रिया के अध्ययन के लिए भी किया जा सकता है।

कोलायड के गुण, वस्तुओं की सतहों पर द्रव-परतों की निर्माण क्रिया से सम्बन्धित हैं। परतों के अध्ययन में ताप गति विज्ञान के नियमों का प्रयोग प्रथम-प्रथम गिब्स ने किया और रेले, लैन्ग्मुयिर, रिडी-यल और ऐडम द्वारा परतों के अणु-गठन का अध्ययन किया गया। कुछ परतें इतनी पतली होती हैं कि उनकी ऊँचाई एक अणु के व्यास के बराबर होती है; इस प्रकार हम एक ऐसे जगत् में प्रवेश करते हैं जिसे हम चाहें तो द्विधा-विस्तृत (टू डाइमेन्शनल) जगत् कह सकते हैं।

आठवाँ अध्याय

उन्नीसवीं शताब्दी का जीव विज्ञान

जीव विज्ञान (बायालोजी) और उसका प्रभाव—सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में दार्शनिकों और साधारण मनुष्यों के विचारों को सबसे अधिक प्रभावित 'आकाश-विज्ञान' किया करता था। कापर्निकस ने प्राचीन विचारकों की इस धारणा को कि पृथ्वी ब्रह्माण्ड के केन्द्र में स्थित है भ्रम पूर्ण सिद्ध कर दिया। यही नहीं न्यूटन यह सिद्ध करने में समर्थ हुआ कि आकाश में पाये जाने वाले नक्षत्र और ग्रह किसी दैवी गुण से युक्त नहीं हैं और वे भी उन्हीं नियमों के अनुसार चलते रहते हैं जिनके अनुसार पृथ्वी पर पाये जाने वाले पदार्थ चलते हैं। इन दोनों शताब्दियों में मनुष्य के ब्रह्माण्ड सम्बन्धी विश्वासों में इस प्रकार एक प्रबल क्रान्ति सी हुई।

वैज्ञानिक और दार्शनिक क्षेत्र में दूसरी क्रान्ति जीव विज्ञान द्वारा उन्नीसवीं शताब्दी में सम्भव हो सकी। इस क्रान्ति को सम्भव बनाने में डार्विन का सबसे अधिक हाथ था। डार्विन के 'प्राकृतिक-वरण' (नैचुरल सेलेक्शन) सिद्धांत ने प्राचीन विकासवाद को बहुत बल प्रदान किया और उसे विश्वसनीय बना दिया। जन्तु-जगत् में मनुष्य अपना वास्तविक स्थान पहचानने और स्वीकार करने के लिये विवश हो गया। इसके बाद विकासवाद सिद्धान्त अपना प्रभाव ज्ञान के अन्य क्षेत्रों में भी विस्तृत करने में समर्थ हुआ।

शरीर-विज्ञान—अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शारीरिक क्रियाओं का संतोषप्रद ढंग से स्पष्टीकरण न कर पाने के कारण वैज्ञा-

निक, 'जीव' सिद्धान्त (वाइटलिज़्म) को स्वीकार करने के लिये विवश से थे। इस सिद्धान्त के अनुसार जीवित पदार्थ को भौतिक विज्ञान या रसायन-शास्त्र के नियमों की सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता। परन्तु भौतिक और रासायनिक प्रणालियों को जीव विज्ञान के क्षेत्र में भी प्रयुक्त करने में जो सफलता मिली उसके कारण उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक उपर्युक्त 'जीव' सिद्धान्त पर से लोगों का विश्वास उठ-सा गया। शरीर-विज्ञान सम्बन्धी नवीन उपकरणों के आविष्कारों ने भी इस विश्वास को उठाने में सहायता दी। शरीर-विज्ञान के अध्ययन के लिये बहुत हद तक भौतिक शास्त्र और रसायन शास्त्र पथ-प्रदर्शक का काम करते हैं। परन्तु जीवों को उनके सम्पूर्ण रूप में समझना एक कठिन और दूसरी समस्या है।

जोहान्स मूलर ने उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में शरीर-विज्ञान सम्बन्धी सम्पूर्ण प्राप्त ज्ञान को अपनी पुस्तक "शरीर विज्ञान का ख़ाका" में एकत्रित किया। उसने स्वयं शरीर-स्थित उन सूक्ष्म तंतुओं की कार्य विधि के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया जो विभिन्न संदेशों को मस्तिष्क तक ले जाती हैं या उन संदेशों को पहुँचाती हैं जिन्हें पाकर विभिन्न अंग अपना कार्य करने लगते हैं। उसने यह सिद्ध किया कि मस्तिष्क को जो सूचना बाह्य जगत् के सम्बन्ध में ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मिलती है वह ज्ञानेन्द्रियों पर ही निर्भर होती है, ज्ञानेन्द्रियों के सम्पर्क में आने वाली क्रियाओं पर नहीं। चक्षु-पट के समपर्क में चाहे प्रकाश आये चाहे प्रकाश से भिन्न अन्य प्रकार का दबाव आये, मस्तिष्क को यही सूचना मिलेगी कि सम्पर्क स्थापित करने वाली 'वस्तु' प्रकाशित है। इस प्रकार लोगों की यह प्राचीन धारणा कि हम जो कुछ अनुभव करते हैं वह 'सत्य' नहीं बल्कि माया है, और भी पुष्ट हो चली।

१८३३ में 'ब्यूमान्ट' नामक एक अमेरिकन फ़ौजी डाक्टर ने पाचन क्रिया सम्बन्धी तथ्यों को प्रकाशित किया। उसे ये तथ्य एक बीमार व्यक्ति के अध्ययन से प्राप्त हो सके जिसके पेट में गोली लगने से

सूराख हो गया था। क्लाडे बर्नार्ड (१८१३-७८) ने इसी प्रकार का अध्ययन जानवरों के सम्बन्ध में किया। उसने यह सिद्ध किया कि उन चर्बियों को जो मेदे से अंतड़ियों के ऊपरी हिस्से में आती हैं, एक प्रकार का रस विघटित कर देता है और उन्हें तेज़ाब तथा ग्लिसरीन में परिवर्तित कर देता है। यही रस स्टार्च को चीनी में परिवर्तित करता है और प्रोटीन को गलाता है।

ड्यूमा और ब्यूसिनाट ने यह मालूम किया कि पेड़ पौधे अकार्बनिक पदार्थों को ग्रहण कर उन्हें कार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित करते हैं। परन्तु जीव जन्तु इन कार्बनिक पदार्थों को अकार्बनिक पदार्थों में विघटित कर अपने जीवन का पोषण करते हैं। परन्तु बर्नार्ड ने कुत्तों पर प्रयोग कर यह सिद्ध कर दिया कि यकृत, रक्त से कार्बोहाइड्रेट 'डेक्स्ट्रोज़' बनाता है जो एक कार्बनिक पदार्थ है। उसने यह भी मालूम किया कि यकृत, स्टार्च जैसा एक पदार्थ बनाता है और यह पदार्थ डेक्स्ट्रोज़ की उत्पत्ति करता है। इस प्रकार उसने सिद्ध किया कि जीव जन्तु भी कुछ कार्बनिक पदार्थों की रचना करते हैं यद्यपि यह क्रिया साधारणतया पेड़ पौधों द्वारा सम्पन्न होती है।

बर्नार्ड ने यह भी स्पष्ट किया कि कार्बन मानोक्साइड गैस किस प्रकार विषैला प्रभाव उत्पन्न करती है। रक्त के लाल कणों में पाये जाने वाले 'हैमोग्लोबिन' से आक्सीजन को हटाकर यह स्वयं उसका स्थान ग्रहण कर लेती है। ऐसी अवस्था में हैमोग्लोबिन अकर्मण्य हो जाता है और वह फिर शरीर के अंगों तक आक्सीजन ले जाने में असमर्थ हो जाता है।

बहुत से वैज्ञानिकों द्वारा मालूम किये गये तथ्यों के आधार पर यह सिद्धान्त स्थापित सा हो गया कि वनस्पतियों और जानवरों के अंगों की रचना बहुत से सेलों से होती है। इन सेलों की रचना भ्रूणावस्था में ही हो जाती है। हार्वे और उल्फ ने भ्रूण सम्बन्धी अध्ययन को पहले ही पर्याप्त रूप में विकसित कर दिया था। इस अध्ययन को बेयर

(१७९२-१८७६) ने और आगे बढ़ाया। उसने यह मालूम किया कि भ्रूण की वृद्धि के साथ-साथ सेल किस प्रकार बदलते और संख्या में बढ़ते हैं। उसने फिर से यह मालूम किया कि अपने बच्चों को दूध पिलाने वाले जानवरों की मादाओं में रज होता है। आधुनिक भ्रूण-विज्ञान को विकसित करने में उसने बहुत कार्य किया। उस समय प्रचलित इस सिद्धान्त का उसने विरोध किया कि अपने जीवन काल में एक भ्रूण क्रम से उन सब अवस्थाओं से होकर गुज़रता है जिनसे होकर उसकी जाति अपने वर्तमान रूप में विकसित हो सकी है।

वान मोल ने सेल के भीतर पाये जाने वाले पदार्थों का अध्ययन किया और सेल की दीवारों के भीतर पाये जाने वाले गाढ़े द्रव के समान पदार्थ का उसने प्रोटोप्लाज़्म नाम रखा। शुल्ट्ज़ के अनुसार केन्द्र युक्त प्रोटोप्लाज़्म ही सेल है और यही प्रोटोप्लाज़्म जीवन का भौतिक आधार है। वर्चाउ ने इस सेल सिद्धान्त का उपयोग बीमार अंगों के अध्ययन के लिए किया। मेच्निकाफ़ ने यह मालूम किया कि रक्त में पाये जाने वाले श्वेत कण विषैले कीटाणुओं को नष्ट कर सकते हैं।

'शक्ति की अक्षुणता' सिद्धान्त के अनुसार शरीर द्वारा सम्पादित कार्यों के लिए जितनी शक्ति की आवश्यकता होती है वह शक्ति भोजन में निहित रासायनिक और ताप शक्ति द्वारा प्राप्त होती है। ऐट्वेटर और ब्रियान्ट ने अमेरिका में प्रयोगों द्वारा मालूम किया कि एक ग्राम प्रोटीन और चर्बी क्रम से ४ और ८.९ कैलरी (यह कैलरी उस कैलरी से १००० गुना अधिक होती है जो एक ग्राम जल का तापक्रम १ डिग्री सेंटीग्रेड चढ़ा देती है।) ताप दे सकते हैं। खेत में काम करनेवाले जानवरों पर प्रयोग कर टी० बी० उड ने मालूम किया कि कितना भोजन उस जानवर के लिये चाहिये जिसे केवल उसकी वर्तमान दशा में जीवित रखना है और उस जानवर के लिये कितना भोजन चाहिये जिसकी वृद्धि भी अपेक्षित है और जिससे दूध आदि भी प्राप्त करना है। एक मनुष्य

जो कोई शारीरिक परिश्रम नहीं करता उसके लिए प्रतिदिन २४५० कैलरी ताप देने वाला भोजन आवश्यक है। परन्तु कठिन परिश्रम करने वाले मज़दूर को ५५०० कैलरी देने वाला भोजन चाहिये। भोजन किये गये पदार्थ में निहित शक्ति की मात्रा ठीक उस शक्ति की मात्रा के बराबर होती है जो शारीरिक श्रम, शरीर के ताप आदि में व्यय होती है। और यही 'शक्ति-अक्षुणता सिद्धान्त' द्वारा अपेक्षित भी है।

जिस समय की हम चर्चा कर रहे हैं उस काल में शरीर के सूक्ष्म तन्तुओं के अध्ययन में भी काफ़ी प्रगति हुई। मस्तिष्क की क्रियायें स्थानीय होती हैं, इस ओर कुछ लोगों ने संकेत किया था। गाल ने इसका विस्तृत रूप से अध्ययन किया। उसने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि तन्तुओं में पाया जाने वाला हरा पदार्थ क्रियाशील होता है और श्वेत पदार्थ केवल सम्बन्ध स्थापित करने का काम करता है। बेल द्वारा विकसित इस धारणा को कि रीढ़ के तन्तुओं की बाहरी और भीतरी जड़ों का भिन्न-भिन्न कार्य होता है, मैजेन्डी ने सत्य सिद्ध कर दिया। मार्शल हाल तथा अन्य वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया कि कुछ क्रियायें जान-बूझ कर की जाती हैं परन्तु बहुत सी क्रियायें अनजान में अपने आप होती रहती हैं। जीवन की साधारण क्रियायें जैसे सांस लेना, छींकना आदि अपने आप घटित होने वाली क्रियाओं की उदाहरण हैं। और भी बहुत सी क्रियायें जिनके सम्बन्ध में पहले यह धारणा थी कि वे जान-बूझ कर की जाने वाली क्रियाओं में हैं, उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में चारकोट द्वारा अनजान क्रियाओं की श्रेणी में स्वीकार की गईं। बर्नार्ड ने 'वैसो-मोटर' तन्तुओं का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि वे अनजान में ही विभिन्न भावनाओं के आघातों से क्रियाशील हो जाती हैं, और रक्त-नलियों में रक्त प्रवाह का नियंत्रण करती हैं। वेबर ने यह मालूम किया कि कुछ तन्तुओं की क्रियाशीलता से 'अवरोधक क्रियायें' अस्तित्व में आती हैं जैसे 'वैगस तन्तु' के उत्तेजित हो जाने से हृदय की धड़कन रुक जाती है।

रासायनिक क्षेत्र में ऐसे उदाहरण बहुत मिलते हैं जब किसी पदार्थ की उपस्थिति से रासायनिक क्रिया शीघ्रता और सरलता से सम्पन्न होने लगती है परन्तु क्रिया के अन्त में वह पदार्थ ज्यों का त्यों बना रहता है। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो पाता है। ऐसी क्रिया को हम प्रवर्तक-क्रिया कह सकते हैं और उस पदार्थ को प्रवर्तक पदार्थ। जीव जन्तुओं के शरीरों और पेड़ पौधों में घटित होने वाली बहुत सी क्रियाओं का अध्ययन भी उपर्युक्त प्रवर्तक क्रिया के आधार पर करने का प्रयत्न किया गया। जीव विज्ञान के क्षेत्र में पाये जाने वाले प्रवर्तक पदार्थों का नाम 'कुने' ने १८७८ में 'एन्ज़ाइम' रखा। एक प्रकार के एन्ज़ाइम केवल एक विशेष प्रकार की ही क्रिया के सम्पादित होने में सहायक सिद्ध होते हैं। स्टार्च और प्रोटीन को एन्ज़ाइम ही विघटित करते हैं। ग्लैंडों और उनके रसों के अध्ययन में इस प्रकार की क्रियाओं का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। १८८४ में शिफ ने मालूम किया कि यदि किसी जानवर के शरीर में से थायरायड ग्लैंड निकाल लिया जाय परन्तु उसे उसी ग्लैंड का रस भोजन में मिला कर दिया जाय तो उस जानवर पर कोई बुरा असर नहीं पड़ता। यह मालूम होने पर कि मनुष्यों में बुद्धिहीनता का कारण उनके थायरायड ग्लैंड की शक्तिहीनता है, उन्हें इस ग्लैंड के रस का इंजेक्शन देकर फिर से बुद्धिमान् बनाना सम्भव हो सका। इस प्रकार बहुत से बालक जो बड़े होकर मूर्खता का जीवन व्यतीत करने के लिये बाध्य हुए होते, इस ज्ञान के कारण बुद्धिमान् और सुखी बनाये जा सके हैं।

कीटाणु-शास्त्र—१८३८ के आस-पास कैग्नियर्ड और श्वैन ने मालूम किया कि शराब आदि खमीर उठाने वाले पदार्थों के निर्माण के लिये जो 'ईस्ट' प्रयुक्त होता है उसकी रचना सूक्ष्म जीवित सेलों से होती है। श्वैन ने यह भी सिद्ध कर दिया कि ऐसे ही सेलों की क्रियाशीलता के कारण वस्तुएँ सड़ती हैं। यदि पदार्थों को गरम कर उनके भीतर स्थित इन जीवित सेलों को नष्ट कर दिया जाय और इन पदार्थों को वायु के सम्पर्क में न आने दिया जाय तो वे न तो सड़ सकते हैं न

उनमें खमीर उठ सकता है। यदि उन्हें वायु के सम्पर्क में लाना आवश्यक ही हो तो ऐसी वायु के सम्पर्क में लाया जाय जो गरम नली से होकर गुज़र चुकी हो। ऐसा करने से वायु-स्थित सेल नष्ट हो जायँगे और इस प्रकार शुद्ध की हुई वायु पदार्थों को प्रभावित न कर सकेगी।

लुई पास्टियर (१८२२-६५) ने उपर्युक्त तथ्यों को और भी पुष्टता प्रदान की और उसने यह भी सिद्ध किया कि ऐसे ही सेलों की क्रिया-शीलता के कारण शराब खट्टी हो जाती है और रेशम के कीड़े बीमार पड़ते हैं। पागल कुत्तों के काटने से जानवरों और मनुष्यों को जो बीमारी हो जाती है उसको जन्म देने में भी इन्हीं सेलों का हाथ होता है। जेनर ने मालूम किया था कि टीका लगा देने से चेचक की बीमारी नहीं होती। पास्टियर ने कुत्तों पर प्रयोग कर यह भी मालूम किया कि यदि किसी कुत्ते को हल्के विष का इंजेक्शन दे दिया जाय तो वह पागल कुत्ते के काटने से बीमार नहीं हो सकता। इस प्रकार उसने मनुष्यों को पागल कुत्तों के काटने से होने वाली बीमारी से बचाने का उपाय मालूम कर लिया। उपर्युक्त सब बीमारियों में से प्रत्येक बीमारी एक विशेष प्रकार के सेल या 'बेक्टिरिया' द्वारा अस्तित्व में आती है। इन सेलों को निचोड़ने से प्राप्त 'एनज़ाइम' भी इन बीमारियों को पैदा कर सकते हैं।

लिस्टर ने पास्टियर द्वारा मालूम किये गये तथ्यों का उपयोग चीर-फाड़ के काम में किया और घाव को सड़ने से बचाने के लिये उसने कार्बोलिक एसिड का प्रयोग किया। उसने यह भी सिद्ध किया कि घाव को सड़ने से बचाने का सबसे सरल उपाय यह है कि पूर्ण सफ़ाई रखी जाय। लिस्टर की विधि तथा डेवी, मार्टन और सिम्पसन द्वारा आविष्कृत चेतना-नाशक पदार्थों के कारण वे आपरेशन भी सम्भव हो सके जो पहले असम्भव समझे जाते थे।

काच ने मालूम किया कि मनुष्यों और जानवरों के रक्त के विषाक्त हो जाने से उत्पन्न होने वाला भयंकर ऐन्थ्रैक्स' रोग जिन कीटाणुओं के कारण अस्तित्व में आता है उन कीटाणुओं के बीजों को नष्ट करना उन

कीटाणुओं को नष्ट करने की अपेक्षा कहीं कठिन कार्य है। तपेदिक रोग को जन्म देने वाले कीटाणुओं का भी उसने पता लगा लिया। कुछ रोगोत्पादक कीटाणुओं का जीवन-इतिहास बहुत उलझा हुआ होता है। उनको कई अतिथियों की आवश्यकता होती है। मलेरिया के कीटाणु जो मच्छरों द्वारा ले जाये जाते हैं उनमें से एक हैं। माल्टीज़ ज्वर के जन्मदाता कीटाणु अपने जीवन का कुछ काल बकरों के शरीर में व्यतीत करते हैं।

जीवित कीटाणुओं या बैक्टिरिया से भी सूक्ष्म एक प्रकार के निर्जीव पदार्थ होते हैं जिन्हें 'वाइरस' या विष कहते हैं। इन्हें साधारण सूक्ष्म दर्शी यंत्र से नहीं देखा जा सकता। इनके सम्बन्ध में आगे चलकर विचार किया जायगा। तम्बाकू से पैदा होने वाली बीमारी के जन्म दाता विष का अध्ययन इवानोस्की ने १८९२ में किया। ऐसे ही एक और विष का अध्ययन १८९३ में लाफ्लर और फ्राश ने किया। फ्राश ने यह भी मालूम किया कि पैर और मुख में होने वाली बीमारियों के जन्मदाता विष उस छलनी से भी होकर गुज़र जाते हैं जो बैक्टिरिया को अटकाने में समर्थ होती है। इन विषों की प्रकृति के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान अभी तक नहीं प्राप्त हो सका है।

स्पष्ट है कि मानव शरीर स्थित विभिन्न अंगों की बनावट तथा उनके कार्य करने के ढंग का ज्ञान जो औषधि विज्ञान और सर्जरी के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है, आरम्भ से लेकर अब तक जानवरों के शरीर पर किये गये विभिन्न प्रयोगों द्वारा ही प्राप्त हो सका है। वे लोग जो इस प्रकार के प्रयोगों को यह कहकर निषिद्ध ठहराने का प्रयत्न करते हैं कि इससे जानवरों को कष्ट होता है या उनकी हत्या होती है, अपने ऊपर एक महान् नैतिक उत्तरदायित्व लेते हैं और इस उत्तरदायित्व की गम्भीरता केवल इस कारण कम नहीं हो सकती कि वे इन प्रयोगों द्वारा होने वाले लाभों की कल्पना करने में असमर्थ हैं।

कार्बन और नाइट्रोजन चक्र—जानवरों और वनस्पतियों का परस्पर सम्बन्ध मालूम करने का प्रयत्न बहुत से अन्वेषकों ने किया।

लिबिग द्वारा इस सम्बन्ध में बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया गया। सूर्य के प्रकाश में पौधों की पत्तियों को हरा रंग प्रदान करने वाला पदार्थ जिसे क्लोरोफिल' कहते हैं, वायु से प्राप्त कार्बन डाइआक्साइड को कार्बन और आक्सीजन में विघटित कर देता है। आक्सीजन हवा में लौट जाती है परन्तु कार्बन पौधों की वृद्धि करने में सहायता देता है। इस प्रकार पौधों की पत्तियाँ पौधों के लिये भोजन तैयार करने की मशीन हैं।

जानवर अपना जीवन या तो वनस्पतियों को खाकर या दूसरे जानवरों को खाकर व्यतीत करते हैं। इस प्रकार जानवरों का जीवन भी सूर्य के प्रकाश में निहित शक्ति के ऊपर निर्भर है। क्योंकि सूर्य के प्रकाश में ही पत्तियाँ अपना कार्य करने में समर्थ होती हैं। सांस लेते समय जानवर कार्बनिक पदार्थों को, कार्बन डाइआक्साइड में तथा अन्य आवश्यक पदार्थों में परिवर्तित करते रहते हैं। भोजन का कुछ अंश मलमूत्र के रूप में बाहर आ जाता है। भोजन में निहित शक्ति का शेष अंश शरीर के ताप के रूप में प्रकट होता है। पेड़ पौधे भी कार्बन डाइआक्साइड बाहर निकालते रहते हैं परन्तु सूर्य के प्रकाश में यह क्रिया बहुत मंद गति से सम्पन्न होती है। इस प्रकार जानवर और पेड़ पौधे दोनों, वायु में लगभग उतनी ही कार्बन डाइआक्साइड जमा करते रहते हैं जितनी पौधे अपनी खुराक के लिये उसमें से निकालते रहते हैं। हमारे काम में न आने योग्य वे कार्बनिक पदार्थ जो पृथ्वी पर इधर उधर फेंक दिये जाते हैं, असंख्य कीटाणुओं (बैक्टिरिया) के शिकार बनते हैं। ये कीटाणु उन पदार्थों को अहानिकर या यों कहिये उपयोगी अकार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित कर देते हैं। इस क्रिया में भी कुछ कार्बन डाइआक्साइड पैदा होती रहती है और हवा में जमा होती रहती है। इस प्रकार कार्बन का चक्र पूरा होता रहता है। अर्थात् जितना कार्बन पौधे अपनी वृद्धि के लिये हवा से लेते हैं, उतना ही कार्बन विभिन्न क्रियाओं के द्वारा हवा में जमा भी होता रहता

है। स्मरण रहे कार्बन डाइऑक्साइड की रचना कार्बन और आक्सीजन के योग से होती है।

प्रकृति-गृह में कार्बन चक्र का अस्तित्व हम देख चुके। एक ऐसे ही दूसरे चक्र, नाइट्रोजन-चक्र का अस्तित्व कुछ दिन बाद मालूम किया जा सका। सहस्रों वर्ष पूर्व रोमन कवि 'वर्जिल' ने अपनी पुस्तक 'जियार्जिक्स' में किसानों को यह सलाह दी थी कि उन्हें जिस खेत में गेहूँ बोना हो उसमें पहले मटर, सेम, चना आदि बोना चाहिये। परन्तु इस सलाह की उपयोगिता का रहस्य १८८८ में हेलरीजल और विल्फार्थ द्वारा मालूम किया जा सका। मटर, चना जैसे पौधों की जड़ों पर घुण्डियाँ होती हैं जिनमें बैक्टिरिया होते हैं। ये बैक्टिरिया हवा से नाइट्रोजन लेकर पौधों की वृद्धि के लिये आवश्यक पदार्थों का निर्माण करते हैं। इस प्रकार निर्मित पदार्थों का कुछ अंश तो वे पौधे जिनकी जड़ों में बैक्टिरिया पाये जाते हैं, स्वयं ग्रहण करते हैं परन्तु कुछ अंश पृथ्वी में पड़ा रहता है जो बाद में बोये जाने वाले गेहूँ के पोषण के लिये उपयोगी सिद्ध होता है। विनोग्राडस्की ने यह भी मालूम किया कि पृथ्वी में कुछ बैक्टिरिया स्वतन्त्र रूप में भी पाये जाते हैं जो वायु से नाइट्रोजन लेकर पौधों के लिये उपयोगी पदार्थ निर्माण करते हैं। नाइट्रोजन से युक्त वे पदार्थ जो निरर्थक समझ कर फेंक दिये जाते हैं, बैक्टिरिया के शिकार होते हैं और उनके द्वारा अमोनिया के नमकों और अन्त में नाइट्रेट में परिवर्तित कर दिये जाते हैं। नाइट्रेट पौधों के सबसे उत्तम और पोषक भोजन हैं। पौधे जब अपनी आवश्यक ख़ुराक मिट्टी से ले लेते हैं तो वह मिट्टी कमज़ोर पड़ जाती है। इस क्षति को कुछ अंश तक प्रकृति पूरा करती रहती है परन्तु यह पर्याप्त नहीं है। इसलिये मिट्टी को उर्वरा बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि उसमें आवश्यक खाद और धातुओं के नमक समय समय पर डाले जाँय।

कृषि के लिये धातुओं के नमकों की उपयोगिता लिबिग ने सिद्ध कर

दी थी परन्तु उसने नाइट्रोजन की आवश्यकता की ओर ध्यान नहीं दिया था। बोसिनो, गिलबर्ट और लास ने पौधों की वृद्धि के लिये नाइट्रोजन का महत्व मालूम किया और कृत्रिम खाद की ओर किसानों का ध्यान आकर्षित किया। ऊपर हम देख चुके हैं कि कुछ बैक्टिरिया वायु से नाइट्रोजन पौधों के लिये लेते हैं परन्तु कुछ बैक्टिरिया ऐसे भी होते हैं जो नाइट्रोजन युक्त पदार्थों को विघटित कर उनके भीतर स्थित नाइट्रोजन को मुक्त कर देते हैं और यह मुक्त हुई नाइट्रोजन वायु में चली जाती है। इस प्रकार प्रकृति में नाइट्रोजन का चक्र चलता रहता है।

भूगोल और भूगर्भ-विज्ञान—१७८४ में ब्रिटेन के फौजी विभाग के तत्वावधान में कुछ पैमायश का कार्य किया गया। इस पैमायश द्वारा मालूम किये गये तथ्यों के आधार पर डो ऐनविली, निर्दोष नक्शों को बनाने में समर्थ हुआ। वान हम्बोल्ट ने पृथ्वी के चुम्बकीय प्रभाव में समय-समय पर होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया। उसी ने प्रथम-प्रथम यह मालूम किया कि कभी-कभी पृथ्वी के चुम्बकीय प्रभाव में असाधारण परिवर्तन हो जाता है। इस असाधारण परिवर्तन को चुम्बकीय आंधी कहते हैं।

पूर्वकाल की अन्वेषण यात्राओं की परम्परा को ध्यान में रखते हुये १८३१ में वैज्ञानिक पर्यवेक्षण के लिये 'बीगल' नामक जहाज़ दक्षिणी अमेरिका के पैटेगोनिया और टेरा डल फ्यूगो प्रदेशों की ओर भेजा गया। इस यात्रा में जीव-विज्ञान सम्बन्धी अध्ययन के लिये चार्ल्स डार्विन को नियुक्त किया गया। कुछ वर्ष पश्चात् जोसफ़ हूकर ने सर जेम्स रास के साथ अन्टार्कटिक प्रदेश की यात्रा की। १८४६ में एच० टी० हक्सले ने रैटल स्नेक जहाज़ पर एक सर्जन की हैसियत से यात्रा की और कई वर्ष आस्ट्रेलिया के निकटवर्ती समुद्रों में पैमायश करने तथा अन्य प्रकार के अध्ययन में व्यतीत किया। इस प्रकार ये तीनों व्यक्ति जिनका आगे चलकर विकासवाद सिद्धान्त की स्थापना में प्रमुख हाथ रहा, कुछ काल तक, वैज्ञानिक अन्वेषण के लिये आयोजित यात्राओं से किसी-न-किसी

रूप में सम्बन्धित रहे। १८७२ में चैलेन्जर जहाज़ अटलांटिक और प्रशान्त महासागर में समुद्री पैमाइश, वायु मंडल सम्बन्धी अध्ययन तथा प्राकृतिक इतिहास के अध्ययन के लिये भेजा गया। मारी नामक अमेरिकन वैज्ञानिक ने हवावों और समुद्री धाराओं का अध्ययन किया। इस अध्ययन के परिणाम-स्वरूप समुद्री यात्रा में बहुत प्रगति हुई। इस प्रकार का अध्ययन मारी से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले डैम्पियर ने भी किया था। समुद्र में पाये जाने वाले जीव जन्तुओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया कि असंख्य प्रकार के जीव समुद्र में निवास करते हैं। छोटे से छोटे आकार के जीव 'प्लैंक्टन' से लेकर बड़े से बड़े जीव समुद्र में पाये गये। प्लैंक्टन इतने सूक्ष्म आकार के होते हैं कि उन्हें केवल सूक्ष्म-दर्शी यंत्र की सहायता से ही देखा जा सकता है।

१८३३ में सर चार्ल्स लियेल ने जब अपनी पुस्तक 'भूगर्भ-सिद्धान्त' में पृथ्वी की विभिन्न परतों की रचना तथा प्राचीन काल के जानवरों और पेड़ पौधों के पाषाण रूप में पाये जाने वाले अवशेषों की बनावट के सम्बन्ध में प्राप्त सब प्रमाणों को एकत्र किया तब हटन के 'नियमित सिद्धान्त' को बहुत बल मिला। 'प्रस्तर रूप अवशेषों' के अध्ययन से पता चलता है कि विशेष समयों पर जलवायु में असाधारण परिवर्तन हुआ था। ऐगसिज़ और बकलैंड १८४० के आस-पास, जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी प्रमाण, हिमधाराओं (ग्लैशियर) के अध्ययन से भी प्राप्त करने में समर्थ हुये। विभिन्न स्थानों पर पाये गये प्राचीन पत्थर और हड्डी के औज़ारों के आधार पर १८६३ में लियेल यह दिखाने में समर्थ हुआ कि वनस्पति-जन्तु शृंखला में मनुष्य अंतिम कड़ी है। उसने यह भी सिद्ध किया कि मनुष्य इस पृथ्वी पर बाइबिल द्वारा निर्धारित समय से बहुत पहले ही अस्तित्व में आ चुका था। लियेल के पश्चात् इस दिशा में बहुत प्रगति हुई और इस सम्बन्ध में बहुत से प्रमाण प्राप्त हुये। और आज हम इस स्थिति में हैं कि कह सकें कि मनुष्य आज से दस लाख से लेकर एक करोड़ वर्ष पूर्व कभी इस पृथ्वी पर अस्तित्व में आया था।

विकासवाद तथा प्राकृतिक-वरण—विकासवाद के सम्बन्ध में अस्पष्ट धारणायें कुछ प्राचीन यूनानी दार्शनिकों के मस्तिष्कों में भी थीं। प्राचीन परमाणुवादियों का विचार था कि प्रत्येक जीवधारी की उत्पत्ति आरम्भ में स्वतंत्र रूप से हुई थी परन्तु इस प्रकार उत्पन्न हुये सब जीवों का वंश नहीं चल सका। केवल वे ही जीव अपने वंश की परम्परा चालू रखने में समर्थ हो सके जो अपने आस-पास के वातावरण और जलवायु को सहन करने में समर्थ थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन और वातावरण के पारस्परिक सम्बन्ध से, जो विकासवाद की आधार-शिला है, प्राचीन विचारक अवगत थे। अरस्तू के समय तक लोग यहाँ तक विश्वास करने लग गये थे कि अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण जीव, न केवल अपूर्ण जीवों के बाद उत्पन्न हुये बल्कि उन्हीं से विकसित हुये। परन्तु यह सब केवल कल्पना की उड़ान थी। इन विश्वासों के लिये कोई प्रमाण नहीं था।

आधुनिक काल में विकासवाद की धारणा पुनर्जीवित हुई। बेकन, डकार्ट, लिबनिज़ और कान्ट आदि दार्शनिकों ने इस सम्बन्ध में अपने-अपने विचार प्रकट किये। कुछ दार्शनिकों जैसे हीगल ने विकासवाद को वास्तविक रूप में न लेकर केवल आदर्श रूप में स्वीकार किया। परन्तु हर्बर्ट स्पेन्सर ने विकासवाद के प्रवर्तक डार्विन की प्रसिद्ध पुस्तक के प्रकाशित होने के कुछ दिन पहले ही से इस सिद्धान्त का पूर्ण रूप से समर्थन करना आरम्भ कर दिया था। यह एक आश्चर्य की बात है कि जहाँ दार्शनिक इस सिद्धान्त के पक्ष में थे, वहाँ जीव-शास्त्र वेत्ताओं में से अधिकांश इसके विपक्ष में थे। परन्तु कुछ जीव-शास्त्र-वेत्ता विकास वाद के समर्थक भी थे और इसकी सत्यता सिद्ध करने के लिये, वे प्रमाण प्रस्तुत करने के प्रयत्न में लीन थे। इस दिशा में उन्होंने एक प्रबल प्रमाण यह पेश किया कि उन सब जीवों के ढाँचे जिनमें उष्ण रक्त प्रवाहित होता रहता है लगभग एक से होते हैं।

विकासवाद को पूर्णतया वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रथम

श्रेय लामार्क (१७४४-१८२९) को प्राप्त है। उसकी धारणा थी कि यदि वातावरण के प्रभाव से किसी जीव में स्थायी परिवर्तन या संशोधन हो जाय तो यह संशोधन और परिवर्तन उससे उत्पन्न पीढ़ी में भी लक्षित होगा। इस पीढ़ी के जीव पहली पीढ़ी के जीवों से, इस दृष्टि कोण से, भिन्न प्रकार के होंगे। यद्यपि इस प्रकार की धारणा के लिये कोई प्रमाण नहीं था फिर भी इस धारणा ने वैज्ञानिकों को अपना कार्य आगे बढ़ाने के लिये एक काम चलाऊ आधार अवश्य उपस्थित कर दिया। यही नहीं, उन्नीसवीं शताब्दी में इस विश्वास पर कि पिता द्वारा किये गये शारीरिक, मानसिक और नैतिक सुधार, पुत्र में भी लक्षित होंगे, बहुत-सी सामाजिक और नैतिक योजनायें सोची गईं। संत हिलेयर और राबर्ट चैम्बर्स का भी ऐसा ही विश्वास था। चैम्बर्स की पुस्तक 'सृष्टि के चिह्न' ने लोगों को आने वाले विकासवाद सिद्धांत को स्वीकार करने के लिये तैयार कर रखा था।

परन्तु वह व्यक्ति जिसकी पुस्तक ने डार्विन और वैलस का ध्यान विकास वाद की ओर आकर्षित किया पादरी मैल्थस (१७६६-१८३४) था। मैल्थस ने देखा कि इंगलैण्ड की आबादी तीव्र वेग से बढ़ रही है। उसने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि मनुष्य जाति इतनी तेज़ी से संख्या में बढ़ रही है कि यदि अनावश्यक व्यक्तियों को नष्ट न किया गया तो उपलब्ध खाद्य-सामग्री सबके लिये पर्याप्त न हो सकेगी। उसका यह सिद्धान्त भले ही भ्रम पूर्ण हो परन्तु इसने डार्विन को बहुत प्रभावित किया। डार्विन लिखता है:—

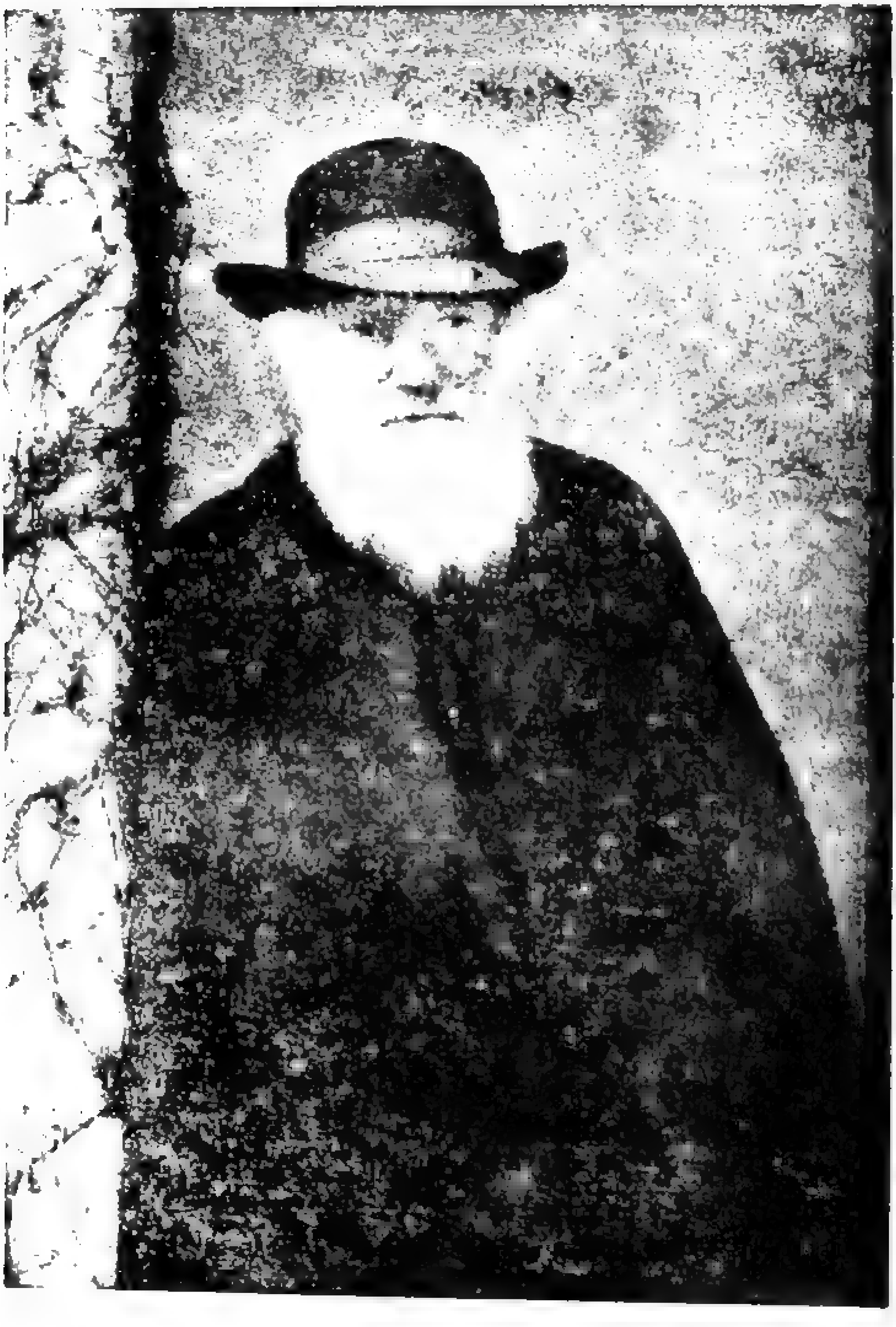
'अक्टूबर १८३८ में दिल बहलाव के लिये मैं मैल्थस के आबादी सम्बन्धी विचार पढ़ रहा था। मैं पिछले कई वर्षों से लगातार जानवरों और वनस्पतियों की आदतों का अध्ययन कर रहा था। इस अध्ययन के आधार पर मैं 'जीवन के लिये संघर्ष' सिद्धान्त को स्वीकार करने के लिये बिल्कुल तैयार था। प्रकृति में यह संघर्ष प्रतिक्षण देखा जा सकता है। अपनी मनोदशा की इस पृष्ठ-भूमि में मैल्थस की पुस्तक पढ़ते-पढ़ते अक-

स्मात् मेरे मन में यह विचार उदय हुआ कि जीवों में परिस्थियों के कारण उत्पन्न हुये परिवर्तन यदि अनुकूल हुये तो वे स्थायी होने का प्रयत्न करेंगे परन्तु यदि वे प्रतिकूल हुये तो नष्ट हो जायँगे। अनुकूल और प्रतिकूल परिवर्तनों के क्रमशः सुरक्षित और नष्ट होने का परिणाम होगा नये प्रकार के जीवों की सृष्टि। इस नये विचार ने आगे कार्य करने के लिये मुझे प्रेरणा प्रदान की।'

अनेक तथ्यों का संग्रह करने, जानवरों और वनस्पतियों की नई नस्लें उत्पन्न करने तथा कृत्रिम रूप से उनमें परिवर्तन लाने के प्रयत्न में डार्विन ने लगभग २० वर्ष लगा दिये। १८४४ तक ही उसे यह विश्वास हो गया था कि वातावरण के प्रभाव से जीवों में स्पष्ट परिवर्तन किये जा सकते हैं और कालान्तर में एक प्रकार के जीव से दूसरे प्रकार के जीव विकसित हो सकते हैं। परन्तु वह और भी अधिक प्रमाण प्राप्त करने के प्रयत्न में लगा रहा। १८ जून १८५८ को वैलस ने डार्विन के पास अपना वह निबंध भेजा जिसे उसने मैल्थस की पुस्तक पढ़ने के बाद लिखा था। डार्विन को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वैलस भी उसी निष्कर्ष पर पहुँचा है जिस पर डार्विन स्वयं स्वतन्त्र रूप से कुछ दिन पूर्व ही पहुँच चुका था। लियेल और हूकर के प्रयत्न से वैलस का वह निबंध 'लिनियन सोसाइटी' के समक्ष १ जुलाई १८५८ को पढ़ा गया। वहीं डर्विन का वह पत्र भी जो उसने १८५७ में आसा ग्रे को लिखा था, पढ़ा गया। डार्विन ने १८४४ में ही अपने सिद्धान्त को लिपि बद्ध कर रखा था। उसका संक्षिप्त विवरण भी उपर्युक्त सभा के सामने पढ़ा गया। इसके बाद डार्विन ने अपने प्रयत्नों, प्रयोगों और उनके द्वारा प्राप्त तथ्यों का विवरण लिखना आरम्भ किया और २४ नवम्बर को उसकी संसार प्रसिद्ध महान् पुस्तक 'जीवों का विकास' प्रकाशित हुई।

चार्ल्स राबर्ट डार्विन (१८०९–८२) एक योग्य डाक्टर का पुत्र था। डार्विन के प्रपितामह का भी विज्ञान की ओर झुकाव था।

किसी भी मनुष्य जाति के व्यक्ति जन्म से ही गुण में परस्पर एक



चार्ल्स डार्विन

दूसरे से भिन्न होते हैं। यह बात वनस्पति जगत् में भी सत्य है। जन्म-गत गुणों की दृष्टि से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से या उसी जाति का एक पौधा दूसरे पौधे से भिन्न क्यों होता है इसका कारण बतलाने में डार्विन असमर्थ था। वह केवल इस विभिन्नता का अस्तित्व स्वीकार करके ही संतुष्ट था। डार्विन के विचार को समझने के लिये कल्पना कीजिये कि किसी विशेष वातावरण में दो व्यक्ति उत्पन्न हुए। एक का शारीरिक गठन दूसरे से भिन्न होगा। यह भी कल्पना कीजिये कि परिस्थिति ऐसी है कि उन दोनों में से केवल एक ही रह सकता है। डार्विन के सिद्धान्त के अनुसार वह व्यक्ति जीवित रहेगा जिसकी शारीरिक रचना आस-पास के वातावरण पर विजय प्राप्त करने के योग्य होगी। दूसरा व्यक्ति जिसका शारीरिक गठन वातावरण के अनुकूल न होगा नष्ट हो जायगा। उपर्युक्त उदाहरण में जीवित रहने और नष्ट हो जाने की बात कही गई है। इसी को यों भी कह सकते हैं कि अनुकूल गठन वाले व्यक्ति का वंश चलेगा परन्तु अयोग्य-शारीरिक गठन वाले व्यक्ति के वंश के चलने की सम्भावना अपेक्षाकृत कम होगी। योग्य व्यक्ति से उत्पन्न जीवों में भी विभिन्नता होगी और उपर्युक्त नियम उनमें भी चरितार्थ होगा। यह क्रिया होती रहेगी और कालान्तर में चलकर बहुत सम्भव है एक ऐसे प्रकार के जीव विकसित हों जो उस व्यक्ति से पूर्णतया भिन्न हों जिसे हम इन नवीन जीवों का आदि पुरुष कह सकते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि उस प्रकारकी भिन्नता से युक्त जीव, जो वातावरण के अनुकूल नहीं होती, कालान्तर में नष्ट हो जाते हैं और अनुकूल भिन्नता वाले जीव जीवित रहते हैं। परन्तु प्रत्येक पीढ़ी में लगातार परिवर्तन होता रहता है और कुछ काल बाद ऐसे जीव अस्तित्व में आ जाते हैं जो अपने वर्तमान रूप में पहले नहीं थे। इस क्रान्तिकारी धारणा और सिद्धान्त से संसार १८५८ के पूर्व बिल्कुल अपरिचित था।

हक्सले, आसा ग्रे, ल्यूबक और कार्पेन्टर के अविलम्ब डार्विन के उपर्युक्त सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। १८६४ तक लियेल भी इस

सिद्धान्त के पक्ष में हो गया। हक्सले, डार्विन का प्रबल समर्थक हो गया और उसके लिये उपर्युक्त सिद्धान्त अन्धकार में विद्युत्-प्रकाश के समान प्रतीत हुआ। उसने लिखाः—

सृष्टि रचना के सम्बन्ध में बाइबिल में जो वर्णन है यदि उसे सत्य न माना जाय तो उसके स्थान पर दूसरा कौन सा सिद्धान्त पेश किया जा सकता है जो एक सतर्क तार्किक व्यक्ति को युक्ति-संगत प्रतीत हो? इस प्रश्न का मेरे पास १८५७ के पहले कोई उत्तर नहीं था और मेरा विश्वास है किसी के पास इसका उत्तर नहीं था। परन्तु डार्विन के उपर्युक्त सिद्धान्त ने हमें इस कठिनाई से मुक्त कर दिया। सच पूछिये तो एक वर्ष पश्चात् हम अपनी मूर्खता के लिये अपने को कोसने लगे। प्रथम-प्रथम जब मैंने डार्विन के सिद्धान्त को पूर्णरूप से हृदयंगम कर लिया तो मेरे मन में यही विचार उत्पन्न हुआ कि मैं कितना मूर्ख हूँ कि मुझे यह बात पहले ही नहीं सूझी।

अनुकूल परिवर्तन के स्वयमेव और प्राकृतिक रूप से स्थायी होने की प्रवृत्ति और क्रिया को हम 'प्राकृतिक-वरण' संज्ञा दे सकते हैं। यद्यपि जन्तु और वनस्पति जगत् के रहस्यों का सम्पूर्ण रूप से स्पष्टीकरण करने में यह क्रिया असमर्थ हो सकती है परन्तु इसने एक और उपयोगी और महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत किया। इस क्रिया के आधार पर 'जीव विकास' के सिद्धान्त को स्वीकार करना अनिवार्य-सा हो गया। और जैसे-जैसे समय बीतता गया यह सिद्धान्त उत्तरोत्तर पुष्ट होता गया। फिर भी प्रारम्भ में कुछ जीव-शास्त्र-वेत्ताओं ने इस सिद्धान्त का विरोध किया और प्रसिद्ध शरीर विज्ञान-वेत्ता सर रिचार्ड वोयेन ने इसके विरोध में एक पूरी पुस्तक लिख डाली। बहुत से लोग जो जीव और वनस्पति शास्त्र सम्बन्धी प्रमाणों की समीक्षा और परीक्षा करने में असमर्थ थे, इस सिद्धान्त को एक असम्भव और अविश्वसनीय कल्पना-मात्र समझते थे। यही नहीं वे इस नवीन सिद्धान्त को भयंकर, साधारण बुद्धि के विपरीत तथा धार्मिक और दार्शनिक विश्वासों के लिये घातक भी

समझते थे। शिक्षित व्यक्ति भी सृष्टि सम्बन्धी प्राचीन और नवीन सिद्धान्त को देव-दानव संघर्ष के रूप में देखने का प्रयत्न करते थे और स्वभावतः उनकी सहानुभूति देवताओं की ओर होती थी।

डार्विन ने इन सब समस्याओं पर विचार करते समय मध्य का रास्ता ग्रहण करना अधिक उचित समझा। उसके मत से यद्यपि विकास का प्रधान कारण प्राकृतिक-वरण है फिर भी उसने लामार्क के इस सिद्धान्त का कि उपयोग या निरुपयोग के द्वारा उत्पन्न कृत्रिम परिवर्तन एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में लक्षित हो सकते हैं, विरोध करना उचित नहीं समझा यद्यपि लामार्क के सिद्धान्त के लिये कोई प्रायोगिक प्रमाण उपलब्ध नहीं था। १८६० में वीज़मैन ने यह सिद्ध कर दिया कि साधारण शारीरिक सेल और वीर्य (जर्म) सेल में भेद होता है। शारीरिक सेल केवल अपने जैसे सेलों को ही उत्पन्न कर सकते हैं परन्तु वीर्य सेल न केवल अपने जैसे ही एक दूसरे जीव के वीर्य सेल को उत्पन्न करते हैं बल्कि उसके शरीर में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के सेलों को भी उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। किसी जीव के गुणों का सार, वीर्य सेल में निहित होता है। शरीर के विभिन्न अंगों पर वातावरण के कारण पड़ा हुआ प्रभाव वीर्य सेल को प्रभावित करने में असमर्थ होता। इसलिए कृत्रिम रूप से उत्पन्न परिवर्तन एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में नहीं लक्षित हो सकते। वीज़मैन के इस नवीन सिद्धान्त के प्रकाश में यह देखना सरल हो गया कि एक पीढ़ी में उत्पन्न कृत्रिम परिवर्तन दूसरी पीढ़ी में क्यों नहीं लक्षित होते हैं।

विशुद्ध 'डार्विनवाद' के समर्थकों की धारणा थी कि जीवों में पाई जाने वाली जन्मगत और स्वाभाविक विभिन्नता 'प्राकृतिक-वरण' के लिए उत्तरदायी है और प्राकृतिक-वरण पर विकास-क्रिया अवलम्बित है। परन्तु जानवरों की उत्पत्ति और उद्यान विज्ञान में दिलचस्पी लेने वाले लोग जानते थे कि कभी-कभी अकस्मात्, एक जीव या पौधा अपने से पूर्णतया भिन्न जीव या पौधे को जन्म देने में समर्थ होता है।

विशेषकर ऐसे अकस्मात् महान् परिवर्तन उस स्थिति में अधिक देखने में आते हैं जब दो विभिन्न जाति के जीव, या पौधे जनन क्रिया में भाग लेते हैं। इस प्रकार नये प्रकार के जीव अल्पकाल में ही उत्पन्न किये जा सकते हैं। इस सम्भावना के प्रकाश में आते ही लोगों का ध्यान १९०० में, मेन्डेल के विस्मृत कार्य की ओर आकर्षित हुआ और इस प्रकार एक नये अध्याय का आरम्भ हुआ।

मानव-विज्ञान (ऐन्थ्रापालोजी)—डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त के प्रकाश में मानव-विज्ञान का अध्ययन एक नये दृष्टि-कोण से होने लगा। विकासवाद सम्बन्धी वाद-विवाद ने हक्सले को मानव-खोपड़ी का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। यहीं से भौतिक गुणों का ठीक-ठीक मान मालूम करने का प्रयत्न भी आरम्भ हुआ। विश्व के विभिन्न प्रदेशों से अन्वेषकगण केवल जानवर और पौधे ही नहीं लाये, बल्कि अपने साथ विभिन्न जातियों द्वारा निर्मित औद्योगिक और कलात्मक वस्तुयें तथा उन जातियों के धार्मिक विश्वासों पर प्रकाश डालने वाली बहुत सी वस्तुयें और पुस्तकें भी लाये। इस प्रकार मानव-प्रकृति के अध्ययन के लिए बहुत सी सामग्री एकत्रित हो गई।

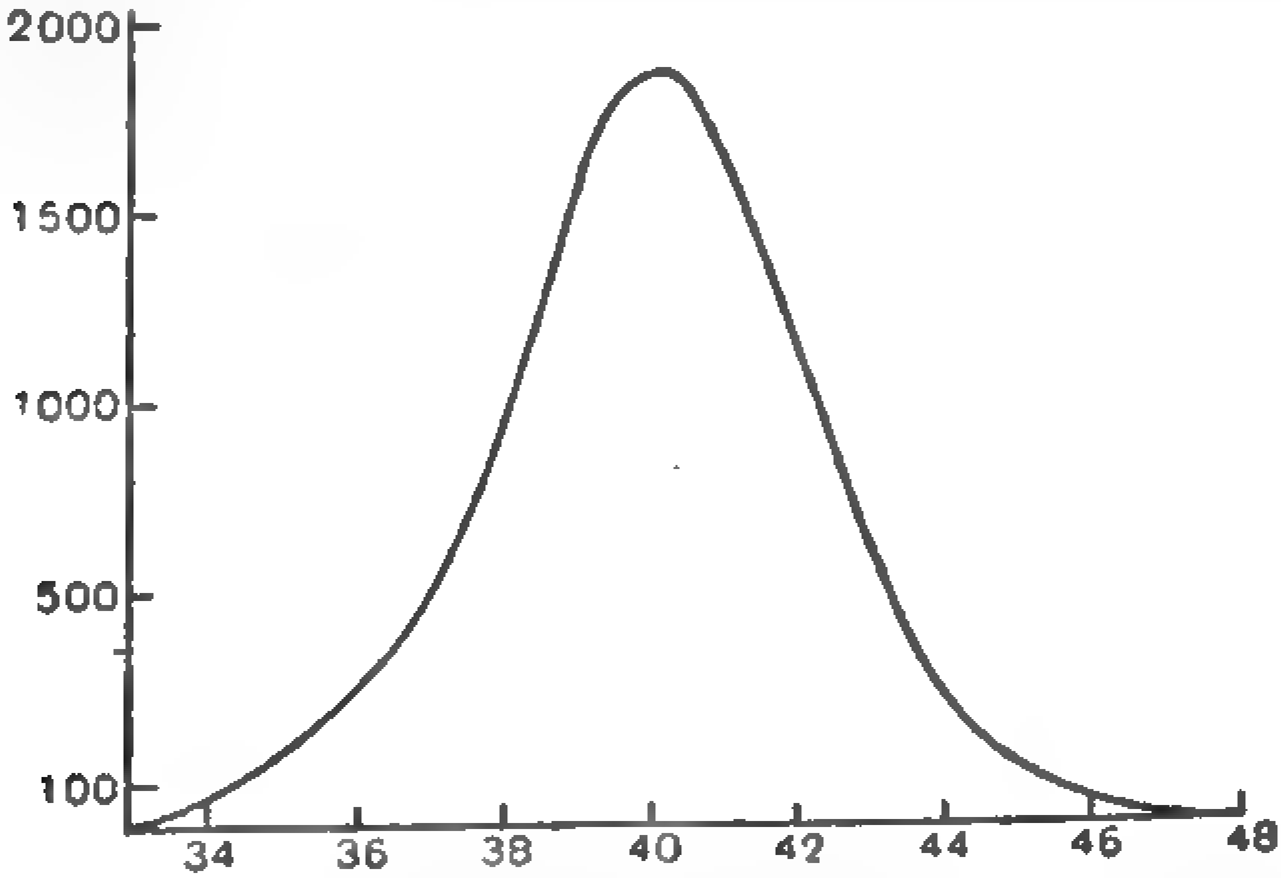
पृथ्वी पर पाये जाने वाले मानव-चिह्नों के आधार पर मानव-प्रकृति-सम्बन्धी प्राप्त ज्ञान का वर्णन लियेल ने किया था। उसके पश्चात् बहुत से नये तथ्य इस सम्बन्ध में और प्राप्त हुए। उन्नीसवीं शताब्दी में कन्दराओं और गुफाओं की दीवारों पर ऐतिहासिक काल से पूर्व पृथ्वी पर विचरण करने वाले बहुत से जानवरों जैसे बिसन (गाय जैसा जंगली जानवर) और मैमथ (हाथी जैसा विशाल रोंयेदार जानवर) आदि के चित्र पाये गये। १८२६ में निन्डर्थल और १८८६ में स्पाई के पास प्राथमिक मनुष्य के चिह्न प्राप्त हुये। १८९२ में जावा में ड्यूबायस को कुछ ऐसी हड्डियाँ मिलीं जिनके विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि वे एक ऐसे जीव की हड्डियां हैं जो शारीरिक गठन की दृष्टि से मनुष्य से मिलते-जुलते बन्दर और प्राथमिक मनुष्य के बीच का प्राणी कहा जा

सकता है। आजकल पृथ्वी पर पाये जाने वाली किसी बन्दर जाति से मनुष्य की उत्पत्ति नहीं हुई है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि आज की कुछ बन्दर जातियों और मनुष्य जाति के पूर्वज एक ही थे।

सर विलियम पेटी और जॉन ग्रान्ट ने सत्रहवीं शताब्दी में मानव अध्ययन के लिये 'बहुसंख्यक' (स्टेटिस्टिकल) प्रणाली का प्रयोग किया था। इस प्रणाली के अनुसार मनुष्य या पदार्थ के किसी गुण या प्रकृति विशेष की जानकारी प्राप्त करने के लिये केवल एक व्यक्ति या थोड़े से पदार्थ का अध्ययन नहीं किया जाता, बल्कि बहुत से व्यक्तियों और उस पदार्थ के विभिन्न रूपों का अध्ययन आवश्यक समझा जाता है। १८३५ में और उसके बाद, बेल्जियम के वैज्ञानिक क्वेटिलेट ने भी उपर्युक्त पद्धति का अनुसरण किया। अपने अध्ययन के पश्चात् वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि स्काटलैण्ड के अधिकांश सैनिकों के सीने की चौड़ाई या फ्रांस के अधिकांश सैनिकों की ऊँचाई क्रम से एक औसत चौड़ाई और एक औसत ऊँचाई के आस-पास होती है। इस औसत से कम या अधिक की ओर जितना ही दूर हटा जायगा सैनिकों की संख्या उतनी ही कम होती जायगी। ठीक वैसे ही जैसे अधिकांश गोलियां लक्ष्य बिन्दु के आस-पास गिरती हैं और उस बिन्दु से दूरी जितनी ही बढ़ती जाती है वहां गिरने वाली गोलियां की संख्या भी घटती जाती है।

१८६९ में डार्विन के चचेरे भाई फ्रैन्सिस गाल्टन ने उपर्युक्त प्रणाली का प्रयोग मानसिक गुणों के अध्ययन के लिये किया। एक परीक्षा में परीक्षार्थियों द्वारा प्राप्त अंकों की समीक्षा करने के बाद वह इस नतीजे पर पहुँचा कि मानसिक-क्षेत्र में भी वही नियम लागू होते हैं जो भौतिक क्षेत्र में। हममें से अधिकांश की बुद्धि-शक्ति मध्यम श्रेणी की होती है। तीव्र बुद्धि और मंद बुद्धि वालों की संख्या लगातार कम होती है। यहाँ तक कि अत्यन्त मेधावी और अत्यंत बुद्धि-हीन व्यक्तियों की संख्या बहुत ही कम होती है। उस परीक्षा में सबसे उच्च स्थान प्राप्त करने वाले व्यक्ति को मध्यम श्रेणी के निम्नतम व्यक्ति से तीस-गुना अधिक

अंक मिले। इसका अर्थ यह हुआ कि मंद बुद्धि वालों से परीक्षा में प्रथम आने वाला व्यक्ति, तीस से भी अधिक-गुना अंक प्राप्त कर सकता था। इस प्रकार मानसिक योग्यता के दृष्टिकोण से व्यक्तियों में महान् अंतर होता है। यदि इस नारे का कि 'सब मनुष्य समान हैं' अर्थ यह है कि सब मनुष्य बौद्धिक योग्यता में भी समान होते हैं, तो स्पष्ट ही यह नारा नितान्त भ्रमपूर्ण और असत्य है।



जीव विद्या में दोष रेखा

गाल्टन ने इस प्रश्न पर भी विचार किया कि बौद्धिक योग्यता संस्कार रूप में पिता से पुत्र को मिलती है कि नहीं। उसने मालूम किया कि एक जज के लड़के के बुद्धिशाली होने की संभावना एक साधारण व्यक्ति के लड़के की अपेक्षा पांचसौ-गुना अधिक है। यही नहीं, एक जज के पिता के बुद्धिशाली होने की सम्भावना एक साधारण व्यक्ति के पिता की अपेक्षा पांचसौ-गुना अधिक है। यद्यपि निश्चित रूप से भविष्य-वाणी करना सम्भव नहीं है परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि संस्कार रूप में पिता की बौद्धिक योग्यता पुत्र को मिलती है।

इस प्रकार हमें इस धारणा को तिलाञ्जलि दे देनी होगी कि राष्ट्र के सब व्यक्ति समान मानसिक योग्यता से युक्त उत्पन्न होते हैं और केवल शिक्षा और सुअवसर के अभाव से कुछ की बुद्धि विकसित नहीं हो पाती। इस धारणा के स्थान पर इस विचार को पोषित करना चाहिये कि किसी राष्ट्र के सब व्यक्ति संस्काररूप में प्राप्त विभिन्न गुणों, चरित्रों और भिन्न मात्रा की बुद्धि-शक्ति से युक्त होते हैं। प्राकृतिक और कृत्रिम वरण-क्रिया के निरन्तर प्रभाव से कुछ विशेष प्रकार के गुणों और चरित्रों का पोषण होता रहता है परन्तु कुछ की अवनति भी होती रहती है। कोई भी सामाजिक, आर्थिक या वैधानिक घटना इन गुणों और चरित्रों में से कुछ पर अनुकूल और कुछ पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। इस प्रकार राष्ट्र का औसत चरित्र कुछ अंश तक परिवर्तित होता रहता है। आवश्यक संस्कारों को प्रोत्साहित कर मनुष्य जाति या अन्य जीवों में इच्छित सुधार किये जा सकते हैं। ठीक प्रकार के माता-पिता के चुनाव से इच्छित संस्कारों को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। इस प्रकार के विज्ञान को गाल्टन ने 'यूजेनिक्स' नाम दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी का विज्ञान और दर्शन—कान्ट के समय तक दार्शनिक अपने मतों और वादों का प्रतिपादन भौतिक-विज्ञान के प्रकाश में करते थे। परन्तु हीगल और उसके अनुयायियों ने अपने दार्शनिक विश्वासों की आधार शिला पर प्रकृति के सम्बन्ध में एक ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो वैज्ञानिकों के सम्मुख पूर्णतया निरर्थक था। बदले में हीगल ने वैज्ञानिकों और विशेषकर न्यूटन की कटु आलोचना की। प्रसिद्ध कवि 'गेटे' ने जीव और वनस्पति क्षेत्र में जहां तथ्य अपेक्षाकृत अधिक सरलता से मालूम किये जा सकते हैं, महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। परन्तु भौतिक विज्ञान में पदार्पण करते ही उसका मस्तिष्क भ्रामक धारणाओं का शिकार हो गया। उसकी कवि-कल्पना ने उसे विश्वास दिलाया कि उज्ज्वल प्रकाश रंगीन प्रकाशों की अपेक्षा सरल और विशुद्ध होगा और इस सम्बन्ध में न्यूटन का सिद्धान्त

जिसके अनुसार उज्ज्वल प्रकाश रंगीन प्रकाशों का सम्मिश्रण-मात्र है, अवश्य ही असत्य होगा। प्रयोगों द्वारा प्रमाणित तथ्यों और उन तथ्यों के आधार पर निकाले गये निष्कर्षों को स्वीकार करने में वह असमर्थ रहा। उसका विश्वास था कि ज्ञानेन्द्रियाँ बिना किसी बाह्य उपकरण की सहायता के ही प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करने में समर्थ हैं और होनी चाहियें। इस प्रकार कुछ काल तक दार्शनिक, वैज्ञानिकों का और वैज्ञानिक, दार्शनिकों का उपहास और तिरस्कार करते रहे। वैज्ञानिकों का विश्वास था कि प्रकृति के सम्बन्ध में विज्ञान जिन तथ्यों का उद्घाटन करता है वे ही अन्तिम सत्य हैं। दार्शनिक कल्पना की आवश्यकता वे नहीं अनुभव करते थे। यद्यपि इंगलैण्ड में मूल, जेवान्स, क्लिफर्ड और स्पेन्सर ने विज्ञान के दार्शनिक पहलू का अध्ययन किया, परन्तु इन विचारकों का वैज्ञानिक क्षेत्र में कोई प्रभाव और महत्त्व नहीं था। १८८३ में मैच ने लाक से लेकर कान्ट तक के दार्शनिकों की दार्शनिक शिक्षा की पृष्ठ-भूमि में, यंत्र-विज्ञान का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विवेचन करते हुये यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रकृति के सम्बन्ध में हम जो ज्ञान अर्जित करते हैं, विज्ञान केवल उसकी छाया मात्र हमारे सम्मुख उपस्थित करता है। उस छाया को अंतिम सत्य समझना केवल भ्रम है। फिर भी किसी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। विज्ञान और दर्शन के बीच की खाई ज्यों की त्यों बनी रही।

परन्तु यह अवस्था अधिक दिन तक न रह सकी। शीघ्र ही विज्ञान ने दर्शन को प्रभावित करना आरम्भ कर दिया। लवायशियर द्वारा सिद्ध किये गये इस तथ्य का प्रयोग कि रासायनिक क्रियाओं और परिवर्तनों के दौरान में पदार्थ की मात्रा में कोई क्षति नहीं होती, साधारण बुद्धि को अपील करने वाले इस विश्वास के समर्थन के लिये कि पदार्थ सत्य और वास्तविक है, भ्रम या माया नहीं, सफलता-पूर्वक किया जाने लगा। भौतिक विज्ञान और रसायन शास्त्र की अभूतपूर्व सफलता ने अनिश्चित

मत वाले व्यक्तियों को पदार्थ और शक्ति की वास्तविकता में विश्वास करने के लिये प्रेरित किया।

इस विश्वास ने उस 'भौतिक-वाद' को जो फ्रांस में एक सौ वर्ष पहले प्रचलित था, जर्मनी में पुनर्जीवित कर दिया। बहुतों के विश्वास का आधार शरीर-शास्त्र और मनोविज्ञान था परन्तु बुचनर की पुस्तक 'क्राफ़्ट और स्टाफ' ने स्पष्ट कर दिया कि शक्ति और पदार्थ की वास्तविकता की धारणा इस 'भौतिक-वाद' का प्रधान अंग है। आगे चल कर जब 'शक्ति-अक्षुणता' का सिद्धान्त स्थापित हो गया तब यह नवीन सिद्धान्त यंत्र-वाद और 'कार्य-कारण' की नियतता के समर्थन के लिये प्रयुक्त किया गया।

विलियम टाम्सन का यह सिद्धान्त कि अपने आस पास के वातावरण से निःसम्पर्क अवस्था में स्थित 'वस्तु समूह' की शक्ति, समय के साथ लगातार क्षीण होती रहती है, तथा क्लासियस का 'एन्ट्रापी वृद्धि' का सिद्धान्त, बिना उचित आधार के ही, ब्रह्माण्ड से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने के लिये प्रयुक्त किये गये। इन सिद्धान्तों के आधार पर लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला कि अन्ततोगत्वा कुछ काल के पश्चात् ब्रह्माण्ड पूर्णरूप से 'शक्ति हीन' या 'मृत' हो जायगा। इस सम्भावना ने कार्य-कारण की अनिवार्यता और अनीश्वर-वाद में लोगों का विश्वास दृढ़ कर दिया। परन्तु वे लोग जिनका विश्वास था कि आत्मा अमर और अपार्थिव है ब्रह्माण्ड की विनाश-सम्भावना से विचलित नहीं हुये।

भौतिकवाद तथा उससे सम्बन्धित विश्वास जर्मनी में सबसे अधिक प्रचलित थे। अन्य देशों में धार्मिक अन्धविश्वास और रूढ़िवाद, इन नवीन विचारों का दमन करने में कुछ काल तक सफल रहे। परन्तु जब १८४८ में राजनीतिक स्वतंत्रता और बुद्धि-स्वातंत्र्य का युद्ध, क्रान्ति में परिणित हो गया, तब अंधविश्वास और रूढ़िवाद भी भौतिकवाद की वेगवती धारा को न रोक सके। १८४८ के बाद वे औद्योगिक परिवर्तन जो इंगलैण्ड में पहले ही बहुत अंश तक घटित हो चुके थे,

अपना विस्तार पूरब के अन्य देशों में भी करने लगे। विज्ञान और विशेषकर रसायन विज्ञान, साधारण मनुष्य के जीवन को अधिकाधिक मात्रा में प्रभावित करने लगा। यह क्रिया व्यवहारवादी इंगलैण्ड में धार्मिक अंधविश्वासों पर अधिक प्रभाव नहीं डाल सकी, परन्तु तार्किक फ्रान्स और दार्शनिक जर्मनी में बढ़ते हुए भौतिकवाद के ज्वार को इस क्रिया ने और भी प्रबल कर दिया।

यह स्वाभाविक ही था कि प्राकृतिक वरण के आधार पर विकासवाद की डार्विन द्वारा की गई व्याख्या के प्रकाश में सर्वांगपूर्ण 'डार्विनवाद' की स्थापना जर्मनी में हुई। जर्मनी में ही विकासवाद, दार्शनिक और राजनीतिक क्षेत्र में भौतिकवाद की सत्ता दृढ़ता के साथ स्थापित करने में सहायक सिद्ध हुआ। भौतिकवाद से प्रभावित राजनीतिक सिद्धांत को कुछ ने साम्यवादी विचारों का आधार बनाया। इस प्रकार 'प्राकृतिक वरण' की धारणा केवल एक कामचलाऊ वैज्ञानिक सिद्धान्त मात्र न रह सकी बल्कि वह विकासवाद के दार्शनिक पहलू की आधार बन गई। परन्तु साथ ही उस निरीक्षणात्मक और प्रयोगात्मक प्रणाली की ओर लोग कम ध्यान देने लगे जिसका प्रयोग वैज्ञानिक अध्ययन के लिये डार्विन अनिवार्य समझता था।

यह सत्य है कि डार्विनवाद के प्रतिपादन में बहुत अतिशयोक्ति का प्रयोग किया गया था; यह भी सत्य है कि एक पीढ़ी में पाये जाने वाले क्षुद्र परिवर्तनों के दूसरी पीढ़ी में लक्षित होने तथा प्राकृतिक वरण की क्रिया जीवों की विभिन्नता की सम्पूर्ण रूप से व्याख्या करने में असमर्थ थी। फिर भी विकासवाद के साधारण सिद्धान्त की स्वीकृति से विचार क्षेत्र में जो क्रान्ति हुई वह महान् थी। इस विचारधारा के परिणामस्वरूप एक स्थिर मानव समाज तथा विभिन्न जीवों से संकुलित एक स्थिर संसार के स्थान पर, एक गतिमान् तथा नित्य परिवर्तनशील संसार का चित्र उपस्थित हुआ। पृथ्वी की विभिन्न परतों में पाये गए, प्राचीन काल के जीवों के अस्थि अवशेषों ने सिद्ध कर दिया कि समय

प्रवाह के साथ अपेक्षाकृत साधारण गठन वाले जीवों तथा वनस्पतियों से, जटिल गठन वाले जीव और वनस्पतियाँ विकसित हुईं। इसलिए यह कल्पना करना स्वाभाविक ही था कि विकास क्रिया के परिणाम-स्वरूप मानव समाज और वनस्पति जगत् उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर होता रहेगा। लोग यह भूल गये कि विकासवाद के अनुसार जो योग्यतम व्यक्ति जीवन संग्राम में विजयी होते हैं वे केवल तत्कालीन परिस्थिति और वातावरण के लिए योग्यतम होते हैं, सर्वदा के लिए नहीं तथा विकासवाद में प्रतिक्रिया की भी उतनी ही सम्भावना है जितनी प्रगति की। विकासवाद ने आरम्भ में लोगों के हृदयों में आशावाद को जन्म दिया, यद्यपि इसके लिए कोई उचित आधार नहीं था।

मनोविज्ञान—मानव मस्तिष्क का अध्ययन दो प्रकार से किया जा सकता है—एक तार्किक आधार पर और दूसरा अनुभव के आधार पर निर्भर है। यदि हम रोमन चर्च या जर्मनी के भौतिकवादियों द्वारा दार्शनिक आधार पर प्रतिपादित ब्रह्माण्ड-व्यवस्थाओं या इन्हीं के समान अन्य व्यवस्थाओं में से कोई एक व्यवस्था स्वीकार करलें तो उस व्यवस्था में तर्क की सहायता से मानव मस्तिष्क का स्थान निश्चित किया जा सकता है। यह हुआ प्रथम प्रकार। परन्तु ब्रह्माण्ड और सृष्टि की रचना के उद्देश्य आदि के सम्बन्ध में किसी काल्पनिक धारणा और विश्वास का अस्तित्व न स्वीकार कर हम केवल अनुभव के आधार पर ही मस्तिष्क का अध्ययन कर सकते हैं। यह भी दो तरह से हो सकता है—एक तो लाक की तरह स्वयं अपने मस्तिष्क की कार्य विधि की समीक्षा द्वारा, दूसरे वास्तविक प्रयोगों और बाह्य निरीक्षण द्वारा। मनोविज्ञान के अध्ययन में प्रयोगात्मक प्रणाली का समावेश करते ही वह प्राकृतिक विज्ञान की एक शाखा और अंग हो जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक जर्मनी के विश्वविद्यालयों में तार्किक मनोविज्ञान, सृष्टि विज्ञान और ब्रह्म विज्ञान, परस्पर सम्बन्धित विषय समझे जाते थे। इंगलैण्ड में अनुभव पर आधारित मनोविज्ञान

का उदय हो चुका था और 'मिल' तथा 'बेन' के नेतृत्व में इसका अध्ययन 'अन्तः समीक्षा' प्रणाली पर होने लगा। फ्रांस में मस्तिष्क का अध्ययन शारीरिक और पार्थिव समस्या के रूप में, बाह्य उपकरणों द्वारा वैज्ञानिक प्रणाली से पहले से ही हो रहा था।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए प्रयोगात्मक प्रणाली का उपयोग आम तौर से होने लगा। शारीरिक तन्तुओं और शब्द तथा संगीत का परस्पर सम्बन्ध मालूम करने का प्रयत्न हेलमहोल्ट्ज़ ने किया। ई० एच० वेबर ने यह मालूम किया कि शब्द, स्पर्श, गंध आदि की कम-से-कम कितनी मात्रा को मस्तिष्क अनुभव कर सकता है। उसने यह भी मालूम किया कि अनुभव की तीव्रता को रंचमात्र बढ़ाने के लिए उस अनुभव को जन्म देनेवाली क्रिया की तीव्रता को कई गुना बढ़ाना आवश्यक है। वन्ट ने मस्तिष्क की समय सम्बन्धी अनुभवशीलता पर कुछ प्रयोग किये। डार्विन ने मनुष्यों और जानवरों की 'भाव-व्यंजना' का अध्ययन किया।

मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए भौतिक विज्ञान की पद्धति अपनाने में एक कठिनाई है। भौतिक विज्ञान-पद्धति में विश्लेषणात्मक शैली का प्रमुख स्थान है। इस शैली की विशेषता यह है कि हम किसी समस्या का अध्ययन विभिन्न दृष्टिकोणों—यांत्रिक, रासायनिक या शारीरिक, से कर सकते हैं। प्रत्येक दशा में हम अध्ययन के विषय को अपेक्षाकृत सरल तत्वों जैसे परमाणु और इलेक्ट्रान आदि की सहायता से बोधगम्य बना सकते हैं। परन्तु जीव शास्त्र के अध्ययन के लिए यह विश्लेषणात्मक शैली ही पर्याप्त नहीं है। कारण यह है कि प्रत्येक जीव की एक अलग सत्ता है और अपने 'स्वयं' या 'अहं' का पूर्णज्ञान केवल उस 'स्वयं' के अधिकारी जीव को ही हो सकता है। फिर भी प्रयोगात्मक प्रणाली द्वारा प्राप्त ज्ञान बहुत महत्वपूर्ण है।

मनुष्यों में शारीरिक और मानसिक क्रियाएं सामानान्तर रूप में घटित होती हैं। वे भले ही एक दूसरे से सम्बन्धित न हों परन्तु वे एक

ही साथ घटित होती हैं। शारीरिक मानसिक समानान्तर—सिद्धान्त के अनुसार जिसके पदचिह्न डकार्ट के समय तक पाये जा सकते हैं, जब कभी भी शरीर तन्तुओं में कोई परिवर्तन होता है हमें तत्काल किसी-न-किसी प्रकार की अनुभूति होती है। इन परिवर्तनों की समीक्षा की जा सकती है। तन्तु संचालन-क्रिया और अनुभूति, ये दोनों एक दूसरे से स्वतंत्र हैं या इनमें कोई पारस्परिक सम्बन्ध है और यदि कोई सम्बन्ध है तो कौन कार्य और कौन कारण है, ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर अभी तक नहीं प्राप्त हो सका है। पुनः, क्या मस्तिष्क या आत्मा की कोई स्वतंत्र और वास्तविक सत्ता है? 'स्वयं' और 'अहं' की अनुभूति क्या किसी अमर और नित्य अस्तित्व का प्रमाण है या इसकी रचना केवल विभिन्न स्मृतियों और अनुभवों के संयोग से होती है? ये प्रश्न हैं जिनका उत्तर देने में मनोविज्ञान असमर्थ है।

नवां अध्याय

आधुनिक जीव-विज्ञान

जनन-विज्ञान—पिछले पचास वर्षों में जीव-विज्ञान ने ज्ञान की अभिवृद्धि में महत्वपूर्ण योग दिया है, फिर भी किसी नये अपरिचित पथ की ओर अग्रसर न होकर, वह पूर्व प्रशस्त मार्गों का ही अनुसरण करता रहा है। इसके विपरीत, भौतिक विज्ञान तथा रसायन विज्ञान गैलिलियो, न्यूटन तथा डाल्टन की धारणाओं को नवीन क्रान्तिकारी विचार धाराओं में समाविष्ट कर, वैज्ञानिक ही नहीं बल्कि दार्शनिक क्षेत्र में भी एक अभूत पूर्व क्रान्ति उत्पन्न करने में समर्थ हुए।

प्रकृति शास्त्र-वेत्ता, बहुत हद तक, डार्विन के तथ्यों तथा सिद्धान्तों को अन्तिम तथा अकाट्य सत्य मानकर, जीवों तथा पौधों में परिवर्तन लाने वाले प्रयोगों को करने से विरत हो गये थे। हाँ यह सत्य है कि कुछ जीव शास्त्र वेत्ता जैसे डी रीस और विलियम बैटेसन उन अचानक तथा बड़े पैमानों पर घटित होने वाले परिवर्तनों का वैज्ञानिक परीक्षण करना आरम्भ कर रहे थे जिनसे पेड़ पौधों से शौक रखने वाले लोग पूर्णतया परिचित थे। परन्तु १९०० में मेन्डल की विस्मृत कृतियाँ जो लगभग ४० वर्ष तक एक स्थानीय संस्था की फाइलों में पड़ी हुई थीं, पुनः प्रकाश में आई।

जी० जे० मेन्डल (१८२२–१८८४) ने हरी मटर की छोटी और बड़ी किस्मों के मेल से एक नई प्रकार की मटर उत्पन्न करने के उद्देश्य से कई प्रयोग किये थे। छोटी और बड़ी मटरों के योग से उत्पन्न मटर हर हालत में बड़ी किस्म की होती थी। परन्तु जब इस प्रकार उत्पन्न मटरों का परस्पर मेल कराकर नई किस्में उत्पन्न की गई तो उनमें से औसतन तीन

चौथाई लम्बी किस्म की और एक चौथाई छोटी किस्म की पाई गई। छोटी किस्मों का जब परस्पर मेल कराया गया तो हर हालत में छोटी किस्में प्राप्त हुईं परन्तु तीन चौथाई वाली लम्बी किस्में परस्पर मिल कर लम्बी, छोटी और मध्यम सब किस्में देने में समर्थ सिद्ध हुईं। उपर्युक्त तथ्यों का स्पष्टीकरण संतोष जनक रूप से हो सकता है यदि हम यह मान लें कि छोटी मटर के उत्पादक (जर्म) सेलों में सूक्ष्मता गुण से सम्पन्न कण और लम्बी मटर के उत्पादक सेलों में दीर्घता गुण से सम्पन्न कण होते हैं। दीर्घता गुण वाले कण सूक्ष्मता गुण वाले कणों की अपेक्षा शक्ति-शाली होते हैं तथा उन्हें दबा देते हैं। यही कारण है कि छोटी और लम्बी मटरों के संयोग से लम्बी मटर उत्पन्न होती है। मिली हुई नस्ल के उत्पादक सेलो में दीर्घता तथा सूक्ष्मता दोनों गुण वाले कण पाये जाते हैं। यदि दो सेलों से एक-एक दीर्घ कण या एक दीर्घ कण और एक सूक्ष्म कण मिलें तो दोनों हालत में लम्बी नस्ल की मटर प्राप्त होगी। जब दोनों सेलों से एक-एक सूक्ष्म कण मिलेंगे तभी छोटी नस्ल की मटर प्राप्त होगी। यही कारण है कि इस प्रकार के संयोग में तीन चौथाई लम्बी नस्ल के पौधे प्राप्त होते हैं। उपर्युक्त प्रकार के प्रयोगों में, सम्भावना सिद्धान्त के आधार पर अनुमानित फल वास्तविक तथ्यों से पूर्णतया मेल खाते हैं। प्रकट है कि पौधों के विभिन्न गुण उनके उत्पादक सेलों में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के 'गुण-कणों' के परिणाम हैं तथा उन कणों का व्यवहार सम्भावना सिद्धान्त द्वारा ही निर्धारित किया जा सकता है। इस नवीन सिद्धान्त की तुलना परमाणु एवं अणु सिद्धान्त तथा क्वैन्टम सिद्धान्त से की जा सकती है। एक गुण-कण, परमाणु, अणु और फोटान (प्रकाश-कण) किस प्रकार व्यवहार करेगा यह कहना सम्भव नहीं है, परन्तु वे यदि अत्यधिक संख्या में प्रस्तुत हों तो पूरे समूह के व्यवहार के सम्बन्ध में विश्वास के साथ भविष्यवाणी की जा सकती है।

पौधों तथा जीवों में बहुत से गुणों अर्थात् गुणकणों का पता

लगा लिया गया है। इनका पारस्परिक सम्बन्ध और व्यवहार प्रायः जटिल होता है। हरी मटर के गुण-कणों के पारस्परिक सम्बन्ध की तरह सरल सम्बन्ध बहुत कम पाये जाते हैं। प्रायः दो गुण-कण जोड़ों में पाये जाते हैं। एक के बिना दूसरा प्रकट नहीं होता। यही नहीं, कभी-कभी दो गुण परस्पर विरोधी होते हैं। यदि एक होगा तो दूसरा अनिवार्य रूप से नहीं होगा।

टी. एच. मार्गन ने सेलों के गठन का परीक्षण कर मालूम किया कि प्रत्येक सेल-केन्द्रक (न्यूक्लियस) में तन्तु जैसी वस्तुयें जिन्हें क्रोमोसोम कहते हैं, एक निश्चित संख्या में पाई जाती हैं। यदि दो उत्पादक सेल मिलें तो उनके संयोग से बने हुए अंडे में उससे दोगुने क्रोमोसोम हो जायंगे जितने एक सेल में होते हैं। यह अंडा जब दो भागों में विभक्त होता है तो प्रत्येक क्रोमोसोम दो भागों में विभक्त हो जाता है। विभाजन की क्रिया इसी नियम के अनुसार अग्रसर होती है और इस प्रकार विभाजन द्वारा बने हुए असंख्य 'शरीर-सेलों' से शरीर का निर्माण होता है। प्रकट है कि प्रत्येक 'शरीर-सेल' में उससे दोगुना क्रोमोसोम होते हैं जितने एक उत्पादक सेल में। अंत में जब शरीर सेल से पुनः उत्पादक सेल का निर्माण होता है तब शरीर सेल के क्रोमोसोम दो-दो के एक-एक जोड़े बना लेते हैं और इस प्रकार उत्पादक सेल में पुनः क्रोमोसोमों की संख्या उतनी ही हो जाती है जितनी पहले के उत्पादक सेल में थी। सेल सम्बन्धी उपर्युक्त तथा मेन्डल के जन्मगत-संस्कार सिद्धान्त के बीच पाये जाने वाले सामंजस्य को कई वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया। इस सामंजस्य को सटन एक निश्चित रूप देने में समर्थ हुआ।

ड्रोसोफिला नामक मधुमक्खी पर अमेरिका में प्रयोग कर मार्गन तथा उसके साथियों ने क्रोमोसोम के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण तथ्य मालूम किये हैं। प्रत्येक दस दिन के बाद इस मक्खी को एक नई पीढ़ी अत्यधिक संख्या में उत्पन्न होती है। इस मक्खी के सम्पूर्ण गुण चार

समूहों में विभक्त किये जा सकते हैं। इन वैज्ञानिकों ने प्रत्येक गुण-समूह के लिए दो क्रोमोसोमों का एक जोड़ा निश्चित किया है। इस प्रकार मधुमक्खी के उत्पादक सेल में क्रोमोसोमों के चार जोड़े होते हैं। मटर में सात, गेहूँ में आठ, चूहे में बीस और मनुष्य में सम्भवतः चौबीस जोड़े होते हैं। प्रत्येक उत्पादक सेल में क्रोमोसोमों के बीस ही जोड़े इस प्रकार व्यवस्थित हो सकते हैं कि दस लाख से भी अधिक भिन्न प्रकार के उत्पादक सेलों की कल्पना की जा सकती है। इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए यह समझना कठिन न होना चाहिये कि क्यों कोई भी दो मनुष्य पूर्णतया एक-दूसरे के अनुरूप नहीं होते।

किसी भी उत्पादक सेल में क्रोमोसोमों की संख्या निश्चित होती है। इस संख्या को हैप्लवायड कहते हैं। दो उत्पादक सेलों के संयोग से जो नया सेल बनता है उसे डाइप्लवायड कहते हैं। दो से अधिक उत्पादक सेल भी मिलकर अंडे की उत्पत्ति कर सकते हैं। यदि किसी बहुप्लवायड में क्रोमोसोमों की संख्या ताक हो जिससे उत्पादक सेल का निर्माण होते समय वे दो समान भागों में विभक्त न हो सकें तो उनके वितरण में अनियमितता हो सकती है और इसका परिणाम सन्तानोत्पत्ति के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। इसी कारण बहुत-से पौधे फल उत्पन्न करने में असमर्थ होते हैं जब तक दूसरे प्रकार के पौधे उनके आस-पास न हों।

लिंग निर्धारण (स्त्री या पुरुष) दो बातों पर निर्भर होता है; एक संस्कार दूसरा विकास। वे क्रोमोसोम जो लिंग का निश्चय करते हैं किन्हीं-किन्हीं स्थितियों में सूक्ष्म दर्शक द्वारा पहचान लिए गये हैं। क्र्यू ने मालूम किया है कि मुर्ग में लिंग परिवर्तन भी सम्भव है।

पुनः, तथा कथित 'जिनिज़' किसी पौधे या जीव में कुछ विशेष पदार्थों या गुणों का विकास रोक सकते हैं। इनमें से कुछ जिनिज़ तो पौधों और जीवों के लिए बहुत-ही घातक होते हैं। उदाहरणार्थ एक प्रकार के जिनिज़ पौधों में क्लोरोफिल का विकास नहीं होने देते और

क्लोरोफिल पर ही पौधों का जीवन निर्भर होता है। ऐसे मामलों में जनन-शास्त्र और जीव-रसायन-शास्त्र एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। वैज्ञानिक, 'जीवन' का वर्णन तथा रहस्योद्घाटन भौतिक तथा रासायनिक क्षेत्र में प्रयुक्त होनेवाली धारणाओं के द्वारा करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु जीवन से सम्बन्धित कुछ ऐसे तथ्य हैं जिनका स्पष्टीकरण पूर्ण रूप से इन धारणाओं द्वारा नहीं हो सकता। जैसा कि शेरिंग्टन ने कहा है शारीरिक अंगों का विकास पहले होता है; उनकी क्रिया से लाभ बाद में उठाया जाता है। इसके पहले कि आंख देख सके, उसके जटिल गठन की रचना होनी आवश्यक है।

गर्भाधान क्रिया में पहले स्त्री के रज सेल का स्खलन होता है और तब रज सेल और उत्पादक सेल का परस्पर संयोग होता है। प्रथम-प्रथम इस तथ्य को १८७५ में हर्टविग ने मालूम किया। यदि एक रज सेल दो बराबर हिस्सों में विभक्त हो जाय तो उनके गर्भाधान से दो अनुरूप बच्चों की उत्पत्ति होती है। परन्तु यदि एक ही साथ दो रज सेलों के गर्भाधान से दो बच्चे उत्पन्न हों तो उनका अनुरूप होना आवश्यक नहीं। ठीक वैसे ही जैसे एक ही माता-पिता के दो बच्चों का एक दूसरे के अनुरूप होना आवश्यक नहीं है।

जन्मगत संस्कारों का अध्ययन भी बहुसंख्यक प्रणाली द्वारा किया गया है। इस क्षेत्र में इस प्रणाली का प्रयोग सर्व-प्रथम क्वेटलेट ने किया था। विभिन्न समूहों के मेल से बहुत-सी जटिलतायें उत्पन्न हो जाती हैं। माता-पिता तथा उनकी संतानों में पाये जाने वाले गुणों का परिमाण मालूम कर कार्ल पियर्सन ने सिद्ध किया कि एक पीढ़ी, प्रथम पीढ़ी से संस्कार रूप में गुण प्राप्त करती है। यदि एक समूह में पाये जाने वाले सारे पुरुषों की लम्बाई साधारण मनुष्यों की लम्बाई से चार इंच अधिक हो तो उनके पुत्रों की लम्बाई साधारण पुरुषों की लम्बाई से दो इंच अधिक होती है। यह सम्बन्ध इस प्रकार प्रकट किया जाता है कि परस्पर सम्बन्ध का गुणक आधा है अर्थात् .५ है। यदि सारे पुत्रों

की लम्बाई साधारण लम्बाई के बराबर हो तो किसी प्रकार का परस्पर सम्बन्ध न होगा और गुणक शून्य होगा। संस्कार रूप में प्राप्त होने वाले अधिकांश गुणों का सम्बन्ध-गुणक ·५ के आस-पास होता है। डी विलमोरिन नामक एक फ्रेन्च किसान ने मालूम किया कि ऐसे पौधों से जिनके पूर्व वंश में लगातार अच्छे पौधे होते रहे हैं, उत्तम पौधे उत्पन्न किये जा सकते हैं। परन्तु-ऐसे पौधों से जो अपने तईं तो अपेक्षा कृत बहुत योग्य होते हैं परन्तु जिनके पूर्व वंश में योग्यता की परम्परा नहीं रही है, उत्तम पौधों की आशा नहीं की जा सकती। अक्सर आज-कल लड़के चिढ़कर कह देते हैं 'मुझे लड़की से विवाह करना है, उसके परिवार से नहीं'। परन्तु वे भ्रम में होते हैं। उनकी संतानें प्रायः सिद्ध कर देती हैं कि उन्होंने लड़कियों के परिवार से अधिक, और लड़कियों से कम, विवाह किया था।

यद्यपि एक समय मेन्डल के अनुयायियों और जीव शास्त्र के अध्ययन के लिए गुणों की नाप करने वालों में काफी मतभेद था, परन्तु जन्म गत संस्करों के पूर्ण अध्ययन के लिए, बहुसंख्यक प्रणाली से नियंत्रित दोनों पद्धतियों की आवश्यकता है।

भूगर्भीय प्रमाणों की संख्या जैसे-जैसे बढ़ती गई है वैसे-वैसे विकास-वाद सिद्धान्त पुष्ट होता रहा है। कुछ जीव शास्त्र वेत्ता डार्विन के प्राकृतिक वरण सिद्धान्त में विश्वास करते हैं और कुछ मेन्डल की ओर आकर्षित प्रतीत होते हैं। परन्तु दूसरों का विचार है कि जीवों और वनस्पतियों की वर्तमान विभिन्नताओं का युक्ति संगत एवं पर्याप्त कारण उपस्थित करने में उपर्युक्त दो सिद्धान्तों में से एक भी सिद्धान्त समर्थ नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व युगों में जीव लचीले होते थे तथा विभिन्न प्रभावों से सरलता पूर्वक परिवर्तित होकर नये-नये प्रकार के जीवों में विकसित हो जाने में समर्थ थे। आज के जीवों में वह लोच नहीं रह गई है। इसीलिए उनपर विभिन्न प्रभावों तथा परिस्थितियों का असर कम होता है और उनसे नये जीवों की सृष्टि नहीं होती। हाँ, कृत्रिम रूप

से बाहरी परिवर्तन उत्पन्न कर नये प्रकार के जीवों को आज भी विकसित किया जा सकता है।

डार्विन के इस सिद्धान्त से कि योग्यतम जीव ही अपनी वंश परम्परा कायम रखने में समर्थ होते हैं एक राष्ट्र को कोई लाभ नहीं यदि उस राष्ट्र के योग्यतम व्यक्ति अपेक्षा कृत अधिक संतान उत्पन्न करने में समर्थ न हों। बड़े-बड़े ज़मींदार, व्यापारी तथा बुद्धि जीवी वर्ग के लोग जो समाज के योग्यतम अंग कहे जा सकते हैं इंगलैण्ड में १८३० के पहले जितने बच्चे पैदा करते थे उससे केवल आधे ही उत्पन्न करने में सम्प्रति समर्थ हैं। इसके विपरीत मोटा काम करने वाले मज़दूरों की संतान उत्पन्न करने की क्षमता में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी देश में योग्यता का परिमाण निश्चित होता है। यदि अयोग्य व्यक्तियों को भी योग्य बना दिया जाय तो व्यक्तियों की संतानोत्पादन की क्षमता में कमी हो जायगी। यही नहीं, दूसरे उद्देश्यों से बनाये गये कानून अप्रत्यक्ष रूप से समाज के चरित्र को प्रभावित करते रहते हैं। इंग्लैण्ड में मृत्युकर उन पुराने ज़मींदार परिवारों को धीरे-धीरे नष्ट कर रहा है जो देहात में बिना पारिश्रमिक लिए तथा चर्च और सेना में कम वेतन लेकर देश की सेवा करते थे।

बीजों के अंकुरण तथा पौधों की वृद्धि पर प्रकाश और ताप का क्या प्रभाव होता है, इस सम्बन्ध में नये तथ्य मालूम हुए हैं। उपर्युक्त क्रियाओं के दौरान में कभी-कभी उच्चतम या निम्नतम प्रकाश और तापक्रम की आवश्यकता होती है। उगते हुए बीजों को कुछ समय तक ठंडा रखा जाता है तथा फलते हुए पौधों को इच्छानुसार आवश्यक जलवायु में रखा जा सकता है। इस क्रिया को 'वर्नलाइज़ेशन' कहते हैं। पौधों और जीवों का उनके आकार्वनिक पड़ोस से तथा अन्य जीवों से क्या सम्बन्ध है, इस प्रकार का अध्ययन 'इकालोजी' के अन्तर्गत हो रहा है तथा इस नवीन शास्त्र का विकास तीव्र गति से हो रहा है।

भूगर्भ शास्त्र एवं समुद्र शास्त्र—मनुष्याकृत बन्दरों तथा बन्दरों जैसे मनुष्यों के प्राचीन अवशेषों के आविष्कार ने, मानव विकास क्रिया पर हाल में पर्याप्त प्रकाश डाला है। प्राचीन मनुष्याकृत बन्दरों के अवशेष, मिश्र तथा हिमालय की तराई में पाये गये। १९१२ में डासन और वुडवर्ड ससेक्स में पिल्ट डाउन के पास आदियुग के मनुष्यों के अवशेष पाने में सफल हुए। यह भी सम्भव है कि चीन में पाये गये मनुष्य 'पिथेकैन्थ्रोपस पेकिनेनिस' उसी समूह के सदस्य रहे हों जिससे आज के मनुष्यों की उत्पत्ति हुई है। नीन्डर्थल मनुष्य एक अस्वाभाविक शाखा के थे। नियोलिथिक मनुष्य बाद में आये और अपने साथ पश्चिमी यूरप में मिश्र और मेसोपोटामिया की सभ्यतायें भी लाये। साधारणतया कैम्ब्रियन चट्टानों में जो इंगलैण्ड के उत्तरी वेल्स में पाई जाती हैं प्रायः सब प्रकार के प्राचीन मनुष्यों के अवशेष पाये जाते हैं परन्तु उनसे नीचे की चट्टानों में किसी प्रकार के अवशेष नहीं पाये जाते। ऐसा मालूम होता है कि ५० करोड़ और दो सौ करोड़ वर्ष के बीच कभी पृथ्वी पर जीवन प्रकट हुआ था; कैसे, यह नहीं कहा जा सकता।

आधुनिक भौतिक विज्ञान की प्रणालियों द्वारा, पृथ्वी तल तथा समुद्र तल से नीचे स्थित परतों के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त की गई है। गुरुत्वाकर्षण की यथार्थ नाप इन प्रणालियों में से एक है। परीक्षण द्वारा यह मालूम किया गया कि ऊपरी भागों के भूकम्पों द्वारा उत्पन्न तरंगे केवल पृथ्वी की उपरी परतों को प्रभावित कर सकी हैं परन्तु निम्न भाग के भूकम्पों द्वारा उत्पन्न तरंगे पृथ्वी की भीतरी परतों को भी प्रभावित करने में समर्थ हुई हैं। इस बात के प्रमाण हैं कि पृथ्वी की परत बहुत पतली है। इस परत की मोटाई २५ मील के लगभग है। परन्तु पृथ्वी के केन्द्रीय भाग का व्यास जो पिघले हुए लोहे से बना है, पृथ्वी के व्यास के आधे से भी अधिक है।

विष्फोटक पदार्थों के विष्फोट से कृत्रिम तरंगे उत्पन्न की जा सकती हैं और उनकी प्रतिध्वनि का समय मालूम कर समुद्र की गहराई तथा

विभिन्न परतों की बनावट के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

अंडे देने के लिये मछलियाँ एक विशेष दिशा में एक निश्चित स्थान तक जाती हैं और ख़ुराक की तलाश में फिर लौट आती हैं। उदाहरण के लिये सालमन मछली अंडा देने के लिये नदी के उद्गम की ओर जाती है। उसके बच्चे फिर समुद्र की ओर जाते हैं और बड़े होकर पुनः नदियों के उद्गमों की ओर अंडे देने के लिये प्रस्थान करते हैं। यूरप की ईल मछली अपनी जवानी के दिन ताज़े पानी में बिताती है परन्तु अंडा देने के लिये हज़ारों मील दूर स्थित सारगासो समुद्र में चली जाती है। बहुत-सी समुद्री मछलियाँ अपना जीवन-निर्वाह 'डायटम' और ऐसे ही अन्य छोटे जीवों पर जिन्हें सम्मिलित रूप में 'प्लैन्कटन' कहते हैं, करती हैं। इन मछलियों के मार्ग संकेत करते हैं कि किस स्थान पर मछलियाँ पाई जा सकती हैं।

जीव-रसायन शास्त्र, शरीर शास्त्र एवं मनोविज्ञान—१९१२ में सर हाप्किन्स ने मालूम किया कि चूहों के बच्चों की वृद्धि, रासायनिक दृष्टि से शुद्ध भोजन के होते हुए भी तब तक रुकी रही जब तक उन्हें दूध की थोड़ी मात्रा न दी गई। इसलिये उसने सिद्ध किया कि दूध में कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं जो वृद्धि और स्वास्थ्य के लिये अनिवार्य हैं। इन पदार्थों को उसने 'सहायक भोजन तत्व' नाम दिया और यही बाद में 'विटामिन' के नाम से प्रसिद्ध हुए। विटामिन का मुख्य गुण यह है कि उनकी थोड़ी-सी मात्रा भी अपना हितकर प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ होती है। पहले चार ज्ञात विटामिनों का नाम ए, बी, सी, और डी रखा गया।

ए और डी विटामिन जानवरों की चर्बी जैसे मक्खन और काड मछली के तेल तथा हरे पौधों में होते हैं। ए, छूत की बीमारियों से बचाता है; डी, हड्डियों को मज़बूत बनाने तथा रिकेट की बीमारी से बचाने के लिये आवश्यक है। रिकेट एक प्रकार की बीमारी है जिससे बच्चों की हड्डियाँ मुलायम हो जाती हैं। नील लोहितोत्तर किरणों द्वारा डी विटामिन पैदा

किया जा सकता है। विभिन्न अनाजों के छिलकों तथा यीस्ट में बी पाया जाता है। यह बेरी-बेरी तथा पालीन्यूरिटिस (एक प्रकार की बीमारी जिसमें मस्तिष्क को सूचना देनेवाले तन्तुओं में पीड़ा होती है) से रक्षा करता है। सी विटामिन ताज़े हरे पौधों तथा फलों जैसे नीबू में पाया जाता है तथा स्कर्वी (एक प्रकार का रक्त रोग) से बचाव करता है।

हाल में विटामिनों के बारे में और भी जानकारी प्राप्त की गई है। १९२९ में मूअर ने सिद्ध किया कि विटामिन ए, वनस्पति वर्णक (पदार्थों को उनका रंग देने वाला द्रव्य) कैरोटीनि जो एक अतृप्त अलकोहल है, से मिलता-जुलता है। केन्द्रीय तन्तुओं, रेटिना (चक्षु-कृष्ण पटल) तथा त्वचा को ठीक रखने के लिए ए विटामिन आवश्यक है। इसकी कमी से रतौंधी की बीमारी हो जाती है।

रासायनिक प्रणाली द्वारा सर्व-प्रथम डी विटामिन की परीक्षा की जा सकी। यह एक अलकोहल है जिसे अर्गास्टेरोल कहते हैं। इसे १९२७ में विशुद्ध रूप में प्राप्त किया गया। विटामिन इ, अपने बच्चों को दूध पिलाने वाले जानवरों की संतानोत्पादन शक्ति को कायम रखता है। रक्त को शीघ्र जमाने के लिए 'के' विटामिन आवश्यक है और इसीलिए रक्तप्रवाह (हीमोफ़ीलिया) की बीमारी से बचाने के लिए यह अनिवार्य है। इ और के दोनों, रासायनिक दृष्टि से क्विनोन से, बने पदार्थ हैं।

यह सिद्ध हो चुका है कि विटामिन बी कई विटामिनों के मिश्रण से बना है। इनमें से एक तन्तु रोग निवारक बी, या ऐन्यूरिन है जो यीस्ट में पाया जाता है और क्रिस्टल के रूप में अलग किया जा सकता है। तन्तु रोग से छुटकारा पाने के लिए कुछ रोगियों को इसको बहुत अधिक मात्रा चाहिए। पांच और विटामिन जिनके मिश्रण से बी की रचना होती है, मालूम किये गए हैं। विटामिन सी ऐस्कार्बिक तेज़ाब है और चीनी से मिलता-जुलता है। उगते हुए बीजों में क्लोरोफिल और कैरोटिन्वायड के पहले विटामिन सी का निर्माण होता है। पिट्युटरी और ऐड्रेनल कार्टेक्स दो एन्डोक्राइन ग्लैण्डों में यह बहुत अधिक मात्रा में पाया

जाता है। एन्डोक्राइन ग्लैण्ड शरीर की वे गिल्टियाँ हैं जो रक्त में एक प्रकार का द्रव मिलाती रहती हैं। इस द्रव का शरीर की वृद्धि आदि पर प्रभाव पड़ता है। भय तथा क्रोध के समय शारीरिक परिवर्तन तथा पुरुषों और स्त्रियों के विशेष चिह्न (मूँछ, गहरी आवाज़ आदि) इन्हीं ग्लैण्डों की क्रियाशीलता के परिणाम हैं। विटामिनों के आविष्कार के बाद उनके सम्बन्ध में जितना अन्वेषण कार्य हुआ उसका यह बहुत ही संक्षिप्त एवं अधूरा वर्णन है।

फिशर ने कृत्रिम रूप से 'मानो-सैचराइड' चीनी का निर्माण किया। उसके बाद 'डाइ-सैचराइड' चीनी जैसे ईख की चीनी का गठन मालूम करने के लिए बहुतों ने प्रयत्न किया। इसके लिए 'रिंग फारमूला' की ओर संकेत किया गया। अमिनो तेज़ाब के सम्बन्ध में किया गया फिशर द्वारा अन्वेषण-कार्य, और आगे बढ़ाया गया। परन्तु जटिल-से-जटिल पाली-पेप्टाइड जो बनाई जा सकी हैं और जिनका अणु-भार (मालिक्यूलर वेट) १३०० से कुछ अधिक होता है, वे भी प्रोटीन से अभी बहुत दूर हैं। अभि-सारक दबाव (आस्माटिक प्रेशर) तथा तलछट निर्माण की रफ्तार की नाप द्वारा मालूम किया गया कि प्रोटीनें दो समूहों में विभक्त की जा सकती हैं। एक समूह की सारी प्रोटीनों के अणु-भार, ३२००० से पूर्ण संख्या गुना होते हैं और दूसरे समूह की प्रोटीनों के अणु-भार ४००,००० से पूर्ण संख्या गुना होते हैं। क्ष किरणों ने प्रोटीनों के गठन पर कुछ प्रकाश डाला है परन्तु अभी तक कृत्रिम रूप से प्रोटीन का निर्माण सम्भव नहीं हो सका है। प्रयोगशाला और जीवन के बीच यह खाई अभी तक पट नहीं सकी है।

क्ष-किरणों द्वारा लिये गए फोटोग्राफ यह दिखाने में समर्थ हुए कि अणु सिद्धान्त द्वारा सेल्युलोज़ तथा मांसपेशियों की रेशेदार प्रकृति का स्पष्टीकरण किया जा सकता है। कार्बनिक पदार्थों के रचनात्मक सूत्र तथा उनके भौतिक गुणों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने में लैंगमुइर सफल हुआ। इस प्रणाली का प्रयोग उसने तथा ऐडम ने किसी वस्तु

की सतह से चिपकी हुई द्रवों की पतली परतों का अध्ययन करने के लिए भी किया। एक ही प्रकार के आयनों को अपने छिद्रों से होकर गुजरने देने वाली झिल्लियों के संतुलन के सम्बन्ध में एफ० जी० डोनन ने १९११ में एक ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो प्रोटीन के कोलायड जैसे पदार्थों में प्रकट होनेवाले अभिसारक दबाव तथा विद्युत्-पोटेन्शल का स्पष्टीकरण करने में पूर्णतया समर्थ है।

रक्त के रासायनिक अध्ययन में हीमाटिन का अध्ययन भी शामिल है। कभी-कभी परमाणु इस प्रकार व्यवस्थित होते हैं कि उनका समूह कुंडली के आकार-सा होता है। ऐसी ही चार कुंडलियों के योग से हीमाटिन के अणु की रचना होती है। इन चारों को एक लौह परमाणु परस्पर जोड़ता है। हीमाटिन, प्रोटीन के ग्लोबिन से मिलकर रक्तवाहक हैमोग्लोबिन की रचना करता है। विलस्टेटर ने दिखाया है कि पौधों में क्लोरोफिल के अणु के केन्द्रक की बनावट भी हीमाटिन की-सी होती है। उसमें लौह परमाणु के स्थान पर मैगनेशियम का परमाणु होता है। उसने क्लोरोफिल के दो प्रकारों का पता लगाया जिनकी बनावटें एक-दूसरे से कुछ भिन्न थीं और १९३४ में उसने दोनों के रचनात्मक सूत्रों के चित्र भी उपस्थित कर दिये।

वीलैंयड ने सिद्ध किया है कि रगों (टिशुओं) में आक्सीकरण की क्रिया विशेष प्रकार के एन्ज़ाइमों द्वारा जिन्हें डिहाइड्रोजिनैसीज़ कहते हैं, सम्पन्न होती है। ये एन्ज़ाइम प्रत्येक जीवित रग में वर्तमान होते हैं और हाइड्रोजन उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं जो आक्सीजन के साथ मिलती है। हाप्किन्स और फ्लेचर ने १९०७ में सिद्ध किया कि मांस-पेशियों की सिकुड़न ग्लिकोजन के लैक्टिक तेज़ाब में परिवर्तित होने पर निर्भर है। बाद में मालूम किया गया कि यह क्रिया आठ अवस्थाओं में से होकर गुजरती है और इस क्रिया में कम-से-कम दस एन्ज़ाइम प्रवर्तक के रूप में भाग लेते हैं।

रगों में आक्सीकरण के अतिरिक्त कई ऐसी क्रियायें हैं जिनके

दौरान में जल तथा ऐमिनो-समूह के पदार्थ बाहर निकलते हैं। क्रेब्स ने दिखाया है कि इन पदार्थों का मूल रूप में निःसरण विभिन्न क्रियाओं के एक जटिल चक्र का परिणाम है। कार्बनडाइआक्साइड, बाइकार्बोनेट के रूप में रक्त में प्रवाहित होती है और मेल्ड्रम तथा राटन ने दिखाया है कि फेफड़ों में एक प्रकार के एंज़ाइम द्वारा जिसे कार्बोनिक ऐन्हाइड्रेस कहते हैं, यह रक्त से मुक्त की जाती है।

१९०२ में बेलिस और स्टर्लिंग ने मालूम किया कि पैन्क्रियस (शरीर के भीतर एक गिल्टी जो एक प्रकार का रस उत्पन्न करती है जिसकी सहायता से अंतड़ियाँ चीनी को पचाने में समर्थ होती हैं) द्वारा निःसृत द्रव एक रासायनिक द्रव्य की सहायता से उत्पन्न होता है। यह द्रव्य अंतड़ियों में उत्पन्न होता है और रक्त द्वारा पैन्क्रियस तक ले जाया जाता है। इसके पश्चात् शरीर के भीतर विभिन्न गिल्टियों द्वारा निःसृत अन्य रसों का भी पता लगाया गया। हार्डी ने इन रसों को हार्मोन (मैं क्रियाशील होता हूँ) नाम दिया। इन द्रवों में से प्रत्येक द्रव एक विशेष ग्लैण्ड द्वारा उत्पन्न होता है और रक्त द्वारा दूसरे ग्लैण्डों या अंगों तक ले जाया जाता है। इनसुलिन एक ऐसा ही हार्मोन है जिसे १९२२ में बैन्टिंग तथा बेस्ट ने कुत्तों के ऊपर प्रयोग कर मालूम किया। यह मधुमेह के प्रभाव को नष्ट करता है। मधुमेह एक बीमारी है जिससे मूत्र में चीनी आती है। थिरायड ग्लैण्ड के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है परन्तु अन्य एन्डोक्राइन ग्लैण्डों के सम्बन्ध में इतना अधिक अन्वेषण कार्य हुआ है कि 'एन्डोक्रिनालोजी' नामक एक नवीन शास्त्र ही अस्तित्व में आगया है। पिट्युटरी ग्लैण्ड इन क्रियाओं में और विशेषकर यौन क्रिया में परस्पर सम्बन्ध स्थापन का बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य करता है।

ऐड्रनलिन हार्मोन भय तथा बेहोशी की अवस्था में रक्त में स्खलित होता है। इसके विपरीत यदि ऐड्रनलिन का इंजेक्शन दे दिया जाय, तो भय तथा बेहोशी की दशा प्रकट हो जाती है।

मस्तिष्क को सूचना देने वाली तन्तुओं का आरम्भिक अध्ययन १६०६ में शेरिंग्टन द्वारा किया गया। तन्तुओं के ऊपरी रेशों द्वारा सूचनाएं इन्द्रियों से केन्द्रीय तन्तु जाल तक आती हैं और फिर वहाँ से ग्लैण्डों तथा पेशियों तक ले जाई जाती हैं। परन्तु प्रश्न उठता है कि आने वाली तथा जाने वाली सूचनायें कैसे इस प्रकार नियंत्रित तथा परस्पर सम्बन्धित होती हैं कि हर हालत में हम ठीक-ठीक ही आचरण करते हैं? शेरिंग्टन ने इस बात को ओर संकेत किया है कि शरीर के भीतर अपने आप होने वाली क्रियाओं के पारस्परिक सम्बन्ध के अध्ययन द्वारा तन्तुओं की जटिल कार्य-प्रणाली का रहस्य समझा जा सकता है। आने वाली एक सूचना एक ही समय दो प्रकार के प्रभाव उत्पन्न कर सकती है। वह कुछ तन्तुओं को उत्तेजित और कुछ को निष्क्रिय कर सकती है। उसको इस कार्य में कभी-कभी समय की पारस्परिक सम्बन्ध व्यवस्थापन क्रिया भी सहायता देती है।

तन्तु-उत्तेजना सम्बन्धी प्रयोगों तथा अन्वेषणों में आधुनिक भौतिक यंत्र एवं उपकरण बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। उनकी सहायता से तन्तुओं के एक-एक रेशे की परीक्षा की जा सकती है। ए० वी० हिल, गेसर तथा अर्लैंजर तन्तुओं में उत्पन्न अति सूक्ष्म ताप-प्रभावों का भी पता लगाने में समर्थ हुए हैं।

तन्तु-जाल का सबसे उच्च भाग मस्तिष्क, दृष्टि तथा श्रवण-क्रिया से सम्बन्धित है। इस सम्बन्ध के परिणामस्वरूप जीवधारी दूर स्थित वस्तुओं से भी सम्पर्क स्थापित करने में समर्थ होते हैं। मानसिक क्रियायें मस्तिष्क के एक भाग में जिसे सिरेब्रम कहते हैं, सम्पादित होती हैं। इस भाग की परीक्षा अच्छी तरह की जा चुकी है तथा इसकी स्थानीय प्रतिक्रियाओं का अध्ययन हार्सले, हेड और शेरिंग्टन ने विशेष रूप से किया है। मस्तिष्क का दूसरा भाग जिसे सिरेबेलम कहते हैं, संतुलन, स्थिति तथा संचालन-क्रियाओं से सम्बन्धित है। यह भाग मांस-पेशियों तथा कर्ण-रन्ध्र से आई हुई सूचनाओं द्वारा क्रियाशील होता है।

सर्वप्रथम गैस्केल और लैंग्ले ने उन तन्तुओं का पूर्ण रूप से अध्ययन किया जो अनजान में अपने आप होने वाली शारीरिक क्रियाओं का नियंत्रण करती हैं परन्तु स्वयं इच्छानुसार नियंत्रित नहीं की जा सकतीं। पैवलाव का विचार था कि इस प्रकार के अध्ययन के लिये मनोवैज्ञानिक धारणाओं की आवश्यकता नहीं है । भोजन करते समय कुत्ते की जीभ पर स्वाभाविक रूप से पानी आ जाता है । इसे स्वाभाविक क्रिया (अन् कन्डिशन्ड रिफ्लेक्स) कहते हैं । परन्तु यदि प्रतिदिन एक विशेष घटना जैसे एक घंटी बजने के बाद किसी कुत्ते को भोजन दिया जाय तो उस घंटी की आवाज़ सुनते ही कुत्ते की जीभ पर पानी आ जाता है । इसे पूर्व आधारित क्रिया (कन्डिशन्ड रिफ्लेक्स) कहते हैं । पैवलाव का मत है कि स्वाभाविक क्रियाएं उपयुक्त परिस्थितियों में पूर्व आधारित क्रियाओं में परिवर्तित हो जाती हैं । इस दशा में भी उत्तेजना तथा उसके परिणाम का परस्पर सम्बन्ध प्रयोगात्मक प्रणाली द्वारा निर्धारित किया जा सकता है । इस प्रकार के अध्ययन में इस समस्या को, कि 'चेतना' की प्रकृति क्या है, एक प्रकार से उपेक्षा की जाती है । लायड मार्गन तथा वाट्सन ने इसी पथ पर चलते हुए एक नये मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया । इसे आचरणवाद (बिहेवियरिज़्म) कहते हैं और इस में चेतना को कोई स्थान नहीं है । फ्रायड ने भी मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में 'कार्य-कारण की नित्यता' सिद्धान्त का प्रतिपादन किया । उसने दिखाया कि हमारी छोटी से छोटी गलतियाँ तथा पवित्र से पवित्र विश्वास सब हमारी जन्मगत स्वाभाविक इच्छाओं (इन्स्टिक्ट्स) की क्रिया शीलता के परिणाम हैं। ये इच्छायें शरीर के साथ बढ़ती हैं और यदि इनका स्वाभाविक विकास रोक दिया जाय या विकृत कर दिया जाय तो मनुष्य मानसिक विकारों का शिकार हो जाता है।

इस क्षेत्र में हुआ अन्वेषण कार्य जिसका अंत आचरणवाद तथा फ्रायड के निर्धारणवाद में हुआ है, आधुनिक मनोविज्ञान को 'यंत्रवाद' का जामा पहनाने में बहुत अंश तक सफल हुआ है । आज का मनोवि-

ज्ञान व्यक्ति को अनुभवों तथा स्मृतियों का एक बंडल मात्र समझता है। आचरणवादी के लिये मनुष्य उत्तेजनाओं तथा उनके परिणामों का एक संधि स्थल मात्र है क्योंकि उसकी स्वयं की परिभाषाओं एवं स्वयंसिद्धियों के अनुसार, आचरणवाद में प्रयुक्त अन्वेषण-प्रणाली का उद्देश्य, उत्तेजनाओं और उनके परिणामों का परस्पर सम्बन्ध मालूम करना है। यह प्रणाली जान-बूझकर चेतना तथा उससे सम्बन्धित अन्य समस्याओं की उपेक्षा करती है। कुछ मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक इस बात की ओर संकेत करते हैं कि प्राणियों की क्रियायें किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये सम्पादित होती हैं। उनके अनुसार गर्भ स्थित जीवों के अंगों का अपने अंतिम कार्यों के सम्पादन के लिए योग्यता प्राप्त कर लेना, वाइटलिज़्म (जीव-वाद) का प्रमाण है। अभी तक हम किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके हैं। जीवों के सम्बन्ध में हमारी आज की धारणा अरस्तू के इस कथन की याद दिलाती है कि शरीर केवल अपने अंगों का योग नहीं है।

मनोविज्ञान तथा जीव-रसायन शास्त्र का विकास औषधि विज्ञान के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है। उन उदाहरणों के अलावा जिनका जिक्र पहले हो चुका है कुछ और उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं। मिनोट, यकृत के निचोड़ से अनीमिया (रक्त की कमी या खराबी) रोग का निवारण करने में समर्थ हुआ। खानों में काम करने वाले श्रमिकों को होने वाला 'क्रैम्प' रोग शुद्ध पानी के स्थान पर नमकीन पानी के उपयोग द्वारा दूर किया जा सका। कठोर परिश्रम के कारण पसीने के साथ नमक बाहर निकलता रहता है। नमकीन पानी पीने से नमक की उपयु'क्त क्षति पूरी हो जाती है।

विष तथा रोगाक्रान्त न होने की क्षमता—अति सूक्ष्मदर्शक से देखे जाने वाले तथा न छनने वाले एक विष का वर्णन सबसे पहले इवानोस्की ने किया। इस विष को १८९२ में उसने तम्बाकू में पाया। इसके पश्चात् जानवरों और पौधों में और बहुत-से विष पाये गए। चेचक,

पीत ज्वर, मीज़ल्ज़ (एक प्रकार की बीमारी जो एक व्यक्ति से दूसरे तक फैलती है तथा जिसके कारण शरीर पर लाल दाने पड़ जाते हैं और आँख तथा नाक से पानी गिरता है), शीत ज्वर, ज़ुकाम, जानवरों के पाँव और मुँह की बीमारी, कुत्तों की 'डिस्टेम्पर' नामक बीमारी, पौधों के फूल झड़ने की बीमारी, आलू तथा तम्बाकू की पत्तियों की बीमारी ये सब विषों से उत्पन्न होती हैं।

विषकणों के आकार की नाप कई तरह से की गई है। अत्यन्त सूक्ष्म तथा नियमित आकार वाले छिद्रों से युक्त एक छलनी तैयार की जा सकती है। छलनी के एक निश्चित क्षेत्रफल से होकर गुजरते हुए पानी के बहाव की रफ्तार मालूम कर इन छिद्रों का आकार मालूम किया जा सकता है। विषकणों के आकार मालूम करने के और तरीके, अति सूक्ष्म दर्शक या इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शक या एक शक्तिशाली सेन्ट्रीफ्यूज़ (केन्द्रापसारक) द्वारा लिये गए फोटोग्राफों पर निर्भर हैं। इन विषकणों का विस्तार एक सेन्टीमीटर के करोड़वें भाग के तीन सौ गुने (लगभग बैक्टिरिया के आकार) से लेकर दस गुने तक होता है।

प्रश्न उठता है कि ये विष-कण जीवित पदार्थ हैं या केवल बड़े आकार वाले रासायनिक अणु हैं। डब्ल्यू० एम० स्टैनली ने तम्बाकू के विष से एक उच्च अणु-भार वाला प्रोटीन प्राप्त किया जो विष के गुणों से युक्त था और कुछ-कुछ क्रिस्टल की तरह था। और भी बहुत-से विष हैं जो नियमित क्रिस्टलों के समान प्रतीत होते हैं। परन्तु इन विषों में जीवित पदार्थों के भी गुण पाये जाते हैं। ये जिन बीमारियों को जन्म देते हैं वे छूत वाली होती हैं तथा नये रोगी के शरीर में इनकी संख्या शीघ्रता से बढ़ने लगती है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये विष निर्जीव और जीवित पदार्थों की सीमा पर पाये जाने वाले पदार्थ हैं। यदि भविष्य में और अधिक प्रमाण उपलब्ध हुए, जैसी कि आशा है, तो सम्भव है विषों के अध्ययन से जीवन के उद्भव पर कुछ प्रकाश पड़े, परन्तु अभी तो अंधेरे में ही टटोलना है।

एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिए विष विभिन्न उपायों का सहारा लेते हैं। शरीर के एक भाग से दूसरे भाग तक वे रक्त, तन्तु और पन्छा (शरीर के भीतर एक रंग हीन द्रव) से होकर यात्रा करते हैं। एक रोगी से दूसरे रोगी तक जाने की क्रिया प्रायः बहुत जटिल होती है। तम्बाकू को सड़ाने वाली बीमारी के जन्मदाता विष वायुगामी होते हैं। कुछ विष, कीड़ों जैसे हरी तितली द्वारा ले जाये जाते हैं परन्तु भेड़ों तथा मवेशियों की कुछ बीमारियों के विष पिस्सुओं द्वारा ले जाये जाते हैं। केनेथ स्मिथ ने मालूम किया है कि पौधों की एक विशेष बीमरी दो प्रकार के विषों से उत्पन्न होती है। एक प्रकार का विष कीड़ों द्वारा ले जाया जाता है परन्तु दूसरे प्रकार का विष किसी अन्य प्रकार से एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाता है।

ऐसा पाया गया है कि जब किसी को छूत की बीमारी एक बार हो जाती है तो उसे वही बीमारी फिर नहीं होती। इसका सर्वविदित उदाहरण यह है कि साधारण चेचक की बीमारी से पीड़ित गाय के शरीर से निकाले गये एक प्रकार के द्रव के इंजेक्शन से भीषण चेचक रोग नहीं होता। बैक्टिरिया तथा अन्य दूसरी प्रोटीनों के इंजेक्शन से शरीर के भीतर ऐसे पदार्थों का निर्माण होता है जो विषों के प्रभाव को नष्ट करने में समर्थ होते हैं। इन पदार्थों को 'ऐन्टी-बाडीज़' कहते हैं। वे पदार्थ जो ऐन्टीबाडीज़ के निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं, 'ऐन्टोजेन्स कहे जाते हैं। हीडलबर्जर और केन्डल कुछ प्रमाण इस सम्बन्ध में उपस्थित करने में सफल हुए हैं कि ऐन्टीजेन् तथा ऐन्टीबाडी निश्चित रासायनिक अनुपात में परस्पर मिलते हैं। इस बात की ओर भी संकेत किया गया है कि इनका परस्पर मिलना, विपरीत आवेशों से युक्त दो कणों के मिलने जैसा है।

पाल अर्लिच ने, जो रोगाक्रांत न होने की क्षमता पर अधिकांश आरम्भिक अन्वेषण कार्य के लिये प्रसिद्ध है, १९१२ में आर्सेनिक युक्त एक ऐसे पदार्थ का निर्माण किया जो सिफिलिस (गर्मी) के कीटाणुओं

को नष्ट करने में विशेष रूप से समर्थ है। इस पदार्थ का नाम उसने सैलवर्सन रखा। १९२४ में फोर्नियो ने कार्बेमाइड से प्रसूत एक ऐसे पदार्थ को प्राप्त किया जो मिर्गी के कीटाणुओं को नष्ट करने की क्षमता रखता है। सल्फेनिलमाइड पर आधारित कृत्रिम रूप से बनाये गए कुछ रासायनिक पेय द्रव, स्ट्रेप्टोकोसाई और न्यूमोकोसाई बैक्टिरिया द्वारा उत्पन्न बीमारियों को नियंत्रित करने में समर्थ पाये गए हैं। इनमें से कुछ द्रवों की क्षमता इस बात पर निर्भर है कि वे बैक्टिरिया की वृद्धि के लिये आवश्यक पदार्थों को नष्ट कर देते हैं। फ्लेमिंग द्वारा निर्मित पेनिसिलिन विशेष रूप से शक्तिशाली है। यह एक पौधे 'मोल्ड' (एक प्रकार का पौधा जो भींगे कपड़ों तथा बासी रोटियों पर उगता है) से बनाई जाती है। 'सल्फेगुयेनाइडीन' आंव के लिये विशेष औषधि है।

डंकिन और लेडला ने मालूम किया कि फार्मेल्डिहाइड द्वारा कमज़ोर किये गए डिस्टेम्पर के विष का इंजेक्शन यदि दिया जाय तो कुत्तों को डिस्टेम्पर की बीमारी नहीं होती। बाद में किये गए प्रयोगों ने उपर्युक्त तथ्य की और पुष्टि कर दी। विषों द्वारा उत्पन्न कुछ बीमारियाँ जैसे जानवरों के पांव और मुँह की बीमारी और मनुष्यों के शीत ज्वर की बीमारी कई प्रकार की होती हैं। एक प्रकार की बीमारी से बचने की क्षमता दूसरे प्रकार की बीमारी से रक्षा करने में असमर्थ होती है। इसलिए ऐसी बीमारियों से पूर्ण रक्षा एक तरह से असम्भव-सी है।

मानव-विज्ञान—भौतिक मानव-विज्ञान प्राकृतिक इतिहास की एक शाखा है; सामाजिक मानव-विज्ञान एक ओर जहाँ मनोविज्ञान का स्पर्श करता है वहाँ दूसरी ओर भूगोल, समाज-शास्त्र तथा तुलनात्मक धर्म को भी स्पर्श करता है।

पृथ्वी के विभिन्न भागों में पाये जाने वाले मानव वर्गों में स्पष्ट रूप से भिन्नता पाई जाती है। यह भिन्नता मुख्यतया चमड़े के रंग से सम्बन्ध रखती है। अन्य लक्षण भी रंग के साथ संयुक्त होते हैं। यूरप के लोग

तीन जातियों में विभाजित किये गए हैं। उत्तर में और विशेषकर बाल्टिक समुद्र के किनारे नार्डिक जाति के लोग रहते हैं। ये लोग लम्बे और गोरे रंग के होते हैं और इनकी खोपड़ी लम्बी होती है। दक्षिण में भूमध्य सागर के पास भूमध्य सागरीय जाति के लोग पाये जाते हैं। ये लोग छोटे कद और भूरे रंग वाले होते हैं परन्तु इनकी खोपड़ी लम्बे आकार की होती है। मध्य यूरप में अल्पाइन जाति के लोग निवास करते हैं। ये लोग छोटे और मजबूत तथा बीच के रंग के होते हैं। इनकी खोपड़ी चौड़ी और गोल होती है। ये लोग एशिया के लोगों से मिलते-जुलते हैं। ये जातियाँ विशुद्ध रूप में केवल थोड़े क्षेत्रफलों में पाई जाती हैं और अन्य स्थानों में मिली-जुली होती हैं। फिर भी साधारण अध्ययन द्वारा इन्हें पहचाना जा सकता है।

पहले ऐसा सोचा जाता था कि समान सभ्यताओं का उदय एक ही समय परन्तु स्वतंत्र रूप से पृथ्वी के विभिन्न भागों में हुआ था। परन्तु विभिन्न कलाओं के अध्ययन ने इस धारणा के विरुद्ध इस दृष्टि-कोण का समर्थन किया है कि सब सभ्यताओं का एक ही स्रोत है। उदाहरण के लिए प्रस्तर स्तम्भों तथा अन्य प्रस्तर रचनाओं को सूर्य तथा नक्षत्रों की ओर उन्मुख कर खड़ा करने की व्यापक प्रथा जो मिश्र से लेकर स्टोनहेन्ज तक पाई जाती है, जातियों के परस्पर सम्बन्ध ही को नहीं प्रकट करती बल्कि सभ्यताओं के भी पारस्परिक सम्बन्ध की ओर संकेत करती है। यह सम्बन्ध लोगों के आपस में मिलने-जुलने तथा व्यापार से सम्भव हो सका होगा।

प्राचीन काल तथा वर्तमान काल की जंगली जातियों के सम्बन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों को, सर जेम्स फ्रेज़र ने अपनी महान् पुस्तक 'गोल्डेन बाऊ' में एकत्रित किया है। रिवर्स जैसे मानव-शास्त्र वेत्ताओं ने जंगली जातियों के बीच रहकर उनका मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है। रिवर्स ने एक नवीन प्रणाली का प्रयोग किया। यह मालूम करने के बाद कि जटिल प्रश्नों को समझने में जंगली मनुष्य असमर्थ होता है,

रिवर्स ने सरल और छोटे प्रश्नों का सहारा लिया। उनका उत्तर पाने के बाद उसने प्रश्नों को क्रमशः जटिल बनाया। उदाहरण के लिये जंगली मनुष्य से यह पूछना कि क्या वह अपनी मृत पत्नी की बहन से शादी कर सकता है, बेकार है। उससे पहले यह पूछना चाहिए कि क्या वह 'उस' स्त्री से शादी कर सकता है और तब पूछना चाहिए कि वह उस की क्या लगेगी और वह उस स्त्री का क्या है।

धर्म के सम्बन्ध में प्राचीन धारणा यह थी कि वह विश्वासों का एक समूह है। लोग अपने धर्म को ईश्वरीय विवेचन का साधन तथा दूसरे धर्मों को दन्तकथाओं पर आधारित मानते थे। ये विश्वास दृश्य रूप में विभिन्न पूजा-विधियों द्वारा प्रकट किये जाते थे। उन्नीसवीं शताब्दी तक यूनानी धर्म का अर्थ था यूनानी दंतकथायें, यद्यपि वे दंतकथायें किसी निश्चित धार्मिक विश्वास पर आधारित नहीं थीं। हाँ, उनमें रहस्यपूर्ण धारणाओं तथा एक पूजाविधि का जिसमें जादू टोना आदि को भी स्थान था, समावेश अवश्य था। समाज में किसी निश्चित विश्वास के पूर्व पूजाविधियाँ होती हैं और वे उस विश्वास को प्रभावित तथा नियन्त्रित करती हैं। इस तथ्य की तुलना आधुनिक मनोविज्ञान के कुछ रूपों से कीजिये जिनके अनुसार 'मनुष्य पर बाहरी उत्तेजनाओं की प्रतिक्रिया होती है इसलिये मनुष्य सोचता है'।

धर्म और विज्ञान का जादू से क्या सम्बन्ध है यह निश्चितपूर्वक नहीं बताया जा सकता। कुछ लोगों का विश्वास है कि जादू ही से धर्म और विज्ञान दोनों की उत्पत्ति हुई है। फ्रेज़र का मत है कि जादू से धर्म और धर्म से विज्ञान का जन्म हुआ। रिवर्स का कथन है कि जादू और धर्म का आदि स्रोत भय एवं रहस्यपूर्ण एक विशेष धारणा, 'माना' थी परन्तु टिलर का मत है कि आदि मनुष्य का यह विश्वास कि प्रत्येक वस्तु में एक जीवित शक्ति होती है, जादू और धर्म की उत्पत्ति के लिये उत्तरदायी है। प्रकृति के ऊपर अधिकार करने का प्रयत्न ही जादू है। जंगली मनुष्य चाहता है कि सूरज चमके और उसके लिये

वह सूर्यनृत्य करता है। कभी-कभी वह किसी जानवर से सम्बन्ध स्थापित करता है। ऐसी दशा में सम्भव है वह जानवर पवित्र मान लिया जाय; यह भी सम्भव है कि उस जानवर का स्पर्श वर्जित कर दिया जाय (टैबू); हो सकता है कि उस जानवर का मांस खाने से वह उसकी शक्ति से युक्त हो जाय। एक बहुत ही प्रचलित जादू वह है जिसमें वर्ष के चक्र का नाटक के रूप में अभ्यास किया जाता है। इस जादू द्वारा यह आशा की जाती है कि पैदावार अधिक होगी और जानवरों तथा मनुष्यों की संख्या में वृद्धि होगी।

जब जादू असफल सिद्ध होता है या उससे पूर्ण संतोष नहीं होता तब मनुष्य का ध्यान देवताओं की ओर जाता है। सभ्यता के विकास के साथ बेबिलोनिया वालों का टामुज़, यूनानियों के अडोनिस में परिवर्तित हो गया। टामुज़, उपज की देवी, महामाता इश्टर का पति है। यूनान में पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति के लिये अडोनिस और अफ्रोडाइट का मिलाप आवश्यक है। जादू और रहस्यात्मक धर्म की ये आधार भूत पूजाविधियाँ ईश्वर या प्रकृति से रहस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से की जाती थीं। किसी देवता के शरीर को खाकर (अन्न के देवता का शरीर अन्न है) जंगली मनुष्य उसके गुणों तथा शक्ति को प्राप्त करने की आशा रखता है। अंगूर के देवता डायोनिसास की पूजा के समय शराब पीना केवल आनन्द के लिये नहीं बल्कि पूजा की पूर्णता और पवित्रता के लिये आवश्यक है।

दसवां अध्याय

नवीन भौतिक विज्ञान तथा रसायन-शास्त्र

भौतिक-क्रान्ति—उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम पाँच वर्षों में भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में अकल्पित, आश्चर्यजनक तथा क्रान्तिकारी आविष्कार हुए। नब्बे वर्ष पूर्व डाल्टन ने परमाणु की कल्पना की थी। जैसा पहले कहा जा चुका है, यह परमाणु अविभाज्य समझा जाता था। परन्तु जे० जे० टाम्सन और रदरफोर्ड इस परमाणु को भी छिन्न-भिन्न करने में समर्थ हुए। वर्णपट से सम्बन्धित तथ्यों के आधार पर प्लैंक इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ताप, प्रकाश आदि की रश्मियाँ तरंगों से नहीं, बल्कि अपार्थिव कणों 'क्वैन्टा' से निर्मित होती हैं। परमाणु की गठन-व्यवस्था मालूम करने के सिलसिले में 'बोर' इस परिणाम पर पहुँचा कि परमाणु की रचना करने वाले कण अपने भ्रमण काल में न्यूटन के गति विज्ञान के नियमों का पालन नहीं करते। आगे चलकर यह स्पष्ट हो गया कि परमाणु की गठन व्यवस्था स्थूल यांत्रिक विज्ञान पर नहीं बल्कि तरंगीय यांत्रिक-विज्ञान (वेभ-मिकैनिक्स) पर आधारित है। न्यूटन की धारणा थी कि स्थान और समय एक दूसरे से पूर्णतया स्वतंत्र हैं और इनमें से प्रत्येक की अपनी अलग सत्ता है। परन्तु आइन्स्टीन ने सिद्ध कर दिया कि स्थान और समय एक दूसरे पर निर्भर हैं तथा इन का मान दर्शक की गति के साथ परिवर्तित होता रहता है। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त जिसने अरस्तू की धारणाओं को असत्य सिद्ध कर, आकाश-विज्ञान तथा यंत्र विज्ञान पर लगभग दो सौ वर्ष तक एकछत्र शासन किया था, आइन्स्टीन की दृष्टि में स्थान-काल निर्मित ब्रह्माण्ड की वक्रता का एक स्वाभाविक परिणाम मात्र रह गया।

इन महान् आविष्कारों और घटनाओं का सिलसिला १८९५ में आरम्भ हुआ जब रान्ट्‌जन संयोगवश 'क्ष' किरणों (एक्स रेज़) का आविष्कार करने में सफल हुआ। रान्ट्‌जन ने देखा कि प्रकाश-निरोधक आवरणों से परि-वेष्ठित होने पर भी फ़ोटो खींचने वाली पट्टियों पर निशान बन जाते हैं यदि उनके आस-पास ऐसी शीशे की नलियाँ रखी हों जिनमें से लगभग सब हवा निकाल ली गई हो और जिनमें विद्युत विसर्जन (इलेक्ट्रिक डिस्चार्ज) हो रहा हो। स्पष्ट ही इसका अर्थ यह हुआ कि नली के भीतर एक प्रकार की किरणें ('क्ष' किरणें) उत्पन्न होती हैं जो नली की दिवारों और प्रकाश-निरोधक आवरणों को पार कर फ़ोटो की पट्टी को प्रभावित करने में समर्थ होती हैं। सर्जरी और रोग-निवारण के क्षेत्र में ये किरणें कितनी उपयोगी और लाभप्रद सिद्ध हुई हैं यह पाठकों को मालूम ही है।

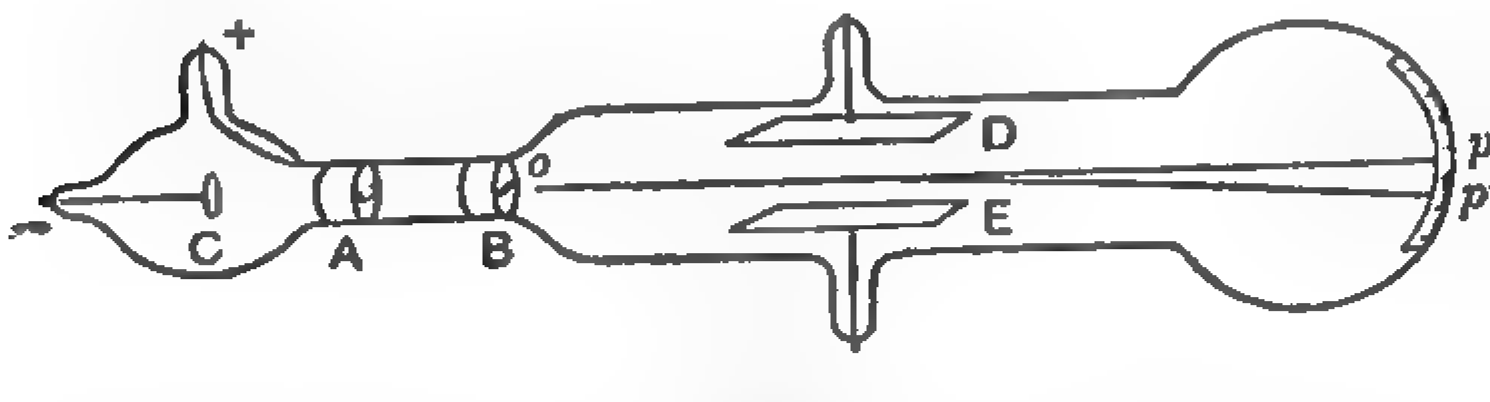
'क्ष' किरणें जब किसी गैस में से होकर गुजरती हैं तो वे उसे विद्युत् चालक बना देती हैं। टाम्सन और रदरफोर्ड ने इस क्रिया का सम्मिलित रूप से अध्ययन किया। यदि किसी अवरोधक-पट द्वारा किरणों को रोक दिया जाय तो गैस थोड़ी देर तक विद्युत् का चालन करने में समर्थ रहती है परन्तु कुछ काल पश्चात् उसकी चालन-शक्ति लुप्त हो जाती है। गैस को यदि शीशे के कणों से युक्त ऊन में से होकर, या धन और ऋण विद्युत से आवेशित दो पत्तरों के बीच से होकर जाने दिया जाय तो गैस की विद्युत् चालन शक्ति तुरत लुप्त हो जाती है। इन उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कल्पना करना स्वाभाविक प्रतीत होता है कि गैसों में भी विद्युत्-चालन, 'आयनों' की सहायता से सम्पन्न होता है। हां यह अवश्य है कि द्रवों में आयन अपने आप बनते रहते हैं परन्तु गैसों में आयन निर्माण की क्रिया 'क्ष' किरणों या किसी अन्य साधन द्वारा सम्पादित होती है। इस प्रकार निर्मित आयनों को कुछ काल तक यदि स्वतंत्र व्यवहार करने के लिए छोड़ दिया जाय तो वे परस्पर मिलकर गैस की विद्युत्-चालकता नष्ट कर देते हैं।

कैथोड किरणें और इलेक्ट्रान—१८६६ से ही यह बात मालूम थी कि जब एक लम्बी शीशे की नली में से जिसके दोनों सिरों पर प्लैटिनम के छड़ (विद्युत्द्वार) जड़े हों, एक पम्प द्वारा हवा निकाल ली जाती है और उसमें विद्युत् विसर्जन होने लगता है तब एक प्रकार की किरणें (कैथोड किरणें) सीधी रेखाओं में ऋण विद्युत्द्वार (कैथोड) से विकीरित होने लगती हैं। यही किरणें जब धन विद्युत्द्वार (ऐनोड) से टकराती हैं तब 'क्ष' किरणें उत्पन्न होती हैं। पहले इन कैथोड किरणों को प्रकाश किरणों की तरह तरंग निर्मित समझा गया। परन्तु बाद में जब यह मालूम हुआ कि ये किरणें चुम्बक द्वारा अपने पथ से स्थानान्तरित की जा सकती हैं, तब इनके सम्बन्ध में यह सोचा जाने लगा कि इनका निर्माण ऋण विद्युत् से आवेशित अत्यन्त सूक्ष्म कणों से होता है क्योंकि यह ज्ञात था कि प्रकाश किरणें चुम्बक से स्थानान्तरित नहीं होती हैं और विद्युत् वाही तार चुम्बक से प्रभावित होता है। यदि कण सिद्धान्त को हम सत्य मानें तो स्पष्ट है कि किसी कण का स्थानान्तरण उतना ही अधिक होगा जितना अधिक आवेश उस पर होगा और उतना ही कम होगा जितनी अधिक उसकी पदार्थ मात्रा होगी। अर्थात् उस कण का स्थानान्तरण उस कण के आवेश और पदार्थ मात्रा के अनुपात, $\left(\frac{इ}{म}\right)$, पर निर्भर होगा, इ = आवेश, म = पदार्थ मात्रा। परन्तु कण का स्थानान्तरण उसके वेग, व, पर भी निर्भर होगा। इस प्रकार उस कण से सम्बन्धित दो अज्ञात राशियाँ, $\frac{इ}{म}$ और व हैं और इनका मान या मूल्य मालूम करने के लिए दो समीकरणों की आवश्यकता है। चुम्बक द्वारा उत्पन्न स्थानान्तरण की मात्रा तथा इन कणों के कुछ अन्य गुणों के आधार पर, वीचर्ट और काफ़मैन ने $\frac{इ}{म}$ और व का मान मालूम किया। व का मान प्रकाश के वेग का लगभग

दशमांश था और $\frac{इ}{म}$ का मूल्य द्रवों में विद्युत् चालन करते समय पाये गए हाइड्रोजन आयन के $\frac{इ}{म}$ से कई गुना अधिक था। बाद में जे० जे० टाम्सन ने इन कणों को एक ऐसे खोखले बेलन में जिससे विद्युत् न बाहर जा सकती थी और न जिसमें विद्युत् बाहर से आ सकती थी, इकट्ठा कर उनका सम्मिलित आवेश मालूम किया। उसने यह भी मालूम किया कि ये कण एक 'ताप जोड़' (थर्मो कपुल) से टकरा कर कितना ताप उत्पन्न करते हैं। निश्चय ही उनकी ताप-उत्पादक शक्ति उनके वेग की द्योतक थी। इस प्रकार वह दो समीकरण स्थापित कर $\frac{इ}{म}$ और व दोनों को मालूम करने में समर्थ हुआ।

परन्तु अक्टूबर १८९७ में एक दूसरे यत्न से टाम्सन इन राशियों का और भी निश्चयतात्मक मूल्य मालूम करने में सफल हुआ। यदि कैथोड किरणें सचमुच ऋण विद्युत् से आवेशित कणों से निर्मित हैं तो वे न केवल चुम्बकीय-क्षेत्र में बल्कि विद्युत्-क्षेत्र (इलेक्ट्रिक-फील्ड) में भी स्थानान्तरित हो सकती हैं। विद्युत्क्षेत्र में इन कणों को स्थानान्तरित करने का प्रयत्न अभी तक असफल ही सिद्ध हुआ था। परन्तु टाम्सन चित्र में दिखाये गए उपकरण की सहायता से इस प्रयत्न में सफल हुआ। स कैथोड है और अ ऐनोड है। अ के बीच में एक बहुत पतला छिद्र है जिसमें से होकर कैथोड किरणें निकल सकती है। अ से कुछ ही दूरी पर एक दूसरी पत्तर ब है। इसमें भी एक बारीक सूराख़ है। इन छिद्रों की सहायता से रेखा के रूप में एक पतली कैथोड किरण प्राप्त की जा सकती है। यह किरण द और ई दो पत्तरों के बीच से गुज़रने के पश्चात् एक फोटो की पट्टी या प्रतिदीप्त पट (ऐसा पट जो किरणों से टकराते ही चमकने लगता है) से प बिन्दु पर टकराती है। द और ई को जब एक शक्तिशाली बैटरी के

धन और ऋण सिरों से जोड़ देते हैं तो उनके बीच में विद्युत्-क्षेत्र स्थापित हो जाता है और कैथोड किरण स्थानान्तरित होकर प्रतिदीप्त पट के प' बिन्दु से टकराती है। पूरे उपकरण को एक चुम्बक से आवृत कर चुम्बकीय क्षेत्र भी उत्पन्न किया जा सकता है और उस क्षेत्र द्वारा उत्पन्न स्थानान्तरण का मान भी मालूम किया जा सकता है। इस प्रकार प्राप्त दो समीकरणों द्वारा टाम्सन $\frac{इ}{म}$ और व का मान मालूम करने में समर्थ हुआ। इस प्रकार मालूम किये गए $\frac{इ}{म}$ का मान हाइड्रोजन के $\frac{इ}{म}$ से १८३७ गुना अधिक था। इसका अर्थ यह हुआ कि या तो कैथोड कण का आवेश हाइड्रोजन आयन के आवेश से कई गुना अधिक है या कैथोड कण की पदार्थ मात्रा हाइड्रोजन आयन की पदार्थ मात्रा से कई गुना कम है। टाम्सन इस मत का था कि कैथोड कण की पदार्थ मात्रा हइड्रोजन आयन की पदार्थ मात्रा से कई गुना कम है और इस धारणा के लिये प्रमाण प्रस्तुत करने का प्रयत्न वह करता रहा।



टाम्सन का कैथोड किरण-यंत्र

इस धारणा के लिये पहले ही से पर्याप्त आधार प्रस्तुत था कि द्रवों में पाये जाने वाले न्यूनतम विद्युत् मात्रा से युक्त आयन पर जितना विद्युत् आवेश होता है उतना ही विद्युत् आवेश गैसों में पाये जाने वाले प्रत्येक आयन पर भी होता है। परन्तु इस धारणा के लिये प्रत्यक्ष

प्रमाण भी उपलब्ध हो गया। बादलों के निर्माण में रजकण बहुत सहायक सिद्ध होते हैं क्योंकि पानी की बूँदें उन कणों पर आसानी से जमा हो जाती हैं। सी० टी० आर० विल्सन ने यह महत्त्वपूर्ण तथ्य मालूम किया कि गैसों में उत्पन्न आयन भी रजकणों की भाँति पानी की बूँदों को आसानी से अपने ऊपर जमाकर बादल बनाने में पूर्णतया समर्थ होते हैं। १८९९ में टाम्सन ने उपर्युक्त तथ्य का उपयोग गैसीय आयनों का आवेश मालूम करने के लिये किया। टाउन्सेन्ड ने यह मालूम कर कि गैसों के भीतर ये आयन किस गति से चलते हैं, इन आयनों का आवेश मालूम किया। इन सब प्रयोगों ने पूर्णरूप से सिद्ध कर दिया कि गैसीय आयनों पर उतना ही विद्युत् आवेश होता है जितना आवेश न्यूनतम आवेश वाले द्रवीय आयनों पर होता है।

अंत में जब यह मालूम कर लिया गया कि रा किरणों द्वारा गैसीय आयनों के निर्माण का रहस्य यह है कि ये किरणें गैसीय अणुओं से एक कैथोड कण अलग कर देती हैं, तब यह निष्कर्ष निकालना सरल हो गया कि आयन का आवेश कैथोड कण के आवेश के बराबर होता है। इस प्रकार कैथोड कण की आवेश-मात्रा इ मालूम की जा सकी। टाम्सन ने उन कणों का भी $\frac{इ}{म}$ और व मालूम कर जो नील लोहितोत्तर किरणों के एक जस्ते की पत्तर पर पड़ने से प्राप्त होते हैं, यह सिद्ध कर दिया कि ये कण भी प्रत्येक दृष्टि से कैथोड कणों के समान होते हैं। यही नहीं, यह भी देखा गया कि कैथोड नली में कोई भी गैस हो, किसी भी धातु का विद्युत्द्वार हो, हर हालत में ऐसे कण प्राप्त होते हैं जो आवेश और पदार्थ मात्रा दोनों दृष्टियों से एक दूसरे के सर्वथा अनुरूप होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि ये कैथोड कण प्रत्येक पदार्थ की रचना में भाग लेते हैं। इस प्रकार वैज्ञानिक, प्रत्येक पदार्थ की रचना में भाग लेने वाले उन मूल कणों में से कम-से-कम एक कण का पता लगाने में सफल हुए जिनकी तलाश शताब्दियों से दार्शनिक और विचारक बिना किसी वास्तविक सफलता के करते आ रहे थे।

यह अविष्कार एक दूसरे नवीन सिद्धान्त से सम्बन्धित किया गया। मैक्स्वेल के सिद्धान्तानुसार प्रकाश एक प्रकार का विद्युत्-चुम्बकीय तरंग-समूह है और विद्युत् कणों के कम्पन के समय उसकी उत्पत्ति होती है। लोरेन्ट्ज़ ने यह कल्पना की कि प्रत्येक परमाणु में कुछ विद्युत् कण होते हैं और इन्हीं के कम्पन से प्रकाश उत्पन्न होता है। ज़ीमैन के इस आविष्कार ने कि यदि सोडियम का प्रकाश एक शक्तिशाली चुम्बकीय-क्षेत्र से होकर जाने दिया जाय तो उसके वर्ण पट की रेखाएँ चौड़ी हो जाती हैं, लोरेन्ट्ज़ की उपर्युक्त धारणा का समर्थन कर दिया। रेखाओं की चौड़ाई में हुई वृद्धि को मालूम कर यह मालूम किया गया कि सोडियम परमाणु के विद्युत् कणों का $\frac{इ}{म}$ कितना है। इन कणों का $\frac{इ}{म}$ भी कैथोड कणों के $\frac{इ}{म}$ के बराबर पाया गया। लोरेन्ट्ज़ ने इन विद्युत् कणों को, जान्सटन स्टोनी द्वारा सर्व-प्रथम प्रयुक्त 'इलेक्ट्रान' नाम दिया। टाम्सन ने भी कैथोड कणों के लिए यही नाम स्वीकार करना उपयुक्त समझा।

टाम्सन के अनुसार परमाणु, धन विद्युत् का गेंद था जिसमें इलेक्ट्रान या तो विभिन्न कक्षाओं पर स्थिर होते हैं या ग्रहों की भांति घूमते रहते हैं। किसी परमाणु से क्ष किरण द्वारा या अन्य किसी प्रकार से जब कोई इलेक्ट्रान अलग होकर बाहर आता है तब वह परमाणु धन विद्युत् आवेशित या धन आयन हो जाता है। अलग हुआ इलेक्ट्रान यदि किसी दूसरे परमाणु से जा मिलता है तब वह परमाणु ऋण आयन हो जाता है। इस दृष्टि से इलेक्ट्रान स्वयं एक प्रकार का ऋण आयन है। किसी परमाणु में यदि एक ही इलेक्ट्रान हो तो वह परमाणु के केन्द्र पर स्थित होता है। यदि दो इलेक्ट्रान हों तो वे एक व्यास के दोनों सिरों पर होते हैं। तीन इलेक्ट्रान एक त्रिभुज के तीनों शीर्ष बिन्दुओं पर पाये जाते हैं। परन्तु यदि इलेक्ट्रान की

संख्या सात या आठ से अधिक हो तो इलेक्ट्रान किसी विशेष आकृति की सीमा के भीतर न रह कर दूसरी कक्षाओं पर भी चले जाते हैं। परमाणुओं में इलेक्ट्रान की उपर्युक्त व्यवस्था के आधार पर, कुछ हद तक रासायनिक बंधकता (विभिन्न तत्वों के परमाणुओं की हाइड्रोजन परमाणु की विभिन्न संख्याओं से मिलने की क्षमता) तथा तत्व-सारिणी (पिरियाडिक टेबुल) में हर आठवें तत्व की परस्पर रासायनिक समानता का रहस्य समझना सम्भव हो सका। परन्तु टाम्सन के उपर्युक्त परमाणु चित्र को, रदरफोर्ड के 'केन्द्रकीय परमाणु' (न्यूक्लियर ऐटम) के लिये शीघ्र ही स्थान खाली करना पड़ा। टाम्सन की धारणाएँ जो मुख्यतया न्यूटन के सिद्धान्तों पर आधारित थीं, परमाणु के वर्णन के लिए अयोग्य सिद्ध हुईं और उनके स्थान पर नवीन यद्यपि अपेक्षाकृत अस्पष्ट धारणाओं की शरण लेनी पड़ी।

रश्मि विकीरण-क्रिया (रेडियो ऐक्टिविटी)—कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं कि यदि उन्हें साधारण प्रकाश या अन्य प्रकार की रश्मियों में कुछ देर तक रखने के बाद फिर अंधेरी जगह में रख दिया जाय तो वे फिर भी कुछ देर तक प्रकाश विकीरित करते रहते हैं। ऐसे पदार्थों को स्फुरक (फ़ास्फ़ोरेसन्ट) पदार्थ कहते हैं। क्ष किरणें भी स्फुरक पदार्थों को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित करती हैं। रान्ट्जन के आविष्कार के बाद ऐसे पदार्थों की तलाश की जाने लगी जो प्रथम बिना किसी प्रकार की रश्मि के सम्पर्क में आये ही स्वयं, किसी न किसी प्रकार की रश्मि प्रदान करने में समर्थ हों। १८९६ में हेनरी बेकेरल ने मालूम किया कि यूरेनियम के नमक और यूरेनियम स्वयं लगातार ऐसी रश्मियों को विकीरित करते रहते हैं जो काले काग़ज़ से ढकी हुई फ़ोटो की पट्टियों को भी प्रभावित करने में समर्थ होती हैं। यही नहीं, तत्काल ही यह भी मालूम किया गया कि ये किरणें क्ष किरणों की तरह, गैसों को विद्युत् चालक बनाने में भी समर्थ हैं।

१९०० में क्यूरी दम्पति ने इस प्रकार की रश्मि विकीरण करने वाले रासायनिक तत्वों, यौगिक पदार्थों तथा अन्य प्राकृतिक पदार्थों की

खोज में बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने मालूम किया कि यूरैनियम युक्त पिचब्लेन्डी तथा अन्य खनिज, यूरैनियम की अपेक्षा ऐसी किरणों को विकीरित करने में अधिक क्रियाशील थे। रश्मिविकीरण क्रिया को ही परीक्षा का साधन बनाकर उन्होंने रासायनिक ढंग से एक ऐसे पदार्थ को ढूंढ निकाला जिसकी रश्मि विकीरण शक्ति आश्चर्य चकित करने वाली थी। इस पदार्थ का नाम उन्होंने 'रेडियम' रखा। अन्य अनुसंधान कर्ताओं ने रश्मि विकीरक दूसरे दो तत्वों, पोलोनियम और ऐक्टिनियम का पता लगाया। पिचब्लेन्डी में रेडियम की मात्रा बहुत ही कम होती है। पिचब्लेन्डी की कई टन मात्रा में रेडियम के एक नमक की मात्रा केवल एक ग्रैम के एक तुच्छ अंश के बराबर होती है।

१८६६ में रदरफोर्ड ने मालूम किया कि यूरैनियम द्वारा विकीरित रश्मि में वस्तुतः तीन प्रकार की रश्मियाँ होती हैं। इनका नाम उसने अल्फा, बीटा और गामा रखा। अल्फा रश्मि की भेदन शक्ति कम होती है और वह केवल बहुत पतली पत्तरों को पार कर सकती है। बीटा रश्मि की भेदन शक्ति कुछ और अधिक होती है। अल्यूमिनियम की आधी मिलीमीटर मोटी पत्तर को पार करने के बाद भी उसकी शक्ति केवल आधी ही क्षीण हो पाती है। गामा रश्मि की भेदन शक्ति सबसे अधिक होती है। चुम्बक द्वारा उत्पन्न स्थानान्तरण का परिमाण मालूम कर यह निष्कर्ष निकाला गया कि अल्फा रश्मि का निर्माण दो धन आवेशों से युक्त हीलियम के परमाणुओं से, तथा बीटा रश्मि का निर्माण द्रुत गामी ऋण कणों (इलेक्ट्रान) से होता है। गामा रश्मि का निर्माण स्थूल कणों से नहीं बल्कि प्रकाश की तरह, तरंगों से होता है। हाँ, इन तरंगों की लम्बाई प्रकाश तरंगों की लम्बाई की तुलना में बहुत ही छोटी होती है।

क्रूक्स ने मालूम किया कि अमोनियम कार्बोनेट की सहायता से घोल से प्राप्त यूरैनियम में, एक बहुत ही क्रियाशील पदार्थ की थोड़ी मात्रा होती है। इसका नाम उसने x यूरैनियम रखा। बाकी यूरैनियम,

इस ह यूरेनियम से कम क्रियाशील होता है। रदरफोर्ड और उसके सहयोगियों ने भी ऐसे बहुत से रासायनिक परिवर्तनों का पता लगाया जिनमें रेडियम और थोरियम, रश्मि विकीरक गैसों को जन्म देते हैं। इन गैसों का नाम उन्होंने 'उद्गार' (इमानेशन्स) रखा। यह पाया गया कि रश्मि विकीरण क्रिया के दौरान में हमेशा रासायनिक क्रिया घटित होती है और नये तत्व उत्पन्न होते हैं। यूरेनियम एक नये तत्व को जन्म देता है। वह तत्व भी एक दूसरे तत्व को जन्म देता है। यह क्रिया लगभग पन्द्रह पीढ़ी तक चलती है और रेडियम से होती हुई अन्त में सीसे पर जाकर समाप्त होती है क्योंकि सीसा रश्मि विकीरक नहीं है।

रेडियो धर्मी पदार्थ क्रियाशीलता की दृष्टि से एक-दूसरे से बहुत भिन्न होते हैं। किसी रेडियो धर्मी पदार्थ की कुछ मात्रा यदि ली जाय तो वह सब की सब एक ही समय रश्मि विकीरण कर दूसरे तत्वों में नहीं परिवर्तित हो जाती। उपर्युक्त क्रिया प्रत्येक पदार्थ में एक विशेष गति से सम्पन्न होती है। यूरेनियम की एक निश्चित मात्रा का केवल आधा भाग ४.५×१०^{९} वर्ष में परिवर्तित हो पाता है। जितने दिन में किसी रेडियो धर्मी पदार्थ का आधा भाग रश्मि विकीरण क्रिया द्वारा परिवर्तित होता है उस समय को उस पदार्थ का 'अर्ध जीवन काल' कहते हैं। रेडियम, रेडियम उद्गार, रेडियम ए और रेडियम सी का अर्ध-जीवन-काल क्रम से १६०० वर्ष, ३.८२ दिन, ३.०५ मिनट और $१०^{-६}$ सेकण्ड है। कुछ पदार्थ रश्मि विकीरण क्रिया में केवल अल्फा किरण और कुछ बीटा और गामा किरणें विकीरित करते हैं। प्रत्येक परिवर्तन इस प्रकार घटित होता है कि किसी अल्प काल में पदार्थ की क्रियाशीलता की गति, उस काल के आरम्भ में पाई जाने वाली उसकी क्रियाशीलता के अनुसार कम या अधिक होती है। यही नियम उस समय भी चरितार्थ होता है जब कोई रासायनिक यौगिक पदार्थ अपेक्षाकृत सरल पदार्थों में विघटित होता है और इस विघटन क्रिया में जब अणु अलग-अलग व्यक्तिगत रूप में भाग लेते हैं।

१९०३ में क्यूरी और लेबोर्ड ने यह महत्वपूर्ण तथ्य मालूम किया कि रेडियम युक्त पदार्थ लगातार ताप विकीरित करते रहते हैं। उन्होंने हिसाब लगाया कि एक ग्रैम रेडियम प्रति घंटा १०० ग्रैम-कैलरी ताप देता है। उन दोनों ने यह भी मालूम किया कि उच्च या निम्न बाह्य तापक्रम का, रेडियम की ताप-प्रदान करने की क्षमता पर कुछ भी असर नहीं पड़ता। इस प्रकार रश्मि विकीरण क्रिया के समय जो शक्ति प्राप्त होती है वह भीषण से भीषण रासायनिक क्रिया के समय प्राप्त होने वाली शक्ति से सहस्त्रों गुना अधिक होती है।

रश्मि विकीरण क्रिया एक प्रकार की रासायनिक क्रिया है जिसमें अणु व्यक्तिगत रूप से भाग लेते हैं। प्रत्येक परिवर्तन के समय एक नया तत्व उत्पन्न होता है और अत्यधिक शक्ति विकीरित होती है। रश्मि विकीरण क्रिया से सम्बन्धित सम्पूर्ण तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए रदरफोर्ड और साडी ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि रश्मि-विकीरण क्रिया परमाणुओं के व्यक्तिगत रूप में विघटित होने का परिणाम है। करोड़ों परमाणुओं में से कभी-कभी एक परमाणु विघटित होता है और इस क्रिया में अल्फ़ाकण, या बीटाकण और गामा रश्मियों को बाहर निष्कासित करता है और स्वयं दूसरे तत्व के परमाणु में परिवर्तित हो जाता है।

डिमाक्रिटस के समय से लेकर डाल्टन के काल तक परमाणु-सिद्धान्त किसी परमाणु के सम्बन्ध में व्यक्तिगत रूप से कुछ कहने में असमर्थ था। करोड़ों परमाणुओं के औसत गुणों के सम्बन्ध में ही वह कुछ कह सकता था। गैसों के 'चल सिद्धान्त' के अनुसार एक घन सेन्टीमीटर में लगभग २.७×१०^{१९} अणु होते हैं। परन्तु रश्मिविकीरण क्रिया ने कई ऐसे साधनों को प्रस्तुत कर दिया जिनकी सहायता से परमाणुओं की व्यक्तिगत सत्ता का आभास मिल सकता है। कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं जिन पर यदि कुछ प्रकार की किरणें या कण आकर पड़ें तो वे चमकने लगते हैं। परन्तु जैसे ही वे किरणें या कण रोक दिये जाते हैं उन

पदार्थों की चमक भी जाती रहती है। ऐसे पदार्थों को प्रतिदीप्त (फ्लूरेसन्ट) पदार्थ कहते हैं और ऐसे पदार्थों से लिप्त किसी पट को प्रतिदीप्त पट कहते हैं। ज़िन्क सल्फाइड एक ऐसा ही पदार्थ है। क्रूक्स ने एक विस्तारक लेन्स की सहायता से यह देखा कि जब रेडियम ब्रोमाइड से निकले हुए अल्फ़ाकण ज़िन्क सल्फाइड से लिप्त एक पट पर आकर पड़ते हैं तो एक चमक पैदा होती है। प्रत्येक अल्फ़ाकण (हीलियम परमाणु) पट से टकरा कर चमक उत्पन्न करने में समर्थ होता है। इसके बाद रदरफोर्ड ने मालूम किया कि विद्युत् मापक यंत्र की सूई पर प्रत्येक बार एक झटका लगता है जब एक अल्फाकण उस यंत्र के सम्पर्क में स्थित गैस से होकर गुज़रता है। स्पष्ट ही, अल्फ़ाकण उस गैस को आयनित कर उसे विद्युत् चालक बना देता है और इसी कारण यंत्र की सुई पर झटका लगता है। इस प्रकार सुई के झटकों को गिनकर यह मालूम किया जा सकता है कि कितने अल्फ़ाकण किसी समय में निष्कासित हुए हैं। सी० टी० आर० विल्सन ने यह मालूम किया कि यदि किसी नम गैस से होकर अल्फ़ाकण गुजरे तो उसके पथ का फोटो लिया जा सकता है। अल्फ़ाकण अपने मार्ग में पड़ने वाले गैसीय अणुओं को आयनित कर देता है। इन आयनों पर और केवल इन्हीं आयनों पर पानी की बूँदें जमा हो जाती हैं। इन बूँदों द्वारा बना हुआ पथ, अल्फ़ाकण के मार्ग का सूचक होता है। रेडियम द्वारा निष्कासित अणुओं की गणना कर रेडियम का अर्ध-जीवन-काल निश्चित किया जा सकता है।

बूंदों से बना हुआ अल्फाकण का पथ साधारणतया सीधा होता है परन्तु कभी-कभी उसके पथ में एक स्पष्ट मोड़ दिखाई देता है (प्लेट ८ देखिये)। इलेक्ट्रान चूँकि अल्फाकण की अपेक्षा बहुत हल्के होते हैं इसलिए वे अल्फ़ाकण को अपने पथ से विचलित नहीं कर सकते। फिर अल्फ़ाकण का पथ कैसे मुड़ जाता है? रदरफ़ोर्ड ने इस कठिनाई को हल करने के लिए यह कल्पना की कि धन विद्युत् समान रूप से एक विस्तृत गोलाकार आयतन में वितरित न होकर, परमाणु के केन्द्र में

स्थित एक अत्यधिक घनत्व परन्तु अत्यल्प आकार वाले केन्द्रक (न्यूक्लियस)में केन्द्रित होती है। हाइड्रोजन के परमाणु के केन्द्रक को, जिसे प्रोटान भी कहते हैं, पदार्थ मात्रा इलेक्ट्रान की पदार्थ मात्रा का लगभग १८३७ गुना होती है । यह भारी केन्द्रक जिसकी पदार्थ मात्रा लगभग परमाणु की पदार्थ मात्रा के बराबर होती है, इस योग्य होता है कि वह अल्फाकण को रोक दे या अपने पथ से विचलित करदे क्योंकि केन्द्रक की और अल्फाकण की पदार्थ मात्रायें एक ही श्रेणी की होती हैं । हाइड्रोजन परमाणु में केन्द्रक के बाहर एक इलेक्ट्रान होता है । आरम्भ में न्यूटन की धारणाओं के प्रभाव के कारण ऐसा सोचा गया कि इलेक्ट्रान एक कक्ष पर केन्द्रक की परिक्रमा किया करता है । परन्तु बाद में इस धारणा को तिलाञ्जलि दे दी गई । इस धारणा का स्थान किस नवीन धारणा ने लिया, इसका वर्णन करने के पहले हम उन तथ्यों और सिद्धान्तों का वर्णन कर देना आवश्यक समझते हैं जो इस बीच प्रकाश में आये ।

क्ष किरणें और परमाणु-संख्या (अटामिक नम्बर)—रान्ट्जन ने जिन क्ष किरणों का आविष्कार किया वे अल्फा, बीटा और कैथोड की भांति चुम्बक या विद्युत् द्वारा अपने पथ से स्थानान्तरित या विचलित नहीं की जा सकती थीं । इस कारण उनके सम्बन्ध में यह सोचा गया कि उनकी प्रकृति प्रकाश की तरह तरंगात्मक है। परन्तु प्रकाश के मुख्य गुणों का क्ष किरणों में सर्वथा अभाव पाया गया । उदाहरणार्थ प्रकाश जब किसी धातु या पालिश किये हुए पट पर पड़ता है तो परावर्तित होकर वापिस लौट आता है। शीशे या जल में से होकर गुज़रता है तो अपने प्रथम पथ से विचलित हो जाता है। यही नहीं परावर्तित प्रकाश की यह विशेषता होती है कि वह एक विशेष प्रकार के शीशे में से एक तरफ से होकर गुज़र सकता है परन्तु दूसरी तरफ से नहीं। एक धातु की पत्तर पर यदि समान अंतर पर घनी रेखाएँ खोद दी जायं और उस पत्तर पर यदि प्रकाश पड़े तो वह परावर्तित होकर एक प्रकार का वर्ण

पट देने में समर्थ होता है। च किरणों में ये सब बातें नहीं पाई गईं। परन्तु १९१२ में 'ला' ने इस बात की ओर संकेत किया कि यदि हम यह कल्पना करें कि च किरणों का जिन तरंगों से निर्माण होता है उनकी लम्बाई प्रकाश-तरंगों की लम्बाई की अपेक्षा बहुत ही छोटी होती है तो इसकी आशा की जा सकती है कि वे मणिभ (क्रिस्टल) पदार्थों द्वारा परावर्तित होकर वर्णपट उत्पन्न करने में वैसे ही समर्थ होंगी जैसे साधारण प्रकाश किरणें रेखामय पट (ग्रेटिंग) से परावर्तित होकर वर्ण पट उत्पन्न करती हैं। मणिभ पदार्थों में परमाणु नियमित रूप से सजाये हुए होते हैं। ये परमाणु रेखायें ग्रेटिंग की कृत्रिम रेखाओं के अनुरूप होती हैं। इन परमाणु रेखाओं के बीच का अन्तर ग्रेटिंग की रेखाओं के बीच के अन्तर से बहुत ही कम होता है। फ्रिडरिख और किपिंग ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया कि ला की उपर्युक्त कल्पना सत्य से दूर नहीं है। सर विलियम और सर लारेंस ब्रैग ने इस सम्बन्ध में बहुत कार्य किया। चट्टानी नमक द्वारा जो घन आकार का एक साधारण मणिभ पदार्थ है, च किरणों को परावर्तित कर ब्रैग द्वय ने ऐसी वर्णपट रेखाओं को प्राप्त किया जिनकी सहायता से वे यह सिद्ध करने में समर्थ हुए कि परमाणु रेखाओं के बीच का अन्तर २.८१×१०^{-८} सेंटीमीटर होता है। इसी प्रयोग द्वारा उन्होंने मालूम किया कि पलैडियम तत्व द्वारा उत्पन्न लक्षक (कैरेक्टरिस्टिक) च किरणों की तरंग-लम्बाई $.५७६ \times १०^{-८}$ सेंटीमीटर, अर्थात् सोडियम प्रकाश की तरंग लम्बाई से दस सहस्र गुना छोटी होती है। बेतार के तार में प्रयुक्त होनेवाली लम्बी-से-लम्बी तरंगों से लेकर च और गामा किरणों की छोटी-से-छोटी तरंगों के बीच का सम्पूर्ण विद्युत्-चुम्बकीय तरंग-क्षेत्र आज हमें ज्ञात है। यदि इस सम्पूर्ण क्षेत्र को हम साठ बराबर भागों में विभाजित करें तो केवल एक भाग में ही दिखाई देने वाली सब प्रकाश तरंगें आ जायंगी।

सोडियम और पोटैशियम क्लोराइड के ऊपर जो काम किया गया उससे इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि इन पदार्थों का निर्माण इनके

अणुओं से नहीं होता बल्कि एकांतर क्रम से रखे हुए धन और ऋण आयनों से होता है। अन्य जटिल अकार्बनिक पदार्थों के अध्ययन से भी उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि हुई। उदाहरणार्थ यह पाया गया कि सिलिकेटों में सिलिकन-आक्सीजन के ढांचे के बीच धन आयन होता है। परन्तु कार्बनिक रसायन शास्त्र, अणुओं की धारणा पर आधारित है और क्ष किरणों द्वारा सम्पादित विश्लेषण ने सिद्ध कर दिया कि वैज्ञानिकों के गठन सम्बन्धी सूत्र यथार्थ हैं। क्ष किरणों की सहायता से मणिभ धातुओं और धातु-मिश्रणों का विश्लेषण सम्भव हो सका है और हरजाग, आस्टबरी और बर्नल आदि वैज्ञानिकों ने सेल्युलोज़, केराटिन और प्रोटीन जैसे जटिल जीवात्मक-रासायनिक पदार्थों का परीक्षण किया है।

कैथोड किरणें जब किसी ठोस पदार्थ से टकराती हैं तब उस पदार्थ से क्ष किरणें निःसृत होती हैं। तत्व सारिणी के विभिन्न ठोस तत्वों को बारी बारी से कैथोड किरणों का निशाना बनाकर तथा उनसे निःसृत क्ष किरणों का पोटैशियम फ़ेरोसियनाइड द्वारा परीक्षण कर, मोसले इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि बढ़ते हुए वज़न के अनुसार, क्रम से लिये गए प्रत्येक दो तत्वों की तीव्रतम लक्षक रेखाओं की आवृतियों (फ्रिकेन्सीज़) के वर्गमूलों का अन्तर समान होता है। प्रत्येक तत्व की रेखा-आवृति के वर्गमूल का ऐसी संख्याओं से गुणन कर कि उपर्युक्त अंतर हर हालत में इकाई हो, मोसले अल्यूमिनियम (१३) से लेकर स्वर्ण (७९) तक, ठोस तत्वों के लिये परमाणु संख्याओं की एक माला प्राप्त करने में समर्थ हुआ। अन्य ज्ञात तत्वों को उचित परमाणु संख्या निश्चित करने के पश्चात् मालूम हुआ कि हाइड्रोजन (१) से लेकर यूरैनियम (९२) के बीच केवल चार या पांच रिक्त स्थान अज्ञात तत्वों के लिये रह जाते हैं। इन अज्ञात तत्वों में से भी कुछ मालूम कर लिये गए हैं और उन्हें तत्व सारिणी में उचित स्थान प्रदान कर दिया गया है। हमें यहाँ यह लिखते हुए दुख हो रहा है कि उपर्युक्त महान् आविष्कार करने के कुछ ही दिन बाद प्रखर प्रतिभा-सम्पन्न अंग्रेज़ वैज्ञानिक मोसले प्रथम विश्व

युद्ध में मारा गया। इंगलैण्ड ही क्यों, सारे विज्ञान जगत् की उसकी मृत्यु से जो क्षति हुई वह कभी पूरी नहीं हो सकती।

धन किरणें तथा सम स्थानीय तत्व (आइसोटोप्स)—कैथोड किरणों में पाये जाने वाले कण ऋण विद्युत् से आवेशित होते हैं। कैथोड नली में ऐनोड (धन विद्युत् द्वार) से भी एक प्रकार की किरणें निकलती हैं। ऐनोड के सामने स्थित कैथोड (ऋण विद्युत् द्वार) में यदि सूराख़ कर दिये जाँय, तो ऐनोड किरणें इन सूराखों से होकर निकलती हैं और कैथोड के दूसरी ओर इनका पता लगाया जा सकता है। १८९८ में चुम्बकीय और विद्युत् क्षेत्रों द्वारा उत्पन्न उनका स्थानान्तरण, प्रथम वीन और बाद में टाम्सन द्वारा मालूम किया गया। इन नापों द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया कि ऐनोड किरणों की रचना धन विद्युत् से आवेशित कणों द्वारा होती है परन्तु इन कणों की पदार्थ मात्राओं की तुलना परमाणुओं और अणुओं की पदार्थ मात्राओं से की जा सकती है।

१९१०-११ में टाम्सन ने एक काफ़ी लम्बा-चौड़ा पात्र लिया। इसमें से पम्प द्वारा लगभग सम्पूर्ण हवा निकाल ली गई थी। कैथोड में से गुज़रती हुई एक लम्बी पतली नली द्वारा एक बहुत ही पतली धन-किरण प्राप्त की जा सकी। इस किरण को उपकरण में ही रखी हुई एक फ़ोटो की पट्टी पर गिरने दिया गया। चुम्बकीय और विद्युत् क्षेत्रों को इस प्रकार व्यवस्थित किया गया कि वे एक दूसरे से समकोण बनायें। चुम्बकीय स्थानान्तरण उतना ही कम होता है जितना ही अधिक कणों का वेग होता है परन्तु वैद्युत् स्थानान्तरण कणों के वेग के वर्ग के अनुसार कम होता है। यदि धन किरण में स्थित सारे कण अन्य दृष्टियों से एक दूसरे के सर्वथा अनुरूप हों परन्तु विभिन्न वेगों से युक्त हों तो फोटो की पट्टी पर एक परवलय चित्रित हो जायगा। पट्टी पर चित्रित रेखाओं की प्रकृति और स्थिति नली के भीतर अवशेष गैस के ऊपर निर्भर होती है। यदि नली में हाइड्रोजन गैस हो तो पट्टी पर

चित्रित प्रधान रेखा के निर्माता कणों का $\frac{इ}{म}$ लगभग $१०^४$ के बराबर पाया जाता है। द्रवों में पाये जाने वाले हाइड्रोजन आयन का $\frac{इ}{म}$ भी लगभग इतना ही होता है। उसी पट्टी पर एक दूसरी रेखा भी पाई जाती है जिस के निर्माता कणों का $\frac{इ}{म}$ प्रथम प्रकार के कणों के $\frac{इ}{म}$ का ठीक आधा होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि हाइड्रोजन के दो प्रकार के परमाणु होते हैं। एक प्रकार के परमाणुओं की पदार्थ मात्रा दूसरे प्रकार के परमाणुओं की पदार्थ मात्रा की दूनी होती है।

नीयन गैस भी जिसका परमाणु भार २०·२ है दो रेखाओं को जन्म देती है। एक रेखा के कणों का परमाणु भार २० और दूसरी रेखा के कणों का परमाणु भार २२ होता है। इस तथ्य ने इस बात की ओर संकेत किया कि प्रयोगशाला में बनाई गई साधारण नीयन गैस दो प्रकार के परमाणुओं का मिश्रण है। इन परमाणुओं के भार यद्यपि भिन्न होते हैं परन्तु उनके रासायनिक गुणों में कोई भिन्नता नहीं होती। रेडियो-धर्मी तत्वों में भी पाया गया कि कई तत्व रासायनिक दृष्टि से परस्पर अनुरूप होते हैं परन्तु उनके परमाणुओं के भारों में भिन्नता होती है। ऐसे तत्वों को साडी ने आइसोटोप (सम स्थानीय तत्व) नाम दिया क्योंकि तत्व सारिणी में ऐसे सब तत्वों का एक ही स्थान होता है। उदाहरणार्थ दोनों प्रकार के हाइड्रोजन तत्वों का तत्व सारिणी में एक ही स्थान (१) है। इसी प्रकार दोनों प्रकार की नीयन गैसों का भी एक स्थान (१०) है। तत्व सारिणी में तत्वों का स्थान उनके रासायनिक गुणों के अनुसार निश्चित किया जाता है।

टाम्सन द्वारा आरम्भ किये गये कार्य को एफ. डबल्यू. आस्टन ने बहुत आगे बढ़ा दिया। उसने बहुत से तत्वों का मात्रा-वर्णपट (मॉस स्पेक्ट्रम) प्राप्त किया। आक्सीजन का परमाणु भार (अटामिक वेट) यदि

१६ मान लिया जाय तो प्रायः सभी तत्वों के परमाणु भार पूर्ण संख्याओं द्वारा प्रकट किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिये क्लोरीन का परमाणु भार ३५.४६ है परन्तु आज हम जानते हैं कि वस्तुतः साधारण क्लोरीन दो प्रकार की क्लोरीन का मिश्रण है जिनके परमाणु भार पूर्ण संख्याओं ३५ और ३७ द्वारा प्रकट किये जा सकते हैं। आस्टन का प्रथम उपकरण (आज कल वह दक्षिणी केन्सिगटन के विज्ञान संग्रहालय में है) जब कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ तो नये तथ्यों की बाढ़ सी आने लगी। १६३३ में आस्टन ने कहा था, "सम्प्रति पर्याप्त मात्रा में पाये जाने वाले तत्वों में केवल १८ ऐसे हैं जिनका विश्लेषण अभी तक नहीं हो सका है।" १६३५ तक लगभग २५० स्थायी सम-स्थानीय-तत्वों का पता लगा लिया गया। एक से लेकर २१० के बीच की सभी पूर्ण संख्यायें किसी न किसी तत्व के परमाणु भार को प्रकट करती हैं। इस प्रकार प्राउट की कल्पना सत्य सिद्ध हो चुकी है। कुछ संख्याओं से सम्बन्धित एक से अधिक तत्व हैं। इन तत्वों को आइसोबार कहते हैं। इनके रासायनिक गुणों में अन्तर होता है परन्तु इनके परमाणु भार समान होते हैं।

हाइड्रोजन के केन्द्रक अर्थात् प्रोटान का वज़न आस्टन द्वारा १·००७६ निश्चित किया गया। परन्तु इसका वर्तमान मूल्य १·००८३७ निश्चित किया गया है। १६३२ में उरे ने आंशिक पृथक्करण प्रणाली के आधार पर यह मालूम किया कि साधारण हाइड्रोजन में एक विशेष प्रकार का हाइड्रोजन, ४००० और १ के अनुपात में पाया जाता है। इस विशेष हाइड्रोजन का परमाणु भार २ होता है। इसको ड्यूटेरियम और इसके आयन (इलेक्ट्रान रहित ड्यूटेरियम) को ड्यूटेरान कहते हैं। जल में विद्युत् प्रवाहित कर वाशबर्न एक नया पदार्थ, भारी जल, प्राप्त करने में समर्थ हुआ। लिविस ने इस भारी जल को पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करने का प्रयत्न ढूंढ निकाला। भारी जल, साधारण जल से ११ प्रतिशत अधिक घनत्व वाला होता है। इसकी रचना में साधारण

हाइड्रोजन नहीं बल्कि ड्यूटेरियम भाग लेता है।

परमाणु का गठन—यदि न्यूटन की गणित के अनुसार परमाणु में इलेक्ट्रान विभिन्न कक्षाओं पर केन्द्रक की वैसे ही परिक्रमा किया करते हैं जैसे विभिन्न कक्षाओं पर ग्रह, सूर्य की परिक्रमा किया करते हैं तो अनिवार्य परिणाम यह होगा कि वे अनवरत गति से शक्ति विकीरित करते रहेंगे। कक्षाओं का व्यास छोटा होता जायगा तथा इलेक्ट्रान उत्तरोत्तर कम समय में अपनी-अपनी कक्षाओं पर केन्द्रक की परिक्रमा करने में समर्थ होंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि इलेक्ट्रान द्वारा उत्पन्न तरंगों की लम्बाई कम अर्थात् उनकी आवृति (फ्रिक्वेन्सी) अधिक होती रहेगी। ऐसी स्थिति में परमाणु, प्रत्येक अवस्था में पाये जा सकेंगे तथा प्रत्येक वर्णपट में हर सम्भव आवृति प्रस्तुत होगी। परन्तु सत्य यह है कि प्रायः सभी रासायनिक तत्वों के वर्णपट रेखात्मक होते हैं अर्थात् उनके वर्णपट में केवल कुछ निश्चित आवृतियां ही पायी जाती हैं।

इस कठिनाई को दूर करने के लिये १६०१ में प्लैंक ने अपने प्रसिद्ध क्वैन्टम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार विकीरण का प्रवाह अनवरत गति से तथा अविच्छिन्न रूप में न होकर कणात्मक रूप में होता है। प्रत्येक रश्मि का निर्माण, एक निश्चित मात्रा की शक्ति से सम्पन्न काल्पनिक एवं अस्थूल कणों से होता है। इन कणों की शक्ति उस रश्मि की आवृति के अनुसार कम या अधिक होती है। नील लोहितोत्तर (अल्ट्रा वायलेट) रश्मियों की आवृतियाँ ऊंची होती हैं इसलिए उनके कणों की शक्तियां भी अधिक होती हैं। ये रश्मियाँ तभी विकीरित हो सकती हैं जब परमाणुओं को अधिक शक्ति उपलब्ध हो। इस प्रकार इन रश्मियों के कणों के अधिक संख्या में विकीरित होने की सम्भावना कम होती है और इन रश्मियों से सम्बन्धित शक्ति का विकीरण भी कम मात्रा में ही हो पाता है। उपरक्त (इन्फ्रा रेड) रश्मियों की आवृत्तियों के निम्न कोटि के होने के कारण उनके कणों की शक्ति भी कम होती है।

इसलिए इन कणों का विकीरण अधिक संख्या में हो सकता है। परन्तु फिर भी इन रश्मियों से सम्बन्धित शक्ति की मात्रा कम ही होती है क्योंकि इन कणों की व्यक्तिगत शक्ति अधिक नहीं होती। उच्च और निम्न कोटि की उपयुक्त आवृत्तियों के वीच, प्रत्येक वर्ण पट के एक विशेष भाग में मध्यम श्रेणी की आवृत्तियाँ पाई जा सकती हैं जिनके कणों की शक्तियाँ भी मध्यम श्रेणी की होती हैं। वर्ण पट के इस भाग में अधिकतम शक्ति पायी जाने की सम्भावना हो सकती है। इस प्रकार हम पाते हैं कि बहुत सी भौतिक और रासायनिक समस्याओं की भाँति क्वैन्टम सिद्धान्त भी किसी निश्चित नियम पर नहीं, बल्कि 'सम्भावना सिद्धान्त' पर आधारित है।

१९२३ में काम्पटन ने इन रश्मि कणों का अध्ययन एक नये दृष्टिकोण से किया। उसके अनुसार ये कण बहुत कुछ इलेक्ट्रान और प्रोटान की तरह ही व्यवहार करते हैं। इन रश्मि कणों (फोटान) की शक्ति उतनी ही अधिक होती है जितनी ऊंची रश्मियों की आवृत्तियाँ होती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी रश्मि के कणों की शक्ति उतनी ही कम होगी जितना अधिक उस रश्मि का 'एक आवृत्तिकाल' (पिरियाडिक टाइम) होगा। समीकरण के रूप में:—

$$\text{इ} = \text{ह} \times \text{आ} = \frac{\text{ह}}{\text{क}} \left\{ \begin{array}{l} \text{इ} = \text{शक्ति, आ} = \text{आवृत्ति, क} = \text{एक आवृत्ति-} \\ \text{काल, ह} = \text{प्लैन्क का अचलांक (कॉन्स्टैन्ट)} \end{array} \right\}$$

स्पष्ट है कि प्लैंक का अचलांक, ह, शक्ति तथा 'एक आवृत्तिकाल' के गुणनफल के बराबर है। वैज्ञानिक क्षेत्र में यह अचलांक 'क्रिया' (एक्शन) के नाम से प्रसिद्ध है। परमाणु तथा इलेक्ट्रान की भाँति यह भी एक वास्तविक एवं स्वाभाविक इकाई है तथा किसी भी परिवर्तनीय परिमाण का इसके मान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

आपेक्षिक ताप (स्पेसिफिक हीट) की परिवर्तनशीलता का स्पष्टीकरण करने में भी क्वैन्टम सिद्धान्त सफल हुआ। इस प्रकार उसकी उपादेयता तथा वास्तविकता में लोगों का विश्वास और भी दृढ़ हो गया।

आइन्स्टीन ने इस बात की ओर संकेत किया कि किसी वस्तु द्वारा रश्मियों का शोषण, उन रश्मियों के कणों की शक्ति के अनुसार होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि रश्मियों का शोषण आवृत्तियों पर और अन्ततोगत्वा तापक्रम पर निर्भर होगा। इस संकेत के आधार पर नर्न्स्ट, लिन्डमैन और डेबाई ने बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

क्वैन्टम सिद्धान्त के सम्मुख मुख्य कठिनाई यह है कि वह एक प्रकाश किरण के विभिन्न भागों द्वारा उत्पन्न व्यतिकरण (इन्टरफियरन्स) का स्पष्टीकरण करने में असमर्थ है। व्यतिकरण का रहस्य समझने के लिये प्रकाश किरणों को तरंगात्मक मानना आवश्यक है। परन्तु क्वैन्टम सिद्धान्त प्रकाश किरणों के कणात्मक होने की कल्पना करता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये वैज्ञानिक इस धारणा की ओर अधिकाधिक आकृष्ट होने लगे कि कण और तरंग एक ही वास्तविकता के दो भिन्न रूप हैं। यही नहीं, तरंगीय यंत्र विज्ञान (वेभ मिकैनिक्स) की सहायता से तथा प्रायोगिक आधार पर वे यह सिद्ध करने में भी समर्थ हुए हैं कि तरंगों में कण एवं कणों में तरंग के गुण पाये जाते हैं।

परमाणु-गठन सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिये क्वैन्टम सिद्धान्त का प्रयोग प्रथम-प्रथम 'नील बोर' ने किया। उस समय वह मैंचेस्टर स्थित रदरफ़ोर्ड की प्रयोगशाला में काम कर रहा था। हाइड्रोजन द्वारा दिये गए वर्णपट से सम्बन्धित कुछ नियमित तथ्य ज्ञात थे। क्वैन्टन सिद्धान्त द्वारा बोर इन तथ्यों का स्पष्टीकरण करने में समर्थ हुआ।

बोर के अनुसार इलेक्ट्रान विभिन्न कक्षाओं पर परिक्रमा करते रहते हैं परन्तु परिक्रमा काल में वे रश्मियाँ नहीं विकीरित करते हैं। बाहर से किसी रूप में जब किसी इलेक्ट्रान को शक्ति प्रदान की जाती है तब वह अपनी कक्षा को छोड़कर दूसरी कक्षा पर चला जाता है। एक कक्षा से दूसरी कक्षा तक जाने के लिए जितनी शक्ति की आवश्यकता होती है उससे कम शक्ति यदि इलेक्ट्रान को प्रदान की जाय तो उस पर

कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार परमाणु के भीतर निश्चित कक्षाएँ होती हैं और इलेक्ट्रान को एक कक्षा से दूसरी कक्षा पर ले जाने के लिये निश्चित मात्राओं की शक्तियों की आवश्यकता होती है। दूसरी कक्षा पर जाने के पश्चात् इलेक्ट्रान पुनः प्रथम कक्षा पर लौट आता है और वह शक्ति जो उसे पहले प्रदान की गई थी रश्मि के रूप में विकीरित हो जाती है। बोर की उपर्युक्त कल्पना न्यूटन के यंत्र विज्ञान की धारणाओं से पूर्णतया भिन्न थी और भौतिक विज्ञान का एक नया अध्याय आरम्भ करने में समर्थ हुई।

हाइड्रोजन के एकाकी इलेक्ट्रान के लिये चार सम्भव कक्षाओं की कल्पना कर बोर हाइड्रोजन वर्णपट की मोटी-मोटी बातों का स्पष्टीकरण करने में सफल हुआ। परन्तु बोर का क्वैन्टम सिद्धान्त हीलियम के वर्णपट की बारीकियों तथा भारी तत्वों के वर्णपटों की जटिलताओं का स्पष्टीकरण न कर सका। १६२५ तक यह स्पष्ट हो गया कि बोर का सिद्धान्त जो कुछ दिन तक सफलता के उच्चतम शिखर पर विराजमान् रहा, यदि असत्य नहीं तो अपूर्ण और सीमित अवश्य है।

फिर भी आयनों की निर्माण-क्रिया (आयोनाइज़ेशन) ने इस तथ्य की पुष्टि कर दी कि परमाणु में केवल कुछ ही निश्चित कक्षाएँ होती हैं जिन पर इलेक्ट्रान पाये जा सकते हैं तथा प्रत्येक कक्षा पर इलेक्ट्रान एक निश्चित मात्रा की शक्ति से युक्त होता है। किसी परमाणु के आयनित होने का अर्थ यह है कि उसका इलेक्ट्रान उसकी वाह्यतम कक्षा से भी बाहर चला जाय अर्थात् वह परमाणु से अलग हो जाय। प्रकट है कि इलेक्ट्रान को परमाणु से अलग करने के लिए एक न्यूनतम शक्ति उसे बाहर से प्रदान की जानी चाहिये। यदि एक शक्ति-सम्पन्न इलेक्ट्रान बाहर से आकर परमाणु के इलेक्ट्रान से टकराये तो इस इलेक्ट्रान की शक्ति का शोषण कर परमाणु का इलेक्ट्रान बाहर की ओर कूद सकता है। परन्तु यह तब तक सम्भव न होगा जब तक बाहरी इलेक्ट्रान एक न्यूनतम शक्ति से सम्पन्न न हो। १६०२ में लेनार्ड ने यह सिद्ध कर दिया कि

बाहरी इलेक्ट्रान जब एक न्यूनतम शक्ति से सम्पन्न होते हैं तभी वे परमाणुओं को आयनित करने में समर्थ होते हैं। फ्रैन्क और हर्ट्ज़ ने मालूम किया कि आयन निर्माण के लिए आवश्यक अधिकतम वोल्टेज़ एक निश्चित वोल्टेज़ से पूर्ण संख्या गुना अधिक होते हैं। ठीक उसी समय वर्णपट में नई रेखाएँ या रेखा समूह प्रकट हो जाते हैं।

१९२३ में डेविसन और कुन्समैन ने तथा १९२७ में डेविसन और जर्मर ने अमेरिका की प्रयोगशालाओं में प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि इलेक्ट्रान तरंगों की तरह भी व्यवहार करते हैं। सर जे० जे० टाम्सन के पुत्र सर जी० पी० टाम्सन ने भी उपर्युक्त तथ्य की प्रयोग द्वारा पुष्टि कर दी। उसने इलेक्ट्रान की एक पतली किरण को धातु की एक अत्यन्त पतली पत्तर से होकर गुज़रने दिया। टाम्सन द्वारा प्रयुक्त पत्तर सोने की पतली-से-पतली पत्तर से भी पतली थी। पत्तर के दूसरी ओर रखी हुई फ़ोटो की पट्टी पर वैसे ही कुण्डलाकार निशान बन गये जैसे निशान प्रकाश किरणों द्वारा बन जाते हैं जब ये किरणें शीशे की पतली पत्तर या साबुन के बुलबुले को पार करने के बाद फ़ोटो की पट्टी पर पड़ती हैं। इस प्रयोग से यह स्पष्ट हो गया कि गतिमान् इलेक्ट्रान तरंगों से परिवेष्टित या संयुक्त होता है। इन तरंगों की लम्बाई प्रकाश तरंगों की लम्बाई से दस लाख गुना छोटी होती है। इलेक्ट्रान और उससे सम्बन्धित तरंगों के कम्पन एक दूसरे से नियंत्रित होते हैं। इस प्रकार प्रयोग द्वारा भी यह सिद्ध हो गया कि इलेक्ट्रान अंतिम तथा अविभाज्य कण नहीं है बल्कि उसकी रचना उससे भी सूक्ष्मतर 'कुछ' से हुई है। गणित ने सिद्ध कर दिया कि इलेक्ट्रान की शक्ति उससे सम्बन्धित तरंग की आवृत्ति पर निर्भर होती है। इलेक्ट्रान के आवेग (मोमेन्टम) तथा उसकी तरंग लम्बाई के गुणनफल का मान स्थिर तथा निश्चित होता है। आश्चर्य होता है जब हम पाते हैं कि इलेक्ट्रान तथा उसके सहचारी तरंग समूह की वर्तमान धारणा न्यूटन के प्रकाश सिद्धान्त से बहुत कुछ मेल खाती है। न्यूटन का विश्वास था कि प्रकाश की रचना कणों से होती है और ये कण

'जिस वस्तु के भी सम्पर्क में आते हैं उसमें एक प्रकार का सूक्ष्म कम्पन पैदा कर देते हैं।'

हम परमाणुओं को देख नहीं सकते। उनके भीतर से आई हुई रश्मियों तथा कणों का अध्ययन तथा परीक्षण कर हम केवल अटकल-भर लगा सकते हैं कि परमाणु का गठन इस प्रकार का होगा। हम यह नहीं कह सकते कि परमाणु द्वारा उत्पन्न बाह्य प्रभाव केवल तभी सम्भव हो सकता है यदि परमाणु का गठन एक विशेष प्रकार का और केवल उसी प्रकार का हो। यह आवश्यक नहीं कि बोर द्वारा कल्पित परमाणु का चित्र वास्तविकता का बोधक हो। परन्तु १९२५ में हाइसनबर्ग ने क्वैन्टम सिद्धान्त का एक नवीन पहलू उपस्थित किया। हाइसनबर्ग ने परमाणु के गठन की कल्पना को अनावश्यक समझकर, ज्ञात तथ्यों का स्पष्टीकरण केवल परमाणु द्वारा विकीरित रश्मियों की आवृत्तियों तथा दोलन विस्तार (ऐम्प्लीचूड) एवं परमाणु की शक्ति अवस्थाओं के आधार पर करने का सफल प्रयत्न किया। यह नवीन सिद्धान्त हाइड्रोजन वर्णपट की प्रमुख रेखाओं का विवरण प्रस्तुत करने में तथा वर्णपट पर विद्युत् तथा चुम्बक क्षेत्रों के प्रभाव का रहस्य समझाने में पूर्ण रूप से सफल सिद्ध हुआ।

डि ब्रागली ने प्रथम इस बात की ओर संकेत किया था कि यदि प्रकाश तरंगें पार्थिव कणों की तरह व्यवहार कर सकती हैं तो कोई कारण नहीं कि पार्थिव कण तरंगों की तरह व्यवहार न करें। १९२६ में शुडिन्गर ने डि ब्रागली की उपर्युक्त धारणा को और भी विकसित किया। पार्थिव कणों को तरंगों का समूह मात्र मानकर उसने ऐसे समीकरणों को स्थापित किया जो बहुत कुछ हाइसनबर्ग के समीकरणों के समान थे। तरंग समूह का वेग उस समूह की रचना करने वाली तरंगों के वेगों से भिन्न होता है। तरंगों की आवृत्ति उनकी शक्ति की द्योतक है। इस प्रकार शुडिन्गर भी शक्ति और आवृत्ति के बीच वही सम्बन्ध स्थापित करने में समर्थ हुआ जिसे कई वर्ष पहले प्लैन्क ने स्थापित किया था।

श्रुडिन्गर के समीकरण जटिल परमाणुओं के वर्णपटों के अध्ययन में भी सहायक सिद्ध हुए।

यदि तरंग समूह का आकार छोटा हो तो निश्चितता पूर्वक कहा जा सकता है कि उसका स्थूल रूप, इलेक्ट्रान, किस स्थान पर स्थित होगा। परन्तु जैसे-जैसे उसका विस्तार बढ़ता जाता है यह कहना कठिन प्रतीत होने लगता है कि इलेक्ट्रान कहाँ है क्योंकि इलेक्ट्रान की उपस्थिति की सम्भावना एक से अधिक स्थानों पर होने लगती है। ऐसी स्थिति में जितनी ही निश्चितता के साथ इलेक्ट्रान के स्थान का निर्णय किया जाने लगता है उसके वेग का निश्चय करना उतना ही कठिन होने लगता है। यही नहीं, यदि वेग ठीक-ठीक मालूम किया जाता है तो स्थान का निश्चय करना उतना ही कठिन हो जाता है। इन दोनों अनिश्चितताओं का गुणनफल प्लैन्क के अचलांक, ह, के बराबर होता है। कुछ दिन पूर्व इलेक्ट्रान द्वारा परमाणु की रचना की कल्पना की गई थी। उसके लगभग पचीस वर्ष बाद इलेक्ट्रान स्वयं अंतिम कण न रहकर तरंगों से निर्मित प्रतीत होने लगा। परमाणु का स्थूल भारी-भरकम प्रथम स्वरूप अदृश्य हो गया; उसके यांत्रिक चित्र असफल सिद्ध हुए। ऐसा प्रतीत होता है कि भौतिक विज्ञान की अंतिम और सूक्ष्म धारणाओं को भौतिक और पार्थिव संज्ञाओं से नहीं, बल्कि गणित के समीकरणों द्वारा ही व्यक्त किया जा सकेगा।

तत्वों का परिवर्तन—यह सिद्धान्त स्वीकार कर लेने के बाद कि रश्मि विकीरण-क्रिया परमाणुओं के विस्फोट का परिणाम है, वैज्ञानिक कुछ दिन तक इस प्रयत्न में लगे रहे कि वे इस क्रिया को इच्छानुसार आरम्भ कर सकें या कम-से-कम नियंत्रित कर सकें। परन्तु उन्हें इस प्रयास में सफलता न मिल सकी। परन्तु १६१६ में रदरफोर्ड ने मालूम किया कि यदि नाइट्रोजन गैस पर अल्फाकणों की बौछार की जाय तो नाइट्रोजन गैस में परमाणुमूलक परिवर्तन हो जाता है तथा तीव्रगामी प्रोटान (हाइड्रोजन का केन्द्रक) निष्कासित होते हैं। प्रोटानों के उत्पन्न



प्लेट ७

लार्ड रदर फोर्ड

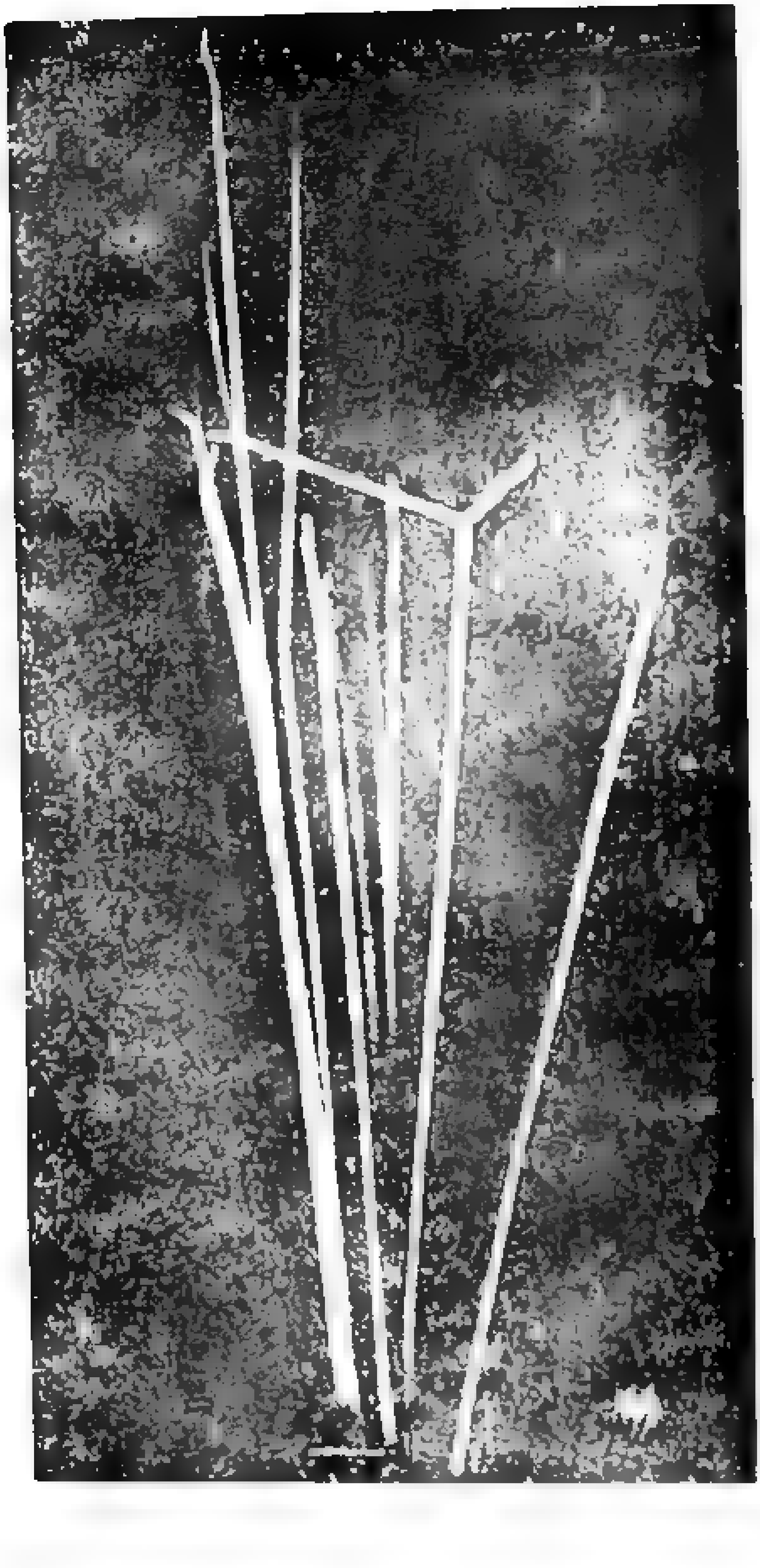
होने का प्रमाण ब्लैकेट ने उनके पथ का फ़ोटो अपने यंत्र, मेघशाला (क्लाउड चैम्बर) में खींचकर उपस्थित कर दिया। इस क्रान्तिकारी आविष्कार ने कृत्रिम रूप से परमाणुमूलक परिवर्तनों को नियंत्रित करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया तथा इस सम्बन्ध में एक विशाल क्षेत्र का द्वार खोल दिया। बोरन और पोटैशियम के बीच स्थित अधिकांश तत्वों को कृत्रिम रूप से विघटित करने में रदरफोर्ड और चैडविक १६२१ और १६२४ के बीच समर्थ हुए।

बेरिलियम तत्व पर अल्फ़ा कणों की बौछार कर बोथे ने गामा किरणों से भी अधिक भेदन शक्ति वाली किरणों को प्राप्त किया। १६३२ में चैडविक यह सिद्ध करने में समर्थ हुआ कि ये किरणें गामा किरणों की तरह तरंगात्मक नहीं हैं बल्कि इनका निर्माण ऐसे द्रुतगामी कणों से होता है जो वज़न में हाइड्रोजन परमाणु के बराबर होते हैं परन्तु जिन पर विद्युत् का धन या ऋण कोई आवेश नहीं होता। इन कणों को "न्यूट्रान" नाम दिया गया। चूँकि इन पर किसी प्रकार का आवेश नहीं होता इसलिए ये गैसों को आयनित किये बिना ही उनके मध्य से होकर निकल जाते हैं तथा बिना किसी बाधा के परमाणुओं के केन्द्रकों में प्रवेश करने में समर्थ होते हैं। फ्रेदर, हार्किन्स और फर्मी ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया कि न्यूट्रान, और विशेषकर मंद-वेग न्यूट्रान, केन्द्रकों में प्रवेश कर परमाणु-परिवर्तन क्रिया में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं।

एक और विशेष प्रकार की रश्मियों का पता चला है। ये रश्मियाँ अनन्त आकाश में से होकर प्रतिक्षण गुज़रती रहती हैं। इन रश्मियों की भेदन शक्ति पृथ्वी पर पाई जाने वाली सब प्रकार की रश्मियों की भेदन शक्ति से अधिक होती है। विद्युत् आवेश से युक्त, एक विद्युत् सूचक यंत्र के द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि इन रश्मियों की तीव्रता वायुमंडल के ऊपरी भाग में निम्न भाग की अपेक्षा अधिक होती है क्योंकि ऊपरी भाग में यंत्र पर स्थित आवेश अधिक तेज़ी से गायब होने लगता है। यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि जल कुछ अंश

तक इन रश्मियों को रोकने में समर्थ होता है क्योंकि गहरे जल के नीचे रखे हुए यंत्र का आवेश अपेक्षाकृत धीरे-धीरे स्खलित होता है। रात्रि और दिन दोनों समय इन रश्मियों की तीव्रता समान होती है तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में ये तब पहुँचती हैं जब आकाशगंगा नहीं दिखाई देती। इससे यह स्पष्ट है कि इन रश्मियों के उत्पन्न करने में सूर्य, तथा आकाशगंगा में पाये जाने वाले नक्षत्रों का हाथ नहीं है और ये रश्मियाँ ब्रह्माण्ड के दूसरे भागों से आती हैं। एन्डर्सन और मिलिकन ने यह मालूम कर कि एक विशाल चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा इन रश्मियों का पथ अपने निर्दिष्ट स्थान से कितना विचलित होता है इन रश्मियों की शक्ति को मालूम किया। यह शक्ति छः अरब इलेक्ट्रान वोल्ट के आस-पास होती है। १९३२ में एन्डर्सन एक ऐसे कण का अस्तित्व मालूम करने में सफल हुआ जिसकी पदार्थ मात्रा इलेक्ट्रान को पदार्थ मात्रा के बराबर होती है परन्तु जिस पर धन विद्युत् का आवेश होता है। ऐसे कणों को पाज़िट्रान नाम दिया गया।

एक भारी परमाणु के केन्द्रक से जब फ़ोटान (प्रकाश-कण) टकराते हैं तब मेघशाला में धन-ऋण इलेक्ट्रान का एक जोड़ा प्रकट होता है। यदि एक फ़ोटान की शक्ति २६ लाख इलेक्ट्रान वोल्ट हो तो उस जोड़े की सम्मिलित शक्ति १६ लाख इलेक्ट्रान वोल्ट होती है। प्रश्न उठ सकता है कि शेष १० लाख इ० वो० शक्ति का क्या होता है। इसका उत्तर यह है कि यह शक्ति दोनों इलेक्ट्रान की पदार्थ मात्रा के रूप में प्रकट होती है। इसके विपरीत जब पाज़िट्रान और इलेक्ट्रान मिलकर एक दूसरे को नष्ट कर देते हैं तो दो फ़ोटान दो विपरीत दिशाओं में विकीरित होते हुए दिखाई देते हैं। १९३८ में एन्डर्सन और नेडरमियर ने इस अनुमान को सत्य सिद्ध कर दिया कि इलेक्ट्रान और प्रोटान के बीच एक ऐसा कण होता है जिसकी पदार्थमात्रा इलेक्ट्रान की पदार्थमात्रा से दो सौ गुना अधिक होती है। इन कणों को मेसोट्रान नाम दिया गया। जिन आकाशीय रश्मियों के सम्बन्ध में ऊपर लिखा गया है उनकी



प्लेट ८ ऑक्सीजन में अल्फा कणों के पथ

उत्पत्ति किस प्रकार होती है यह अभी तक मालूम नहीं हो सका है।

उपर्युक्त वर्णन से प्रकट है कि पदार्थ की रचना कितनी जटिल है। निम्नलिखित कण किसी न किसी रूप में पदार्थ की रचना में भाग लेते हैं।

कणों के नाम	पदार्थ-मात्रा, इलेक्ट्रान की मात्रा को इकाई में	विद्युत् आवेश, इलेक्ट्रान आवेश की इकाई में
इलेक्ट्रान या बीटा कण	१	−इ
पाज़िट्रान	१	+इ
मेसोट्रान	२००	±इ
प्रोटान	१८००	+इ
न्यूट्रान	१८००	०
ड्यूटेरान	३६००	+इ
अल्फा कण	७२००	+२ इ

इन कणों को स्थूल रूप में सोचने के हम अभ्यासी हो गये हैं। इनके अतिरिक्त एक और कण, फ़ोटान (प्रकाश-कण) है जो तरंगात्मक है। स्पष्ट है कि पदार्थ का गठन अत्यन्त ही गूढ़ तथा रहस्यात्मक है तथा परमाणुमूलक चित्रों द्वारा उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसका वर्णन तरंग समीकरणों द्वारा ही कुछ-कुछ सम्भव है।

रेडियोधर्मी पदार्थों द्वारा उत्पन्न अल्फा कणों की मात्रा बहुत कम होती है। उन्हें अधिक मात्रा में प्राप्त करने का यत्न जिसकी तलाश पहले ही से हो रही थी, अब मालूम कर लिया गया है। हाइड्रोजन तथा ड्यूटेरियम में विद्युत् विसर्जन (इलेक्ट्रिक डिसचार्ज) कर, प्रोटान तथा ड्यूटेरान पर्याप्त संख्या में प्राप्त किये जा सकते हैं। काकक्राफ्ट तथा वाल्टन द्वारा निर्मित यंत्र द्वारा इन कणों को अत्यन्त द्रुतगामी बनाया जा सकता है। कैलिफोर्निया के ई० लारेन्स ने एक विशेष प्रकार के यंत्र, साइक्लोट्रान, का निर्माण किया है जिसके द्वारा भी विद्युत् आवे-

शित कणों को तीव्रगामी अर्थात् शक्तिशाली बनाया जा सकता है। इस यंत्र में आयन, एक दूसरे से समकोण बनाते हुए विद्युत् और चुम्बक क्षेत्रों के बीच से होकर गुजरते हैं। इन दोनों क्षेत्रों के प्रभाव के अन्तर्गत, आयन, लगातार बढ़ती हुई त्रिज्या के चक्राकार पथ का अनुसरण करते हैं। विद्युत् क्षेत्र लगातार अपनी दिशा परिवर्तित करता रहता है और उसकी आवृत्ति इस प्रकार व्यवस्थित की जाती है कि ठीक दिशा परिवर्तन के समय ही आयन उसके प्रभाव क्षेत्र में आते हैं और प्रत्येक बार एक अनुकूल धक्का पाकर अपनी गति तीव्रतर करने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार लारेंस, प्रोटान और ड्यूटेरान को पर्याप्त मात्रा में प्राप्त कर सका।

इन यंत्रों की सहायता से बहुत-से तत्व नये तत्वों में परिवर्तित किये जा सके। बिस्मथ पर कणों की बौछार कर लारेंस तथा उसके सहयोगी उसे एक नये रेडियोधर्मी बिस्मथ में परिवर्तित करने में समर्थ हुए जो प्रत्येक दृष्टि से रेडियम इ के समान है। पुनः, सोडियम (परमाणु भार २३) या इसके नमकों से एक रेडियोधर्मी सोडियम (परमाणु भार २४) प्राप्त किया गया। यह रेडियो सोडियम एक बीटा कण निष्कासित कर मैगनेशियम (परमाणु भार २४) में परिवर्तित हो जाता है। इसका अर्ध-जीवन काल १५ घंटा है। इस प्रकार के प्रयोगों के परिणामस्वरूप लगभग २५० नये रेडियोधर्मी पदार्थों का पता चला। एक तरह से मध्य युग के रसायनिक शास्त्रवेत्ताओं का तत्वों को परिवर्तित करने का स्वप्न सत्य सिद्ध हो गया।

उपर्युक्त प्रकार के कृत्रिम परिवर्तनों में कभी-कभी इतनी शक्ति प्रकट होती है जिसकी तुलना स्वाभाविक रश्मि विकीरणक्रिया के समय उत्पन्न शक्ति भी नहीं कर सकती। उदाहरणार्थ, २१००० इलेक्ट्रान वोल्ट शक्ति से सम्पन्न ड्यूटेरान लिथियम के एक परमाणु को बेरिलियम के परमाणु में परिवर्तित कर देता है और इस क्रिया में २२५ लाख इलेक्ट्रान वोल्ट शक्ति भी उत्पन्न होती है। ऊपर से देखने में ऐसा प्रतीत होता है कि

इस प्रयोग द्वारा असीम शक्ति प्राप्त की जा सकती है परन्तु स्मरण रहे १०^८ ड्यूटेरान में केवल एक ड्यूटेरान उपर्युक्त क्रिया संचालित करने में समर्थ होता है और इतने ड्यूटेरान को उत्पन्न करने में जितनी शक्ति व्यय होती है वह प्रकट हुई शक्ति से कहीं अधिक होती है। इस प्रकार अंत में कोई लाभ नहीं होता।

यूरैनियम (परमाणु भार २३८) पर जब न्यूट्रान की बौछार की जाती है तब यूरैनियम के कुछ परमाणु लगभग दो बराबर भागों में विभाजित हो जाते हैं और इस विभाजन क्रिया (फ़िशन) के दौरान में कुछ और न्यूट्रान निष्कासित होते हैं। यूरैनियम (परमाणु भार २३५) में यह क्रिया और अधिक सरलता से सम्पन्न होती है। यूरैनियम का प्रत्येक परमाणु विभक्त होते समय अपरिमेय शक्ति को जन्म देता है। यदि यूरैनियम का गोला एक विशेष आकार और विस्तार का हो तो विभाजन के समय निष्कासित नये न्यूट्रान गोले से बाहर नहीं निकल पाते बल्कि परमाणुओं से टकरा कर उन्हें विभाजित करने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार विभाजन की क्रिया शृंखला रूप में होने लगती है तथा थोड़ी ही देर में असंख्य परमाणु विभाजित होकर अकल्पित शक्ति उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। इसी सिद्धान्त पर १९४५ में पहला परमाणुबम बनाया गया। ऐसी आशा की जाती है कि शक्ति का नियंत्रण इस प्रकार किया जायगा कि वह उपयोगी कार्यों के लिए प्रयुक्त की जा सकेगी। परमाणु शक्ति का आविष्कार कर मनुष्य ने निश्चय ही एक भयावह खतरे को मोल लिया है। परन्तु ज्ञान की प्रगति रोकी नहीं जा सकती और यदि विज्ञान के कुछ उपहारों का प्रयोग निषिद्ध कार्यों की सिद्धि के लिये किया जाता है तो इसके लिये विज्ञान उत्तरदायी तथा दोषी नहीं है।

विद्युत् चुम्बकीय तरंगें—१८६४ में मैक्स्वेल ने अपने विद्युत् चुम्बकीय समीकरणों को प्रकाशित किया और हर्ट्ज़ ने १८८७ में ही इन तरंगों को उत्पन्न कर उनकी सत्ता प्रमाणित कर दी। रदर-फोर्ड तथा अन्य वैज्ञानिकों ने भी इस दिशा में कुछ कार्य किया तथा

एक या दो मील तक संदेश (सिग्नल) भेजने में सफलता प्राप्त की। परन्तु इस सम्बन्ध में व्यावहारिक सफलता तभी सम्भव हो सकी जब निम्नलिखित दो महत्वपूर्ण आविष्कार किये जा सके। मार्कोनी ने संदेश भेजने वाले तथा संदेश प्राप्त करने वाले, दोनों स्टेशनों पर वायु स्थित तार (एरियल) का प्रयोग किया। इस तार द्वारा वह विद्युत् तरंगों की शक्ति तीव्र करने में समर्थ हुआ। सर ओ० डब्ल्यू० रिचार्डसन ने तप्त धातुओं द्वारा निष्कालित इलेक्ट्रान का अध्ययन किया जिसके आधार पर रेडियो वाल्व की रचना सम्भव हो सकी।

हर्ट्ज़ तथा अन्य आरम्भिक प्रयोग कर्त्ता संदेश वाहन के लिए वेष्टन (इन्डक्शन क्वायल) द्वारा उत्पन्न तरंगों का प्रयोग करते थे। ये तरंगे क्रमशः क्षीण होने वाली होती हैं। परन्तु रेडियो संदेश के लिये अक्षुण तथा अविरल तरंगें आवश्यक हैं। रेडियो वाल्व ऐसी तरंगों को उत्पन्न कर सकता है। इसकी रचना बहुत ही सरल है। वायु रहित एक शीशे के बल्ब में एक धातु का तार तथा धातु की एक पत्तर जड़ दी जाती है। विद्युत् प्रवाहित कर तार को गरम किया जाता है तथा तार को एक बैटरी के ऋण सिरे तथा पत्तर को उसके धन सिरे से जोड़ देते हैं। गरम तार द्वारा इलेक्ट्रान निष्कासित होते हैं जो धन पत्तर द्वारा आकर्षित कर लिए जाते हैं। इस प्रकार बल्ब के अन्दर एक विशेष दिशा में विद्युत् प्रवाह होने लगता है। यदि तार को धन सिरे से और पत्तर को ऋण सिरे से जोड़ दिया जाए तो इलेक्ट्रान ऋण पत्तर की ओर नहीं प्रवाहित होंगे और बल्ब में विद्युत् प्रवाह एक प्रकार से बंद हो जायगा। इस प्रकार यह बल्ब सरल कारक (रेक्टिफ़ायर) का काम करने में समर्थ होता है क्योंकि वह प्रत्यावर्तक धारा (आल्टर्नेटिंग करेंट) का आधा भाग प्रवाहित होने देता है परन्तु आधे भाग को रोक देता है। तार और पत्तर के बीच यदि एक झंझरीदार धातु की पत्तर (ग्रिड) रख दी जाय और उसे धन सिरे से जोड़ दिया जाय तो बल्ब के अन्दर प्रवाहित होने वाली विद्युत् की

शक्ति बहुत बढ़ जाती है परन्तु यदि ग्रिड को ऋण सिरे से जोड़ दिया जाय तो विद्युत् की शक्ति बहुत क्षीण भी हो जाती है। यदि ग्रिड को लगातार एकान्तर क्रम से धन और ऋण पोटेन्शल दिया जाय तो एक ऐसी विद्युत् धारा प्राप्त की जा सकती है जो लगातार घटती बढ़ती रहे। इस प्रकार उत्पन्न बदलती हुई विद्युत् धारा को परिणामक (ट्रैन्सफार्मर) के प्रथम वेष्ठन (प्राइमरी कायल) में प्रवाहित करते हैं। परिणामक के द्वितीय वेष्ठन को ग्रिड से जोड़कर उसे इच्छित बदलता हुआ विभव (पोटेन्शल) प्रदान किया जाता है। इस प्रकार वल्व अविरल तथा अक्षुण तरंगों को उत्पन्न करने में समर्थ होता है। जैसा ऊपर कहा गया है तापायनिक वाल्व (थरमियानिक वाल्व) सरल कारक का काम भी करता है। इस प्रकार सरल की हुई विद्युत् धारा को टेलीफोन में प्रवाहित कर वही शब्द पुनः सुना जा सकता है जो शब्द विद्युत् में परिवर्तित होकर तथा विद्युत् तरंगों पर चढ़कर भेजने वाले स्टेशन से आता है।

विद्युत् तरंगें दो मार्गों का अनुसरण करती हैं। तरंगों का कुछ भाग तो पृथ्वी की सतह पर फिसलता हुआ आगे बढ़ता है परन्तु शेष भाग ऊपर आकाश मार्ग का अनुसरण करता है। परन्तु आकाशगामी तरंगें अनन्त में विलीन नहीं हो जाती हैं। कुछ दूर जाने पर वे आयनित अवस्था में स्थित वायु की एक विद्युत् वाही सतह से टकरा कर पृथ्वी की ओर लौट आती हैं। आकाश-गामी यही तरंगें दूर के स्टेशनों से संदेश लाती हैं। वायु की उपर्युक्त आयनित सतह को 'आयनास्फियर' या इसके अस्तित्व का प्रथम-प्रथम पता लगाने वाले वैज्ञानिकों के सम्मान में 'केनली-हेवीसाइड' सतह कहते हैं। इस सतह द्वारा परावर्तित तरंगों के अध्ययन द्वारा इसके सम्बन्ध में बहुत ज्ञान प्राप्त किया जा सका है। इस सतह की ऊँचाई विद्युत् तरंगों द्वारा सर्वप्रथम सर एडवर्ड ऐप्लेटन तथा बार्नेट ने मालूम की। १९२५ में अमेरिका के ब्रीट और टुवे ने भी अल्पकालीन तरंगों द्वारा आयनास्फियर की

ऊँचाई मालूम की । १६२६ में सर ऐप्लेटन ने और अधिक ऊँचाई पर स्थित एक दूसरी सतह का भी पता लगाया । इसी सतह से परावर्तित होकर विद्युत् तरंगें पृथ्वी के चारों ओर भ्रमण करने में समर्थ होती हैं।

इन्हीं प्रयोगों के आधार पर स्थिति तथा दिशा निर्धारण करना सम्भव हो सका । विद्युत् तरंगों की सहायता से वस्तुओं की स्थिति तथा दिशा के सम्बन्ध में सूचना देने वाले यंत्र को 'राडर' कहते हैं। पिछले महायुद्ध (१६३६–४५) में इस यंत्र का प्रयोग शत्रु के वायुयानों का पता लगाने के लिए किया गया था । छोटी लम्बाई वाली शक्तिशाली विद्युत तरंगें थोड़ी-थोड़ी देर के बाद राडर द्वारा विकिरित की जाती हैं । ये तरंगें, आकाश-स्थित वस्तुओं जैसे वायुयानों तथा समुद्र एवं पृथ्वी तल पर स्थित वस्तुओं जैसे जलयानों तथा इमारतों से टकरा कर पुनः राडर के पास वापस आ जाती हैं और इस प्रकार उन वस्तुओं के अस्तित्व की सूचना देने में समर्थ होती हैं। कुहरा तथा धुयें का इन तरंगों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता तथा इनकी सहायता से बहुत दूर स्थित उन वस्तुओं को भी सूचना प्राप्त की जा सकती है जिन्हें सर्च लाइट से भी देखना सम्भव नहीं है । समुद्री तथा आकाशीय यात्रा एवं युद्ध में इस यंत्र ने एक क्रांति ला दी है । आधुनिक काल में युद्ध के लिए विज्ञान ने जिन साधनों को प्रस्तुत किया है उनमें राडर तथा परमाणु बम का सबसे प्रमुख स्थान है।

आधुनिक आविष्कारों के आधार पर एक दूसरा महत्वपूर्ण यंत्र निर्मित किया जा सका है। इसे इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शक (इलेक्ट्रान माइक्रास्कोप) कहते हैं। साधारण सूक्ष्मदर्शक की सहायता से उन वस्तुओं को नहीं देखा जा सकता जिनका विस्तार प्रकाश तरंगों की लम्बाई से छोटा होता है । 'अति सूक्ष्म दर्शक' की सहायता से सूक्ष्मतर विस्तार वाली वस्तुओं को भी देखा जा सकता है। परन्तु बहुत ही सूक्ष्म आकार वाली वस्तुओं को अति सूक्ष्म दर्शक से भी देखना सम्भव नहीं है। ऐसी वस्तुओं को भी इलेक्ट्रान सूक्ष्म दर्शक की सहायता से देखा

जा सकता है। किसी भी सूक्ष्म दर्शक से किसी सूक्ष्म आकार वाली वस्तु को देखने के लिये उस वस्तु को किसी प्रकाश से प्रकाशित करना पड़ता है। उस प्रकाश को तरंगों की लम्बाई जितनी हो छोटी होगी उतनी ही सूक्ष्म वस्तुओं को देखना सम्भव होगा। इलेक्ट्रान सूक्ष्म दर्शक में वस्तुओं को प्रकाशित करने के लिए प्रकाश को जगह इलेक्ट्रान का प्रयोग किया जाता है। चूँकि इलेक्ट्रान से सम्बन्धित तरंगों की लम्बाई प्रकाश तरंगों की लम्बाई से लगभग दस लाख गुना छोटी होती है इसलिए इलेक्ट्रान सूक्ष्म दर्शक द्वारा, साधारण सूक्ष्म दर्शक की अपेक्षा दस लाख गुना छोटी आकार वाली वस्तुएँ देखी जा सकती हैं। इस यंत्र में इलेक्ट्रान-किरणों को केन्द्रित तथा संकलित करने के लिये शीशे का लेन्स नहीं बल्कि विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र प्रयुक्त किया जाता है। बैक्टीरिया को निगलने वाले सूक्ष्म जन्तु तथा अत्यन्त सूक्ष्म आकार वाले विष-कण इस यंत्र की सहायता से देखे जा सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में कभी अणुओं तथा परमाणुओं को देखना भी सम्भव हो सकेगा।

अपेक्षावाद (रिलेटिविटी) १६७६ में रोमर ने मालूम किया कि पृथ्वी की कक्षा को पार करने में प्रकाश को कुछ समय लगता है। उसने दो अवसरों पर, एक जब पृथ्वी बृहस्पति ग्रह से निकटतम दूरी पर थी, दूसरे जब वह बृहस्पति से दूरतम थी, बृहस्पति ग्रह के उपग्रहों के ग्रहणों का निरीक्षण कर यह मालूम किया कि प्रकाश १६२००० मील प्रति सेकण्ड की रफ्तार से यात्रा करता है। नक्षत्रों द्वारा दिये गये प्रकाश के अपेरण (एबरेशन) का निरीक्षण कर १७२८ में ब्रैडली ने पुनः प्रकाश के वेग को मालूम किया। १८४६ में फ़्यूज़ो ने प्रकाश की एक किरण को दांतेदार पहिये के एक रिक्त स्थान से होकर जाने दिया। यह किरण ३ या ४ मील दूर स्थित एक दर्पण द्वारा परावर्तित की गई। पहिया जब स्थिर थी तो यह परावर्तित किरण पुनः उसी रिक्त स्थान से होकर निकल जाती थी। परन्तु जब पहिया तीव्र

गति से घूमने लगाती थी तो किरण पहिये के एक दाँत द्वारा रुक जाती थी। रिक्त स्थान से एक सन्निकट वाले दांत तक घूमने में पहिया को जितना समय लगा उतने समय में प्रकाश-किरण, पहिया तथा दर्पण के बीचे के अन्तर को दो बार पार करने में समर्थ हुई। इस प्रकार प्रकाश का वेग मालूम किया जा सका। फोकाल्ट ने भी एक घूमते हुए दर्पण की सहायता से प्रकाश का वेग मालूम किया। प्रकाश का वेग आज १८६००० मील या $२·९९८ \times १०^{१०}$ (लगभग ३×१०^{१०}) सेन्टीमीटर प्रति सेकण्ड स्वीकार किया जाता है।

यदि आकाश तेजोवाही ईथर से व्याप्त होता तो वह प्रकाश को इस प्रकार प्रभावित करता कि ईथर के अस्तित्व के सम्बन्ध में हमारे मन में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता। यदि पृथ्वी ईथर के बीच अपनी धुरी पर घूमती है तो पृथ्वी तथा ईथर परस्पर आपेक्षिक गति में होंगे। प्रकाश जब ईथर की अनुकूल धारा में यात्रा करेगा तो उसकी रफ्तार तेज़ होगी परन्तु विपरीत धारा में उसकी गति मंद होगी। यही नहीं, एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक ईथर-धारा के साथ जाने में तथा पुनः उसी बिन्दु पर लौटने में प्रकाश को जितना समय लगेगा वह उस समय से अधिक होगा जो ईथर धारा के आर पार उतनी ही दूरी दो बार तै करने के लिए आवश्यक होगा। उपयुक्त निष्कर्षों की जांच करने के लिये १८८७ में माइकेल्सन तथा मार्ले द्वारा एक विशेष उपकरण की सहायता से कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग किये गए। ईथर की आपेक्षिक गति के आधार पर निकाले गए उपयुक्त निष्कर्षों में से कोई भी सत्य न प्रमाणित हो सका। प्रकाश प्रत्येक दिशा में समान गति से यात्रा करता हुआ पाया गया। इसका अर्थ यह हुआ कि या तो पृथ्वी अचल है या वह ईथर को भी अपने साथ घसीटती जाती है।

परन्तु अपेरण के आधार पर प्रकाश की रफ्तार मालूम करते समय यह मान लिया जाता है कि पृथ्वी ईथर को अपने साथ नहीं घसीटती है। १८९३ में लाज ने दो समानान्तर भारी लोहे की पत्तरों को घुमाया

और उनके बीच से होकर प्रकाश को गुज़रने दिया। उसने मालूम किया कि प्रकाश की रफ्तार में कोई अन्तर नहीं पड़ता, चाहे पत्तरें स्थिर दशा में रहें चाहे घूमती रहें। उपर्युक्त तथ्यों ने वैज्ञानिकों के सम्मुख एक विकट समस्या उपस्थित कर दी।

सी० एफ० फिट्ज़ेराल्ड ने इस बात की ओर संकेत किया कि यदि पदार्थों की रचना अन्ततोगत्वा विद्युत् कणों से हुई मान ली जाय अथवा यदि यह भी मान लिया जाय कि वे वैद्युत् बल द्वारा परस्पर आबद्ध होते हैं तो वैद्युत् चुम्बकीय ईथर में यात्रा करते समय उनमें सिकुड़न उत्पन्न हो जायगी। यह सिकुड़न बहुत अल्प मात्रा में होती है और स्केल द्वारा यह मालूम नहीं किया जा सकता कि किसी गति शील वस्तु का आकार कितना छोटा हो गया है क्योंकि नापने वाली स्केल का आकार भी सिकुड़ कर कुछ छोटा हो जायगा। सम्भव है, माइकेल्सन और मार्ले द्वारा प्रयुक्त उपकरण स्वयं कुछ छोटा हो जाता हो और इसीलिए प्रत्याशित फल प्राप्त करने में हम असफल होते हैं।

उपर्युक्त कठिनाई को हल करने के लिए १६०५ में प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्स्टीन ने एक क्रांतिकारी एवं पूर्णतया नवीन विचार प्रस्तुत किया। उसने कहा कि यह धारणा कि स्थान और काल एक दूसरे से पूर्णतया स्वतंत्र हैं तथा अपने ही में पूर्ण हैं केवल एक दार्शनिक कल्पना मात्र है और वैज्ञानिक प्रयोगों तथा परीक्षणों पर आधारित नहीं है। फिट्ज़ेराल्ड ने स्थान की जिस सिकुड़न की ओर संकेत किया था उसका अस्तित्व मालूम करने में हम इसलिए असफल होते हैं क्योंकि हम स्वयं भी उस स्थान के साथ चलते रहते हैं और इसलिए हमारी स्केल भी छोटी हो जाती है। परन्तु उस स्थान की गति से भिन्न गति रखने वाला कोई दर्शक इस सिकुड़न को मालूम कर सकता है। काल तथा स्थान का कोई निश्चित मान नहीं होता। उनका मान दर्शक की गति पर निर्भर होता है और इस प्रकार का होता है

कि प्रत्येक दर्शक को प्रकाश की गति एक सी ही प्रतीत होती है। नवीन भौतिक विज्ञान का यह प्रथम प्रायोगिक नियम है।

किसी गतिशील वस्तु की लम्बाई जिस अनुपात से छोटी होती जाती है उसी अनुपात से उसकी पदार्थ-मात्रा बढ़ती जाती है। अपेक्षा वाद सिद्धान्त के अनुसार $म = म_{०} / \sqrt{१ - \frac{व^{२}}{स^{२}}}$। म गतिशील वस्तु की पदार्थ-मात्रा है, व, उसका वेग है, स, प्रकाश का वेग है तथा म० उस वस्तु की स्थिर अवस्था की पदार्थ-मात्रा है। बीटा कणों पर प्रयोग कर काफ़-मैन ने उपर्युक्त समीकरण की सत्यता सिद्ध कर दी है। पुनः अपेक्षावाद के अनुसार पदार्थ-मात्रा और शक्ति परस्पर परिवर्तनशील हैं। पदार्थ-मात्रा, शक्ति में और शक्ति पदार्थ में परिवर्तित की जा सकती है। म पदार्थ-मात्रा शक्ति में परिवर्तित होकर ($म \times स^{२}$) शक्ति उत्पन्न कर सकती है। यह नियम मैक्स्वेल के तरंग सिद्धान्त से पूर्णतया मेल खाता है जिसके अनुसार तरंगों का आवेग, $\frac{श}{स}$ के बराबर होता है (श, उन तरंगों की शक्ति है)। परन्तु आवेग का सामान्य सूत्र ($म \times स$) होता है। इस तरह इस दृष्टि से भी $श = (म \times स^{२})$।

स्थान और काल, दर्शक की गति से नियंत्रित होते हैं, यह हम उपर कह चुके हैं; परन्तु १६०८ में मिन्कोवस्की ने इस बात की ओर संकेत किया कि काल और स्थान एक दूसरे के पूरक हैं। स्थान की तीन दिशाओं की भांति काल भी एक प्रकार की दिशा का सूचक है। काल और स्थान का संयुक्त मान प्रत्येक दर्शक के लिए एक सा होता है। अन्य राशियाँ जिनका मान प्रत्येक दर्शक के लिये एक-सा होता है ये हैं:— संख्याएँ, एन्ट्रापी तथा क्रिया (समय तथा शक्ति का गुणनफल)। उत्क्रमणीय (रिवर्सिबुल) क्रियाओं में घटनाएँ परस्पर विपरीत दिशाओं में घटित हो सकती हैं परन्तु ताप-गति-विज्ञान के द्वितीय नियम से नियंत्रित क्रियाओं तथा अपने आस-पास के वातावरण से असम्पर्क अवस्था

में स्थित वस्तुओं की एन्ट्रापी वृद्धि में घटनाएँ केवल एक ही दिशा में घटित होती हैं। ठीक वैसे ही जैसे मानव मस्तिष्क, समय-प्रवाह की कल्पना केवल एक ही दिशा में कर सकता है। समय कभी पीछे नहीं लौट सकता।

जिस प्रकार त्रिधा विस्तृत आकाश में स्वतंत्र रूप से यात्रा करती हुई वस्तुओं का मार्ग सीधी रेखा में होता है उसी प्रकार चतुर्धा विस्तृत, स्थान-काल निर्मित आकाश में भी प्रत्येक गतिशील वस्तु का अपना स्वाभाविक मार्ग होता है। एक विशेष दिशा में फेंका गया पत्थर सीधी रेखा में नहीं जाता बल्कि एक वक्र पथ का अनुसरण करता हुआ पृथ्वी पर गिर जाता है। ग्रह भी सीधी रेखाओं में न चलकर वक्र पथों का अनुसरण करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पृथ्वी या सूर्य जैसी भारी वस्तुओं के सन्निकट चलती हुई वस्तुओं का मार्ग सीधा नहीं बल्कि वक्र होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि स्थान-काल-निर्मित आकाश में ही एक प्रकार की वक्रता है।

अपेक्षावाद सिद्धान्त तथा न्यूटन के सिद्धान्त में साधारण क्षेत्रों में कोई विशेष विरोध नहीं है। परन्तु एक दो महत्वपूर्ण क्षेत्रों में दोनों सिद्धान्तों में स्पष्ट अन्तर है। उदाहरणार्थ यून्टन के सिद्धान्त के आधार पर एक प्रकाश किरण का स्थानान्तरण सूर्य द्वारा जितना होना चाहिए, अपेक्षावाद के अनुसार उसका स्थानान्तरण उससे दो गुना होना चाहिये। १९१९ में सूर्य ग्रहण के समय सर आर्थर एडिंग्टन ने गाइना की खाड़ी में, सूर्यमण्डल के पास स्थित एक नक्षत्र का फ़ोटो लिया। इस प्रयोग ने सिद्ध कर दिया कि प्रकाश का सूर्य द्वारा स्थानान्तरण अपेक्षावाद के अनुसार होता है, न्यूटन के सिद्धान्त के अनुसार नहीं। यही नहीं, प्रत्येक सौ वर्ष में पारद ग्रह की कक्षा ४२″ विचलित हो जाती है। न्यूटन का सिद्धान्त इस विचलन का कारण बतलाने में असमर्थ है। परन्तु आइन्स्टीन न केवल इस स्थानान्तरण का कारण बताने में समर्थ हुआ बल्कि लगभग उसकी ठीक मात्रा ४३″ मालूम करने में भी सफल

हुआ । बहुत-से भौतिक अचलाँकों के सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक परिमाणों की तुलना कर एडिंग्टन गुरुत्वाकर्षण का सम्बन्ध विद्युत् तथा क्वैन्टम सिद्धान्त के साथ स्थापित करने में समर्थ हुआ । इस क्षेत्र में उसे आशातीत सफलता हुई । ऐसा प्रतीत होता है कि निकट भविष्य में ही इन विभिन्न आधुनिक धारणाओं तथा सिद्धान्तों का समन्वय एक नवीन सिद्धान्त के अन्तर्गत करना कठिन नहीं होगा ।

ग्यारहवां अध्याय

नक्षत्र-जगत्

सूर्य-परिवार (सोलर सिस्टम)—न्यूटन द्वारा विकसित आकाश-विद्या प्रधानतया सूर्य परिवार से सम्बन्धित थी। सूर्य-परिवार यद्यपि पृथ्वी पर विचरण करने वाले हम क्षुद्र प्राणियों को बहुत विस्तृत तथा विशाल प्रतीत होता है, परन्तु नक्षत्र-जगत् की तुलना में वह बहुत तुच्छ है। केप्लर ने सूर्य-परिवार का चित्र उपस्थित किया था परन्तु उसका विस्तार मालूम करने में वह असमर्थ था। एक ग्रह से दूसरे ग्रह की दूरी तथा सूर्य से प्रत्येक ग्रह की दूरी मालूम करने के लिए यह आवश्यक था कि कम-से-कम सूर्य से किसी एक ग्रह की दूरी मालूम की जा सके। सूर्य से पृथ्वी की दूरी मालूम करना निम्नलिखित प्रयोग द्वारा सम्भव हो सका। पृथ्वी के दो विभिन्न स्थानों पर स्थित दो दर्शकों ने यह मालूम किया कि शुक्र ग्रह जब सूर्य और पृथ्वी के बीच से होकर गुज़रता है तो उसे सूर्य को पार करने में कितना समय लगता है। दोनों स्थानों के अंतर और दोनों दर्शकों द्वारा मालूम किये गये समयों का उपयोग कर गणित द्वारा यह मालूम किया जा सका कि सूर्य से पृथ्वी की दूरी ९·३ करोड़ मील है। सूर्य-परिवार में सूर्य से सबसे अधिक दूरी पर स्थित प्लूटो नामक ग्रह जिसको १९३० में टाम्बाऊ ने मालूम किया, सूर्य से ७३५ करोड़ मील दूर है और वह २४८ वर्ष में सूर्य की परिक्रमा करता है। इस प्रकार सूर्य-परिवार का व्यास २×७३५ = १४७० करोड़ मील हुआ।

अन्य लोकों में जीवन का अस्तित्व है या नहीं, इस सम्बन्ध में प्रायः परस्पर विरोधी विचार प्रकट किये जाते हैं। इस समस्या का हल

प्राप्त करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि सूर्य-परिवार के अन्य ग्रहों की प्राकृतिक दशायें कैसी हैं। किसी ग्रह की प्राकृतिक दशा का सबसे महत्वपूर्ण अंग उसका वायुमंडल है जिससे वह ग्रह आवृत होता है। किसी ग्रह की पदार्थ-मात्रा और विस्तार के आधार पर इस बात की गणना की जा सकती है कि उसको आवृत करने वाली गैस के अणुओं का वेग क्या है। यह वेग यदि एक निश्चित परिमाण से जिसे 'पलायन वेग' कहते हैं, अधिक हुआ तो उस ग्रह का गुरुत्वाकर्षण उन अणुओं का नियंत्रण करने में असमर्थ होगा और अणु निकल भागेंगे। ऐसी अवस्था में उस ग्रह के चारों ओर वायुमंडल का सर्वथा अभाव होगा। चन्द्रमा अपना सारा वायुमंडल खो चुका है। मंगल और शुक्र के वायुमंडल पृथ्वी के वायुमंडल इतने घने हैं। बृहस्पति, शनि, यूरैनस तथा नेप्च्यून (वरुण) जो बड़े ग्रह हैं उनके वायुमंडल पृथ्वी के वायुमंडल से अधिक घने हैं। शुक्र ग्रह के वायुमंडल में कार्बन डायआक्साइड गैस की प्रचुरता है परन्तु आक्सीजन का सर्वथा अभाव है। इस ग्रह पर पेड़ पौधों के होने के लक्षण नहीं प्रतीत होते और वहाँ जीवधारियों के प्रकट होने की सम्भावना अभी नहीं है। मंगल ग्रह पर जीवन के अनुकूल परिस्थिति का अंत हो गया है या अंत होने ही वाला है। वे ग्रह जो सूर्य से पृथ्वी की अपेक्षा बहुत दूर हैं, इतने ठंडे हैं कि उन पर जीवधारियों का प्रादुर्भाव और विकास असम्भव है।

नक्षत्र और नेबुला—सूर्य परिवार के बाहर बहुत दूर तक रिक्त स्थान है। कुछ दूर आगे बढ़ने पर वे नक्षत्र मिलते हैं जिनके बारे में यह कहा जा सकता है कि वे अन्य नक्षत्रों की अपेक्षा हमसे निकट हैं। फिर भी इस निकट कहे जाने वाले नक्षत्रों में से सबसे निकट नक्षत्र की दूरी हमसे चौबीस सौ अरब मील है। यह नक्षत्र एक धीमे विन्दु की तरह दिखाई देता है। १८३२ के आस-पास पृथ्वी से इस नक्षत्र की दूरी मालूम की जा सकी। एक विशेष समय पर आकाश में इसका स्थान मालूम किया गया। छः मास बाद पृथ्वी जब अपने कक्ष के एक



प्लेट १ एक चक्राकार नेबुला

सिरे से दूसरे विपरीत सिरे पर आ गई तब फिर इस नक्षत्र का स्थान आकाश में मालूम किया गया। इस प्रयोग द्वारा यह मालूम करना सम्भव हो सका कि इस समय के भीतर यह नक्षत्र अपने स्थान से कितनी दूर विचलित हुआ है। इस ज्ञान के आधार पर गणित द्वारा इस नक्षत्र की पृथ्वी से दूरी मालूम की जा सकी।

बिना किसी यंत्र की सहायता के हम कुछ सहस्र नक्षत्रों को देख सकते हैं। इनमें से कुछ अधिक प्रकाशित प्रतीत होते हैं और कुछ कम। यदि एक नक्षत्र दूसरे से अधिक चमकदार प्रतीत होता है तो यह आवश्यक नहीं कि पहला नक्षत्र वास्तव में दूसरे नक्षत्र से अधिक प्रकाशयुक्त है। बहुत सम्भव है पहला नक्षत्र वस्तुतः दूसरे नक्षत्र से कम प्रकाशयुक्त हो परन्तु वह दूसरे नक्षत्र की अपेक्षा हमसे निकट होने के कारण अधिक प्रकाशयुक्त प्रतीत होता हो। इसलिये किसी नक्षत्र की वास्तविक चमक मालूम करने के लिये उसकी दूरी का ज्ञान भी आवश्यक है।

अमेरिका के विल्सन पर्वत पर स्थापित विशाल दूरबीन की सहायता से करीब १० करोड़ नक्षत्रों को देखा जा सकता है। परन्तु ऐसा विश्वास किया जाता है कि कई करोड़ नक्षत्र फिर भी शेष रह जाते हैं जिन्हें इस दूरबीन की सहायता से भी देखना सम्भव नहीं है। कुछ ऐसे नक्षत्र हैं जिन्हें यदि हम केवल अपनी आंख से देखें तो वे 'एक' नक्षत्र जैसे प्रतीत होते हैं परन्तु यदि हम उन्हें दूरबीन की सहायता से देखें तो मालूम होगा कि वास्तव में उनमें से प्रत्येक दो-दो नक्षत्रों का जोड़ा है। इन द्वैत-नक्षत्रों का पता सर्व प्रथम हर्स्चेल ने लगाया। कुछ जोड़ों में दोनों नक्षत्र इतने पास-पास होते हैं कि दूरबीन की सहायता से भी वे अलग-अलग नहीं दिखाई देते। परन्तु वर्णपट (स्पेक्ट्रम) की सहायता से इनकी सत्ता अलग-अलग मालूम की जा सकती है। यही नहीं, इन दोनों नक्षत्रों में से प्रत्येक का वज़न और उसके वृत्त का व्यास भी मालूम किया जा सकता है।

'द्वैत-नक्षत्रों' में से एक यदि प्रकाशयुक्त हो और दूसरा

अप्रकाशित, और अप्रकाशित नक्षत्र यदि अपने भ्रमण काल में पृथ्वी और प्रकाशित नक्षत्र के बीच आ जाय तो प्रकाशयुक्त नक्षत्र अदृश्य हो जायगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'द्वैत-नक्षत्रों' के प्रकाश में नियमित रूप से परिवर्तन होते रहने की सम्भावना है। यह परिवर्तन एक प्रकार के 'ग्रहण' के कारण सम्भव है। परन्तु कुछ ऐसे नक्षत्र भी हैं जिनके प्रकाश में समयानुसार परिवर्तन होता रहता है फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि यह परिवर्तन उपर्युक्त प्रकार की ग्रहण-क्रिया का परिणाम है। इन दूसरे प्रकार के परिवर्तनशील नक्षत्रों के उदाहरण 'सिफियड' नक्षत्र हैं। इनकी वास्तविक प्रकाश-शक्तियां और इनके परिवर्तन समयों में ऐसा नियमित सम्बन्ध है कि हम इनके जैसे अन्य परिवर्तन शील नक्षत्रों के परिवर्तन समयों को मालूम करने के पश्चात् उनकी वास्तविक प्रकाश-शक्तियां मालूम कर सकते हैं और इन वास्तविक प्रकाश शक्तियों के आधार पर उनकी पृथ्वी से वास्तविक दूरियां भी मालूम कर सकते हैं। यह प्रणाली विशेषकर उन नक्षत्रों की दूरियां मालूम करने में प्रयुक्त की जाती है जो हमसे इतने दूर हैं कि छ मास बाद भी उनकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता।

आकाश के उस भाग में जिसे हम आकाश-गंगा कहते हैं, नक्षत्रों की संख्या बहुत अधिक है। सूर्य परिवार इसी भाग में है परन्तु इसके केन्द्र में नहीं है। सूर्य जैसे करोड़ों नक्षत्रों से इस भाग की रचना हुई है। इसका आकार गेंद की तरह पूर्ण गोलाकार नहीं है बल्कि अण्डाकार है। आकाश-गंगा का विस्तार इतना अधिक है कि उसके सबसे लम्बे व्यास को पार करने में १८६००० मील प्रति सेकण्ड की रफ्तार से प्रकाश को ३००००० वर्ष लगेंगे। इसमें नक्षत्रों की दो धारायें विपरीत दिशाओं में चलती हुई प्रतीत होती हैं जैसे घूमती हुई चर्खी से दो अग्नि शिखाएँ विपरीत दिशाओं की ओर निकल रही हों। आकाश-गंगा स्वयं भी अपने भीतर स्थित एक केन्द्र के चारों ओर घूमती रहती है और आकाश में एक विशेष दिशा की ओर वेग से दौड़ती रहती है। आकाश में पाये जाने

वाले नक्षत्रों के वज़न लगभग सूर्य के आधे से लेकर उससे तीन गुने तक हैं।

आकाश-गंगा का इतना बड़ा विस्तार है फिर भी यह आकाश-समुद्र में एक द्वीप मात्र है। ऐसे ही लगभग बीस लाख द्वीप और, दूरबीन की सहायता से देखे जा सकते हैं। परन्तु ये द्वीप, आकाश-गंगा की तरह नहीं दिखाई देते। ये बहुत कुछ धुँधले बादलों जैसे लगते हैं और इन्हें हम 'नेबुला' कहते हैं। शायद करोड़ों नेबुला ऐसे होंगे जिन्हें हम अभी तक नहीं देख सके हैं क्योंकि वे हमसे बहुत दूर हैं। जिस प्रकार हमारा द्वीप, आकाश-गंगा, नाचते हुए लट्टू की तरह आकाश में एक विशेष दिशा की ओर लगभग २०० मील प्रति सेकण्ड की रफ्तार से दौड़ रहा है उसी तरह प्रत्येक द्वीप या नेबुला भी लगभग एक हज़ार मील प्रति सेकण्ड की रफ्तार से आकाश में भागता हुआ प्रतीत होता है। ऐसा मालूम होता है कि ब्रह्माण्ड स्वयं बाहर की ओर भीषण गति से फैल रहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि ब्रह्माण्ड का इस समय जितना विस्तार है उससे अधिक विस्तार भविष्य में हो जायगा। गणितज्ञों ने हिसाब लगाया है कि ब्रह्माण्ड का व्यास प्रति १,४०,०८,००,००० वर्ष बाद दूना हो जाता है।

नक्षत्रों की बनावट—वर्णपट के आधार पर नक्षत्रों को विभिन्न समूहों में विभाजित करने का कार्य १८६७ के आस-पास सेची द्वारा रोम में आरम्भ किया गया था। नक्षत्रों को अध्ययन करने की इस शैली में तब से लेकर आजतक बहुत सुधार हुआ है और इस सम्बन्ध में हमारा ज्ञान काफी बढ़ा है। इस प्रकार के अध्ययन के फलस्वरूप विभिन्न नक्षत्रों की बाहरी सतहों का तापक्रम मालूम करना भी सम्भव हो सका है। नक्षत्रों की बाहरी सतहों का तापक्रम १,६२०° डिग्री से लेकर २३,०००° डिग्री तक होता है।

यदि किसी नक्षत्र का विस्तार और घनत्व हमें मालूम हो और साथ ही यदि हम यह भी मान लें कि नक्षत्र वाष्पीय अवस्था में है, तो यह मालूम किया जा सकता है कि ऊपरी सतह से केन्द्र की ओर नक्षत्र के

भीतर दबाव किस रफ्तार से बढ़ता है। एडिंग्टन ने इसे मालूम भी किया। नक्षत्र के भीतर, सतह के नीचे किसी गहराई पर ऊपर से पड़ने वाले इस भारी दबाव को सम्भालने के लिए नक्षत्र के भीतरी भाग का तापक्रम करोड़ों डिग्री होना आवश्यक है। सूर्य के भीतरी भाग का तापक्रम लगभग दो करोड़ डिग्री है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी नक्षत्र के भीतरी तापक्रम और बाहरी तापक्रम में कितना अंतर है।

नक्षत्रों के भीतरी भाग में इतना उच्च तापक्रम होने का परिणाम यह होगा कि भीतर से बाहर की ओर बहुत अधिक शक्तिशाली किरणें विकीरित होंगी और ये किरणें नक्षत्रों के भीतरी परमाणुओं के बाह्य इलेक्ट्रानों को अलग कर देंगी। यह बात साधारण नक्षत्रों के सम्बन्ध में भी सत्य है। परन्तु अधिक घनत्व वाले नक्षत्रों के भीतरी परमाणुओं के केवल बाह्यतम इलेक्ट्रान ही नहीं बल्कि सब इलेक्ट्रान अलग हो जाते हैं और ऐसे नक्षत्रों के परमाणु केवल 'केन्द्रक' या न्यूक्लियस के रूप में वर्तमान रहते हैं।

नक्षत्रों का विकास—वास्तविक प्रकाश शक्ति के अनुसार हर प्रकार के नक्षत्र पाये जाते हैं। कुछ नक्षत्र बहुत अधिक प्रकाशमान् होते हैं और कुछ बहुत ही कम प्रकाश-युक्त होते हैं। मध्यम श्रेणी के नक्षत्रों की संख्या इन दोनों प्रकार के नक्षत्रों की तुलना में कम है। अत्यन्त प्रकाशमान् नक्षत्रों को 'दैत्य' और मंद नक्षत्रों को 'बौना' कहा जाता है। आरम्भ में ऐसा सोचा जाता था कि प्रत्येक नक्षत्र का विकास एक नियमित रूप से हुआ है। अपने जीवन काल के प्रारम्भ में प्रत्येक नक्षत्र बहुत विशालकाय और विरल तथा ढीले गठन का होता है। 'विकीरण-क्रिया' तथा अपने स्वयं के गुरुत्वाकर्षण के कारण वह सिकुड़ने लगता है। इस क्रिया में उसका तापक्रम बढ़ता रहता है तथा उसका प्रकाश तीव्र होता रहता है। कुछ काल के बाद वह उच्चतम प्रकाश अवस्था में आ जाता है। आज जो नक्षत्र दैत्य रूप में दिखाई देते हैं वे इस अवस्था में करोड़ों वर्ष के पश्चात् पहुँचे हैं। दैत्यावस्था के बाद वे नक्षत्र फिर

ठंडा होने लगते हैं तथा उनका आकार भी छोटा होने लगता है। अन्तोगत्वा वे बौनावस्था में आ जाते हैं। जो नक्षत्र आज बौनावस्था में पाये जाते हैं वे आज से अरबों वर्ष पूर्व दैत्यावस्था में रहे होंगे। आज के दैत्य नक्षत्र भविष्य के बौने नक्षत्र हैं। परन्तु नये तथ्यों और नई धारणाओं के प्रकाश में नक्षत्रों के विकास सम्बन्धी उपर्युक्त सिद्धान्त में संशोधन और परिवर्तन करना आवश्यक हो गया।

आरम्भ में नक्षत्रों की सम्भावित आयु पांच सहस्र अर्ब से लेकर दस सहस्र अर्ब तक समझी जाती थी। परन्तु आगे हम कुछ ऐसे कारण उपस्थित करेंगे जिनसे हमें नक्षत्रों की आयु केवल दस अर्ब वर्ष के लग-भग माननी पड़ी। प्रज्वलित अग्नि में से निकाल कर यदि एक रक्तवर्ण लोहे का गोला बाहर रख दिया जाय तो वह प्रकाश विकीरित कर कुछ देर बाद ठंडा और प्रकाश-हीन हो जायगा। परन्तु ये नक्षत्र इतने अधिक काल से निरन्तर आकाश में प्रकाश विकीरण करते रहे हैं फिर भी ये प्रकाश-हीन नहीं हो सके। अवश्य ही किसी क्रिया द्वारा इन्हें निरन्तर प्रकाश-शक्ति मिलती रही होगी। ऊपर हम बता चुके हैं कि गुरुत्वा-कर्षण और विकीरण क्रिया के द्वारा इन्हें निरन्तर ताप शक्ति मिलती रही है। परन्तु केवल इन्हीं क्रियाओं द्वारा प्राप्त तापशक्ति इन्हें इतने दिन तक प्रकाशित नहीं रख सकती थी। आइन्स्टीन के सापेक्षवाद सिद्धान्त ने इस गुत्थी को कुछ अंश तक सुलझा दिया। इस सिद्धान्त के अनुसार कुछ परिस्थितियों में पदार्थ स्वयं प्रकाश-शक्ति या ताप-शक्ति में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार नक्षत्र अपनी पदार्थ-मात्रा का कुछ अंश निरन्तर शक्ति में परिवर्तित करते रहते हैं। यद्यपि इस क्रिया के कारण उनका भार कम होता रहता है परन्तु वे निरन्तर प्रका-शित और जीवित रहने में समर्थ होते हैं। सूर्य प्रतिदिन ३६००० करोड़ टन पदार्थ की मात्रा शक्ति में परिवर्तित करता रहता है। अपने जीवन के आरम्भ काल में जब वह और विशालकाय रहा होगा, प्रतिदिन वह और भी मात्रा प्रकाश में परिवर्तित करता रहा होगा। इस दृष्टिकोण

से जब हम सूर्य की आयु का अनुमान लगाते हैं तो उसकी आयु ८ सहस्र अर्ब वर्ष प्रतीत होती है। संयोगवश यह अनुमान उपर्युक्त प्रथम प्रकार के अनुमान से लगभग मेल खाता है यद्यपि प्रथम प्रकार का अनुमान दूसरे आधारों पर अवलम्बित है।

कान्ट और उसके पश्चात् लैप्लास ने सूर्य मण्डल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्न लिखित कल्पना की थी। सूर्य आरम्भ में एक विशालकाय 'नेबुला' रहा होगा। अपने गुरुत्वाकर्षण के कारण वह सिकुड़ता और लट्टू की तरह नाचता रहा होगा। कालान्तर में नेबुला के बाहरी भाग की एक पतली परत उसके मुख्य शरीर से अलग हो गई होगी। कुछ दिन पश्चात् यह अलग हुई परत सिकुड़ कर एक ग्रह के रूप में मुख्य शरीर के चारों ओर चक्कर लगाने लगी होगी। इसी प्रकार विभिन्न कालों में अन्य ग्रहों की उत्पत्ति हुई होगी। नेबुला का शेष भाग सूर्य के रूप में वर्तमान है।

उपर्युक्त सिद्धान्त को स्वीकार करने में एक कठिनाई है। लैप्लास ने सूर्य-मण्डल के उत्पादक नेबुला के जिस आकार की कल्पना की थी उतने आकारवाले नेबुला द्वारा फेंकी गई परतों का भार इतना कम होगा कि उसके द्वारा उत्पन्न गुरुत्वाकर्षण उस परत को सिकोड़ कर एक जगह केन्द्रित करने और उसे ग्रह का रूप देने में असमर्थ होगा। यही नहीं, इस गुरुत्वाकर्षण के अप्रभावकारी होने के कारण उस परत में पाये जाने वाले अणु, कुछ काल में आकाश में इधर-उधर फैल जायँगे और परत की सत्ता इस प्रकार विलीन हो जायगी। इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए सूर्य-मण्डल का निर्माण उपर्युक्त क्रिया द्वारा नहीं हो सकता।

परन्तु यदि नेबुला का भार और विस्तार अपेक्षाकृत अधिक हो तो उपर्युक्त क्रिया के चरितार्थ होने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। आकाश में पाये जानेवाले चक्राकार नेबुलों का विस्तार लैप्लास द्वारा कल्पित नेबुला से करोड़ों गुना अधिक होता है। लैप्लास द्वारा कल्पित

क्रिया यदि इन वृहद्काय नेबुलों में घटित हुई हो तो कोई आश्चर्य नहीं। इन नेबुलों द्वारा फेंकी गई बाहरी परतों के भार इतने अधिक होंगे कि उनके गुरुत्वाकर्षण परतों के सम्पूर्ण पदार्थ को एक जगह एकत्रित करने में पूर्णतया समर्थ होंगे।

जीन्स ने गणित द्वारा सिद्ध कर दिया है कि लट्टू की तरह चक्कर काटते हुये गैस के एक गोले का आकार एक उभरे हुये लेन्स [0] की तरह हो जायगा। इस गोले का पतला किनारा अस्थिर और चंचल हो जायगा और विपरीत दिशाओं की ओर निःसृत दो भुजाओं को जन्म देगा। इन भुजाओं के विभिन्न भागों में पदार्थ एकत्रित और केन्द्रित होगा। यही एकत्रित पदार्थ आकाश में दिखाई देने वाले नक्षत्र हैं। इस प्रकार नक्षत्रों का विकास गैसीय नेबुलों से होता है। आरम्भ में ये नेबुला गोलाकार होते हैं परन्तु समय के साथ जब इनके किनारों पर दो विपरीत दिशाओं में जाने वाली दो भुजायें निकल आती हैं और उन भुजाओं में नक्षत्रों की रचना हो जाती है तो ये नेबुला असंख्य नक्षत्रों से युक्त चक्राकार नेबुलों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे ही चक्राकार नेबुलों में से एक नेबुला हमारी (आकाश गंगा) भी है जिसमें हम स्वयं निवास करते हैं। ऐसे ही असंख्य नेबुला या 'ब्रह्माण्ड द्वीप' ब्रह्माण्ड में और पाये जाते हैं यद्यपि दूर होने के कारण वे आकाश गंगा की तरह स्पष्ट और विस्तृत रूप में न दिखाई देकर धुंधले बादलों जैसे दीख पड़ते हैं और वह भी दूरबीन की सहायता से। अपनी आँख से हम आकाश में जिन वस्तुओं को देख सकते हैं वे सब आकाश-गंगा में हैं।

जीन्स, मोल्टन और चेम्बरलेन ने सूर्य परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह विचार प्रकट किया है कि यदि चक्राकार नेबुला तीव्र गति से घूम रहा हो तो उसकी दो भुजाओं में से किसी एक में एक स्थान पर केन्द्रित पदार्थ के लगभग दो बराबर भागों में विघटित हो जाने की सम्भावना है। इस प्रकार उत्पन्न दोनों गैसीय नक्षत्र एक दूसरे के चारों

ओर चक्कर लगाते रहेंगे। यदि ये नक्षत्र एक दूसरे के आस-पास हुये तो वे एक दूसरे में ज्वार के समान तरंगें उठाने में समर्थ होंगे। यदि उनके बीच का अंतर संयोगवश एक विशेष परिमाण का हुआ तो इस प्रकार उठी तरंग एक लम्बी भुजा की तरह नक्षत्र से बाहर की ओर निःसृत हो जायगी। यह भुजा जगह-जगह पर टूट कर पृथ्वी जैसे ग्रहों को जन्म देने में समर्थ होगी। संक्षेप में सूर्य-परिवार की रचना कभी इसी प्रकार हुई होगी। परन्तु इस प्रकार की घटना ब्रह्माण्ड में कभी-ही-कभी घटित होती है। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि ब्रह्माण्ड में पाये जाने वाले करोड़ों ब्रह्माण्ड द्वीपों में दो-चार में ही सूर्य-परिवार जैसी कोई व्यवस्था होगी और कुछ का तो यहाँ तक विश्वास है कि ब्रह्माण्ड में केवल एक ही सूर्य परिवार है और वह हमारा सूर्य परिवार है।

चक्राकार नेबुलों के वर्णपटों में वर्ण रेखायें वर्णपट के रक्तिम अंश की ओर स्थानान्तरित होती हैं। डाप्लर के सिद्धान्तानुसार इससे यह सिद्ध होता है कि ये नेबुला पृथ्वी से दूर भाग रहे हैं। नेबुला की दूरी पृथ्वी से जितनी ही अधिक होती है वह उतनी ही तीव्र गति से भागता रहता है। इसका यह अर्थ हुआ कि प्रतिक्षण ब्रह्माण्ड का विस्तार बढ़ता रहता है।

द्वैत नक्षत्रों की रचना के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान हमें उनकी वर्ण रेखाओं से प्राप्त होता है। ये रेखायें, इन नक्षत्रों के भ्रमण काल में एक निश्चित स्थान के दोनों ओर स्थानान्तरित होती रहती हैं। परन्तु कभी-कभी कैल्शियम या सोडियम रेखायें इधर-उधर स्थानान्तरित न होकर एक स्थान पर स्थिर रहती हैं। इनमें यदि कभी अस्थिरता आती भी है तो उसका कारण स्वयं हमारे आकाश द्वीप, 'आकाश गंगा' की गति होती है। कैल्शियम और सोडियम रेखाओं की स्थिरता से यह निष्कर्ष निकलता है कि पूरे ब्रह्माण्ड में ये तत्त्व बिखरे पड़े हैं। सम्भवतः आकाश में कहीं-कहीं ये एक जगह एकत्र होकर बादलों के रूप में भी पाये जाते हैं। साधारणतया आकाश में इन तत्त्वों का घनत्व बहुत ही कम होता

है। लगभग एक घन सेंटीमीटर में इन तत्त्वों का केवल एक परमाणु होता है। इन तत्वों के अतिरिक्त आकाश में 'विश्व रश्मियाँ' (कास्मिक रेज़) भी पाई जाती हैं। ये रश्मियाँ या तो चक्राकार नेबुला से आती हैं या आकाश में व्याप्त उपर्युक्त तत्वों से।

पाठकों को स्मरण होगा कि आइन्स्टीन के गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी अपेक्षावाद सिद्धान्त के अनुसार पदार्थ और विद्युत्-चुम्बक प्रभावकी उपस्थिति से चतुर्धा विस्तृत स्थान-काल निर्मित ब्रह्माण्ड में एक प्रकार की वक्रता-सी आ जाती है। चूँकि ब्रह्माण्ड में नक्षत्रों, नेबुलों और उपर्युक्त प्रकार के बादलों के रूप में पदार्थ पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है इसलिये ब्रह्माण्ड में वक्रता की कल्पना स्वाभाविक ही है। यदि हम यह मान लें कि समय नियमित रूप से प्रवाहित होता रहता है तो आकाश को भी हमें वक्र मानना पड़ेगा और ब्रह्माण्ड को सीमित। एक स्थान से यदि प्रकाश चलना आरम्भ करे और एक विशेष दिशा की ओर बहुत दिन तक चलता रहे तो कुछ काल बाद वह उसी स्थान पर लौट आयेगा। आइन्स्टीन के अनुमान से ब्रह्माण्ड का व्यास सौ करोड़ प्रकाश-वर्ष के लगभग है।

नक्षत्र प्रतिक्षण प्रकाश तथा अन्य रूपों में शक्ति विकीरित करते रहते हैं। सूर्य भी जो असंख्य नक्षत्रों में से एक नक्षत्र है तथा जिसके ऊपर हमारा अस्तित्व निर्भर है, प्रतीक्षण असीम शक्ति विकीरित करता रहता है। प्रश्न उठता है इतनी विशाल शक्ति इन नक्षत्रों को व्यय करने के लिए कहाँ से प्राप्त होती है। इन नक्षत्रों के भीतरी भाग का तापक्रम करोड़ों डिग्री होता है और इतना अधिक तापक्रम, गुरुत्वाकर्षण द्वारा उत्पन्न सिकुड़न या पृथ्वी पर पाये जाने वाले मूलतत्वों की रश्मि विकीरण क्रिया से अस्तित्व में नहीं आ सकता। शायद नक्षत्रों में कुछ जटिल गठन वाले और अधिक क्रिया शील रश्मि विकीरक तत्त्व हैं जिनकी क्रिया शीलता से अधिक ताप उत्पन्न होता है परन्तु इस अपरि-

मित शक्ति की उत्पत्ति मुख्यतया पदार्थ के शक्ति में परिवर्तित होने की क्रिया पर निर्भर प्रतीत होती है।

पदार्थ और शक्ति के आइन्स्टीन द्वारा निर्धारित सम्बन्ध [श = म × स², श = शक्ति, म = पदार्थ मात्रा, स = प्रकाश का वेग] के अनुसार एक ग्रैम पदार्थ, ९ × १०²⁰ अर्ग शक्ति उत्पन्न कर सकता है। यदि हम यह कल्पना करें कि पदार्थ पूर्णतया नष्ट होकर शक्ति में परिवर्तित हो जाता है जैसे प्रोटान और इलेक्ट्रान के सम्मिलन क्रिया में, तो सूर्य की आयु १५ सहस्र करोड़ वर्ष माननी पड़ेगी। परन्तु इस कल्पना के लिए कोई स्थूल आधार नहीं है। इसलिए कुछ वैज्ञानिक एक दूसरे सिद्धान्त की शरण लेने के लिये विवश हुए।

कुछ मूलतत्वों पर द्रुतगामी कणों की बौछार कर उन्हें दूसरे मूलतत्वों में परिवर्तित किया जा सकता है। 'साइक्लोट्रान' नामी यंत्र से कणों को इच्छानुसार तीव्र-से-तीव्र गति प्रदान की जा सकती है। ऐस्टन के 'मात्रा मापक' यंत्र की सहायता से मालूम किया जा सकता है कि उपर्युक्त क्रिया में कितनी 'पदार्थ-मात्रा' नष्ट हुई है या कितनी नई मात्रा अस्तित्व में आई है। यदि हम आक्सीजन के परमाणु का वज़न १६ मानें तो, तो हाइड्रोजन परमाणु का वज़न १'००८१३ होगा। हाइड्रोजन के चार परमाणुओं के मिलने से हीलियम का एक परमाणु बनता है। हीलियम परमाणु का वज़न ४'००३८९ होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि हाइड्रोजन की (१'००८१३×४) = ४'०३२५२ मात्रा, हीलियम की ४'००३८९ मात्रा में परिवर्तित होती है और शेष (४'०३२५२—४'००३८९) = '०२८६३ मात्रा शक्ति में परिवर्तित हो जाती है। आइन्स्टीन के सिद्धान्त से यह पदार्थ मात्रा '०२८६३ × स² = '२५७६७ × १०²⁰ अर्ग शक्ति उत्पन्न करने में समर्थ होगी। यह शक्ति २००००० किलोवाट घंटा के बराबर है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हाइड्रोजन के एक तुच्छ अंश के ही शक्ति में परिवर्तित होने से पर्याप्त शक्ति की उत्पत्ति होती है। यदि सारा का सारा हाइड्रोजन शक्ति

में परिवर्तित होता तो और भी शक्ति प्राप्त होती। यदि सूर्य की सम्पूर्ण पदार्थ मात्रा का केवल दस प्रतिशत भाग भी हाइड्रोजन से हीलियम में परिवर्तित हो, तो इस क्रिया में इतनी शक्ति उत्पन्न होगी कि सूर्य सौ करोड़ वर्ष तक वर्तमान गति से प्रकाश और ताप विकीरित करते रहने में समर्थ हो सकेगा। इस शक्ति में गुरुत्वाकर्षण और रश्मि विकीरण क्रिया के कारण कुछ और भी वृद्धि होती रहेगी। इस उपयुक्त सिद्धान्त की यह विशेषता है कि यह नक्षत्रों और सूर्य को स्थायित्व प्रदान करता है।

ब्रह्माण्ड का आरम्भ और अन्त—केल्विन का 'शक्ति-क्षय' का सिद्धान्त जो क्लासियस के 'अधिकतम ऐन्ट्रापी' सिद्धान्त की तरह, अपने समीपवर्ती वातावरण से पूर्णतया निःसम्पर्क अवस्था में स्थित वस्तुओं से सम्बन्धित समस्याओं को हल करने में सक्षम सिद्ध हो चुका था, पूरे ब्रह्माण्ड से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने के लिए भी प्रयुक्त किया गया। यह प्रयत्न कहाँ तक उचित और युक्ति संगत था, यह एक दूसरा प्रश्न है। परन्तु यदि उपयुक्त सिद्धान्त की सत्यता को हम इतने विशाल क्षेत्र में भी स्वीकार कर लें और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को निःसम्पर्क अवस्था में मान लें तो हमें विवश होकर इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि जैसे जैसे समय बीतता जायगा वैसे-वैसे विभिन्न वस्तुओं के तापक्रमों का अन्तर भी घटता जायगा। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि उपयोगी कार्य के लिए शक्ति उत्तरोत्तर कम उपलब्ध होगी। अन्ततोगत्वा आज अनेक रूपों में पाई जाने वाली ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण शक्ति, कालान्तर में केवल ताप शक्ति में परिवर्तित हो जायगी तथा प्रत्येक वस्तु का तापक्रम समान हो जायगा। ऐसी अवस्था में कोई भी उपयोगी कार्य सम्पादित न हो सकेगा। ब्रह्माण्ड एक प्रकार से 'मृत-अवस्था' में परिवर्तित हो जायगा।

भौतिक विज्ञान और आकाश शास्त्र में इधर हाल में जो प्रगति हुई है उसे ध्यान में रखते हुए इस समस्या पर नये दृष्टिकोण से विचार

करने की आवश्यकता अनुभव की गई है। नक्षत्रों से सम्बन्धित शक्ति की मात्रा कितनी भी अधिक हो, परन्तु जब तक वह सीमित है, हमें न केवल यह स्वीकार करना होगा कि ब्रह्माण्ड का कभी न कभी अंत अवश्य होगा, बल्कि यह भी मानना पड़ेगा कि ब्रह्माण्ड का किसी 'समय-विशेष' पर आरम्भ भी हुआ था। अर्थात् हम ब्रह्माण्ड को अनादि और अनन्त नहीं कह सकते। जीन्स के अनुसार 'प्रत्येक दृष्टिकोण से किया गया विचार दृढ़ता के साथ इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि ब्रह्माण्ड-रचना की घटना एक विशेष समय पर घटित हुई। इस समय का निर्धारण असम्भव नहीं है'। कृत्रिम रश्मि विकीरण सम्बन्धी तथ्य तथा नक्षत्रों और सूर्य द्वारा विकीरित शक्ति की उत्पत्ति के रहस्य के स्पष्टीकरण की आवश्यकता हमें यह विश्वास करने के लिए विवश करती है कि पदार्थ निरन्तर शक्ति में परिवर्तित हो रहा है। यदि यह क्रिया अंत तक सम्पादित होती रही तो जीन्स के अनुसार 'न तो सूर्य का प्रकाश रह जायगा न नक्षत्रों की चमक रह जायगी; आकाश समान रूप से केवल एक धीमे प्रकाश से व्याप्त हो जायगा'। इस तरह इस सिद्धान्त के अनुसार भी हम उसी नतीजे पर पहुँचते हैं जिस पर 'शक्ति-क्षय' सिद्धान्त द्वारा हम स्वतंत्र रूप से पहले ही पहुँच चुके थे कि अंत में कोई उपयोगी कार्य न हो सकेगा और ब्रह्माण्ड एक प्रकार से मृत-अवस्था में हो जायगा।

कुछ लोगों को भौतिक ब्रह्माण्ड के अंत या मृत्यु की उपर्युक्त धारणा असह्य प्रतीत होती है। ऐसे लोगों को ढाढ़स बंधाने के लिये ऐसे प्राकृतिक साधनों की तलाश करने का प्रयत्न किया गया है जिनके द्वारा 'शक्ति-क्षय' की क्रिया का और पदार्थ के शक्ति में परिवर्तित होने की क्रिया का विपरीत दिशा में घटित होना भी सम्भव हो सके। सम्भव है कोई प्राकृतिक क्रिया ऐसी हो जो मैक्स्वेल के 'दैत्य' का पार्ट अदा कर सके और द्रुतगामी अणुओं को अलग करने में समर्थ हो। पुनः, एक और कहानी है जो असम्भव प्रतीत होती है फिर भी उसकी कल्पना

करने में मस्तिष्क समर्थ है। यदि हम असीमित काल की कल्पना करें तो हर प्रकार की असम्भव प्रतीत होने वाली घटनायें सम्भव हो सकती हैं। संयोगवश, अणु इस प्रकार एक स्थान पर एकत्रित हो सकते हैं कि वे 'शक्तिक्षय' सिद्धान्त के प्रभाव को नष्ट कर दें। संयोगवश, शक्ति आकाश के किसी एक स्थान पर संकलित हो सकती है तथा पदार्थ, उदाहरणार्थ असंख्य चक्राकार नेबुलों में से कोई एक जमकर, अपनी जीवन यात्रा नये सिरे से आरम्भ कर सकता है। उपयु क्त प्रकार की घटनाओं के घटने की सम्भावना बहुत ही कम है। फिर भी असीमित काल में कुछ भी हो सकता है। ऐसी घटनाओं की प्रतीक्षा अनन्तकाल तक की जा सकती है। तो क्या इस आधार पर यह कल्पना करना उचित है कि ब्रह्माण्ड-रचना की परम्परा बिना किसी 'काल-व्यवधान' के अनादि काल से चली आ रही है और हमारा वर्तमान ब्रह्माण्ड जब तथाकथित 'मृत अवस्था' में पहुँच जायगा तो फिर एक नये ब्रह्माण्ड की रचना आरम्भ हो जायगी ? शायद नहीं; शायद आज और अनन्तकाल के बीच कोई अपेक्षाकृत कम असम्भावित घटना घटित हो।

इस बात की ओर संकेत किया गया है कि ताप-गति-विज्ञान सम्बन्धी द्वितीय नियम, केवल फैलते हुए ब्रह्माण्ड की समस्याओं को हल करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है और टाल्मन ने सिकुड़ते हुए ब्रह्माण्ड की कल्पना कर 'आपेक्षिक ताप गति विज्ञान' का एक ऐसा सिद्धान्त प्रतिपादित किया है जिसके अनुसार द्वितीय नियम की क्रिया विपरीत दिशा में सम्पादित होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड किसी काल में फैलता रहता है और कभी सिकुड़ता रहता है। वर्तमान समय में ब्रह्माण्ड फैल रहा है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड के आदि और अंत का प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु ये सब सिद्धान्त केवल कल्पना पर आधारित हैं। इनका कोई ठोस आधार नहीं है। ब्रह्माण्ड की आदि और अंत सम्बन्धी सब कल्पनाओं में यह कल्पना कि 'शक्तिक्षय' सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड कभी मृत या अकर्मण्य

अवस्था में परिवर्तित हो जायगा तथा ब्रह्माण्ड में पाया जाने वाला सम्पूर्ण पदार्थ शक्ति में परिवर्तित होकर आकाश को समान रूप से एक ठंडे और धीमे प्रकाश से व्याप्त कर देगा, सत्य के अधिक समीप प्रतीत होती है। सम्भव है, इसके पहले कि उपयुक्त प्रकार का अंत आये, ब्रह्माण्ड में असम्भावित परिवर्तन और अकल्पित घटनायें घटित हों, परन्तु उनके सम्बन्ध में कुछ कहने में विज्ञान सम्प्रति असमर्थ है।

निष्कर्ष—अब अन्त में हमें यह विचार करना है कि विज्ञान के इतिहास के अध्ययन से हमें क्या शिक्षाएँ मिली हैं और किस परिणाम पर हम पहुँचे हैं। आज से पचास वर्ष पूर्व वैज्ञानिकों के भीतर जैसा निश्चयात्मक विश्वास था, शायद वैसा विश्वास आज के वैज्ञानिकों में नहीं है। उस समय ऐसा सोचा जाता था कि भौतिक विज्ञान प्रायः सभी मुख्य प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ सिद्ध हो चुका है। वैज्ञानिक सोचते थे कि अब उन्हें केवल विभिन्न परिमाणों की अपेक्षाकृत और अधिक निश्चित रूप से नाप तथा 'ईथर' का अधिक विश्वसनीय और बुद्धिगम्य वर्णन भर करना है। मैच और कार्ल पियर्सन का मत था कि विज्ञान केवल प्राकृतिक नियमों और घटनाओं की छाया मात्र दिखलाने में ही समर्थ है परन्तु अधिकांश वैज्ञानिकों का शायद बिना उचित कारण के ही यह विश्वास था कि विज्ञान वास्तविक सत्य का दर्शन कराने में पूर्णतया समर्थ है। उनके अनुसार, पदार्थ और शक्ति के रहस्य को भौतिक विज्ञान तथा जीवन विकास के रहस्य को 'प्राकृतिक वरण' उद्घाटित करने में समर्थ था। कुछ विचारक इससे भी आगे गए। वैज्ञानिक धारणाओं और सिद्धान्तों को दार्शनिक-क्षेत्र में प्रयुक्त कर तथा 'क्राफ्ट और स्टाफ' तथा 'डर्विनवाद' का गठबंधन कर उन्होंने कार्य कारण सम्बन्ध की अविचलता' सिद्धान्त एवं 'जड़वाद' का प्रतिपादन किया।

परन्तु आज हम जानते हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने भौतिक जगत् का जो रूप हमारे सामने उपस्थित किया था वह सत्य से बहुत दूर था। उस समय हमारा विश्वास था कि पदार्थों की रचना

परमाणुओं से हुई है और ये परमाणु अभेद्य तथा अविभाज्य हैं। परन्तु आज हम जानते हैं कि इन परमाणुओं की रचना प्रोटान, इलेक्ट्रान और न्यूट्रान से हुई है। इन कणों के अतिरिक्त परमाणु जगत् में पाज़ीट्रान, मेसान तथा न्यूट्रिनों तीन कण और भी निरन्तर क्रियाशील पाये गए हैं और सम्भव है भविष्य में इनके अतिरिक्त अन्य कणों से भी हमारा परिचय हो। पहले प्रकाश, ताप तथा अन्य सभी प्रकार के 'विकीरण' को या तो एक अर्धदृढ़ माध्यम में उत्थित यांत्रिक तरंग समूह या ईथर में उत्थित विद्युत् चुम्बकीय तरंग समूह मात्र समझा जाता था। परन्तु आज हम विकीरण की कण-समूह के रूप में कल्पना करने के अभ्यस्त हो गए हैं। परन्तु ये 'विकीरण-कण' जिन्हें 'क्वैन्टा' कहते हैं साधारण पदार्थीय कणों से सर्वथा भिन्न होते हैं। इनके सम्बन्ध में अधिक-से-अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि ये शक्ति और समय के गुणन-फल हैं। आज हम यह भी जानते हैं कि अपेक्षाकृत भारी परमाणु रश्मि-विकीरक या रेडियोधर्मी होते हैं तथा उनके अभ्यन्तर में निरन्तर विस्फोट हुआ करता है। कुछ हल्के परमाणुओं पर 'अल्फा' कणों की बौछार कर, उन्हें कृत्रिम रूप से रेडियोधर्मी बनाया जा सकता है। रश्मिविकी-रण क्रिया के परिणामस्वरूप एक मूलतत्त्व दूसरे मूलतत्त्व में परिवर्तित हो जाता है। पृथ्वी पर पाया जाने वाला प्रत्येक परमाणु खुले हुए गठन का होता है अर्थात् उसके शरीर का अधिकांश भाग रिक्त होता है और अपेक्षाकृत बहुत कम भाग उसकी रचना करने वाले कणों से अधिकृत होता है। परन्तु अधिक घनत्व वाले नक्षत्रों के परमाणुओं के बाहरी या यों कहिये सारे इलेक्ट्रान केन्द्रक से विलग होते हैं और केवल केन्द्रक ही परमाणुओं में पाये जाते हैं। ऐसे नक्षत्रों में केन्द्रक, दबाव के कारण इतने पास-पास होते हैं कि एक घन इंच पदार्थ की मात्रा कई टन तक होती है।

जब हम कहते हैं कि प्रत्येक पदार्थ की रचना प्रोटान, इलेक्ट्रान और न्यूट्रान से हुई है तो यह स्वाभाविक ही है कि हम इन कणों के बारे में

यह सोचें कि यद्यपि साधारण रूप में पाये जाने वाले सूक्ष्म कणों की अपेक्षा ये कण बहुत ही क्षुद्र आकार और न्यून पदार्थ मात्रा वाले होंगे, फिर भी अन्ततोगत्वा वे साधारण रूप में पाये जानेवाले स्थूल कणों की ही भांति एक निश्चित आकार, आयतन और पदार्थ मात्रा से युक्त होंगे; उनकी असीम क्षुद्रता के कारण भले ही हम उन्हें अपनी आँख या किसी यंत्र से न देख सकें। परन्तु पिछले कुछ वर्षों में ऐसे तथ्य ज्ञात हुए हैं कि हमारे उपर्युक्त विश्वास को एक गहरा धक्का लगा है। इन तथ्यों ने हमें विवश कर दिया है कि हम इन कणों को या तो तरंगों से आवृत और परिवेष्ठित समझें या अस्थूल तरंग समूह का स्थूल और मूर्त रूप समझें। जब हम इन कणों को तरंग समूह समझ कर उनका अध्ययन करने का प्रयत्न करते हैं तो हम पाते हैं कि एक ही समय हम इन कणों की गति और स्थान दोनों का मान ठीक-ठीक नहीं मालूम कर सकते। उन्नीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिकों का विश्वास था कि भौतिक विज्ञान विभिन्न परिमाणों और राशियों का मान निश्चित रूप से निर्धारित करने में समर्थ है। निश्चितता की यह धारणा उन प्रमाणों में से एक प्रमुख प्रमाण थी जिन पर 'कार्य कारण सम्बन्ध की अविचलता का दार्शनिक सिद्धान्त आधारित था। परमाणु के रचियता कणों की गति और स्थान निर्धारण की अनिश्चितता ने इस आधार को नष्ट कर दिया यद्यपि यह सत्य है कि 'अनिश्चितता सिद्धान्त' अपने प्रतिस्पर्धी सिद्धान्त 'मानव स्वातंत्र्य को स्थापित न कर सका।

ब्रह्माण्ड को जितना बड़ा हम पहले समझते थे वह उसके वास्तविक विस्तार की तुलना में नगण्य ही था। आकाश गंगा जैसे करोड़ों 'आकाश-द्वीप' ब्रह्माण्ड में पाये जाते हैं। कुछ द्वीप तो हमसे इतने दूर हैं कि प्रकाश को वहाँ से हमारे पास तक आने में करोड़ों वर्ष लग जाते हैं। कुछ चक्राकार नेबुलों में नक्षत्र-निर्माण की क्रिया अब भी जारी है।

इस प्रकार ब्रह्माण्ड न केवल पूर्व धारणा और विश्वास के विपरीत बहुत ही विशाल और विस्तृत है बल्कि रचना और गठन की दृष्टि

से बहुत ही जटिल और गूढ़ भी है। आज हम जानते हैं कि कुछ वर्ष पूर्व हमारी यह आशा कि ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान हम लगभग प्राप्त कर चुके हैं या निकट भविष्य में ही प्राप्त कर लेने वाले हैं, केवल हमारे महान् अज्ञान की द्योतक थी। जैसे-जैसे हमारा ज्ञान बढ़ता जाता है वैसे-वैसे अज्ञात सत्यों और रहस्यों की संख्या और मात्रा भी बढ़ती जाती है। यही नहीं, उन रहस्यों और सत्यों के हम जितना ही निकट पहुँचते जाते हैं, अन्तःदृष्टि द्वारा अनुभूत दृश्यों और मस्तिष्क-पट पर अंकित चित्रों का सरल और बुद्धि गम्य शब्दों में वर्णन करना उतना ही असम्भव और दुष्कर होता जाता है। इन चित्रों का वर्णन, अधिक से अधिक, गणित की भाषा द्वारा ही सम्भव प्रतीत होता है। विज्ञान वास्तव में प्रकृति की छाया मात्र उपस्थित करने में समर्थ है। उस छाया के पीछे स्थित 'वास्तविकता' का पता लगाना दर्शन का काम है। छाया के पीछे कोई वास्तविकता है भी कि नहीं, यह प्रश्न भी विवादास्पद ही है।

हीगल ने इस धारणा को पुनर्जीवित किया कि वास्तविकता का ज्ञान केवल तर्क द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। यह धारणा प्लैटो के समय से चली आ रही थी। इसके विपरीत फ्रैन्सिस बेकन ने प्रयोगात्मक प्रणाली की उपयोगिता और अनिवार्यता पर ज़ोर देते हुए यह विश्वास प्रकट किया कि केवल प्रयोगों की सहायता से प्रकृति के नियमों को निश्चिततापूर्वक मालूम किया जा सकता है। परन्तु वास्तव में वैज्ञानिक अविष्कार के लिए प्रयोगात्मक प्रणाली और तर्क दोनों की आवश्यकता है। सबसे प्रथम यह आवश्यक है कि उलझी हुई घटनाओं के जाल में उन मूल तन्तुओं को पहचाना जाय जिनसे वह जाल बुना गया है। अरस्तू की पदार्थ, गुण तथा स्वाभाविक स्थान आदि की मूल धारणायें गति विज्ञान की प्रगति के लिये निरर्थक सिद्ध हुईं क्योंकि ये धारणायें वस्तुस्थिति से बहुत भिन्न थीं। इनके सहारे चलकर वैज्ञानिक निराधार निष्कर्षों पर पहुँचे। वैज्ञानिक क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय प्रगति

तब तक सम्भव न हो सकी जब तक गैलिलियो और न्यूटन ने अरस्तू की भ्रमपूर्ण धारणाओं को तिलाञ्जलि देकर स्थान, काल और पदार्थ-मात्रा की स्थूल धारणाओं की कल्पना नहीं की। इन मूल धारणाओं के आधार पर वे गति और पदार्थ की प्रकृति समझने में समर्थ हुए। इन मूल धारणाओं का चुनाव स्वयं तर्क का एक रूप है और वैज्ञानिक-ज्ञान प्राप्ति के लिये एक महत्वपूर्ण साधन है। इन धारणाओं को हृदयंगम कर लेने के बाद प्रारम्भिक पर्यवेक्षण के आधार पर यह सोचने की आवश्यकता है कि इन धारणाओं में पारस्परिक सम्बन्ध क्या है या हो सकता है। गणित या किसी अन्य विधि से यह मालूम करना चाहिए कि इन सम्बन्धों का स्वाभाविक परिणाम क्या होगा अर्थात् इन सम्बन्धों के आधार पर क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है। इसके पश्चात् प्रयोगों के द्वारा यह देखना चाहिए कि इन परिणामों और निष्कर्षों की पुष्टि इन प्रयोगों द्वारा होती है कि नहीं। केवल कुछ तथ्यों पर आधारित कोई नियम अपनी सत्यता के सम्बन्ध में उतना विश्वास उत्पन्न नहीं कर सकता जितना विश्वास वह नियम उत्पन्न करने में समर्थ होता है जो न केवल कुछ तथ्यों और किंचित पर्यवेक्षण पर आधारित होता है, बल्कि किसी स्वीकृत सिद्धान्त से समर्थित तथा प्रयोगों द्वारा पोषित भी होता है। इतना होने पर भी किसी नियम के बारे में यह कहना कठिन है कि प्रत्येक परिस्थिति में वह लागू होगा। हाँ यह सत्य अवश्य है कि कुछ नियमों के सत्य होने की सम्भावना इतनी अधिक होती है कि उनके बारे में यह कहा जा सकता है कि वे बहुत कुछ सार्वदेशिक रूप में सत्य हैं। कुछ वर्ष पूर्व हम इसके लिये बड़ी-से-बड़ी शर्त बद सकते थे कि न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त तथा मूलतत्वों की अपरिवर्तन-शीलता का सिद्धान्त, दोनों नर्विवाद एवं निश्चित रूप से सत्य हैं। परन्तु आइन्स्टीन और रदरफोर्ड ने इन सिद्धान्तों को बहुत कुछ असत्य सिद्ध कर दिया है।

गणित के सहारे वैज्ञानिक-दर्शन-शास्त्र, बहुत आगे बढ़ सका है

सका है। लोबाचेवस्की ने यूक्लिड की रेखागणित से भिन्न एक दूसरी रेखागणित का आविष्कार किया। वीयर्स्ट्रास ने सिद्ध किया कि स्थान की अविरतता (कन्टीनिविटी) का अर्थ यह नहीं है कि किसी स्थान का विभाजन केवल असंख्य टुकड़ों में ही हो सकता है। कैन्टर ने स्थान की अविरतता और असीमितता के सम्बन्ध में एक ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसके द्वारा ज़ेनो की प्राचीन पहेलियों का समाधान होगया। फ्रेजी ने सिद्ध किया कि अंक-गणित तर्कशास्त्र का अनुसरण करती है। रसेल औरह्वाइटहेड ने अपनी पुस्तक 'गणित के सिद्धान्त' में मूल धारणाओं की ओर संकेत किया। नया अर्ध-यथार्थवाद जो उपर्युक्त तथ्यों और विचारों पर आधारित है, इस आशा को तिलाञ्जलि दे चुका है कि किसी सार्वभौमिक सिद्धान्त द्वारा अनुभवगम्य सम्पूर्ण घटनाओं का स्पष्टीकरण किया जा सकता है। सत्रहवीं शताब्दी में विज्ञान ने जिस समय अपने को निरे तर्कवाद के जाल से मुक्त किया था उस समय उसने भी उपर्युक्त प्रकार की आशा से सम्बन्ध-विच्छेद करना उचित समझा था। जिस प्रकार विज्ञान किसी सार्वभौमिक सिद्धान्त को मृग मरीचिका में न पड़कर घटनाओं का अलग-अलग स्वतंत्र रूप में अध्ययन करता है, उसी प्रकार का अध्ययन करने के लिए दर्शन भी विवश हुआ है। दर्शन को आज मैच के 'छायावाद' का अतिक्रमण कर यह स्वीकार करना पड़ा है कि विज्ञान किसी-न-किसी रूप में अपरिवर्तनशील वास्तविकता से भी सम्बन्धित है। फिर भी जैसा ऊपर कहा गया है वैज्ञानिक विवेचन के लिए यह आवश्यक है कि कुछ धारणाओं को मस्तिष्क में स्थान दिया जाय। वे सम्बन्ध जिन्हें हम प्राकृतिक नियम कहते हैं इन्हीं धारणाओं के सम्बन्ध को सूचित करते हैं, स्थूल वास्तविकताओं के सम्बन्ध को नहीं। इन धारणाओं के सम्बन्ध को वास्तविकताओं का सम्बन्ध समझ बैठना ह्वाइटहेड के शब्दों में 'नितान्त भ्रमपूर्ण' है। 'यांत्रिक निर्धारण' का सिद्धान्त, उसके मत से, केवल अस्थूल धारणाओं के क्षेत्र में ही

लागू किया जा सकता है। जगत् की स्थूल वास्तविकताओं के क्षेत्र में नहीं।

सत्रहवीं शताब्दी में वैज्ञानिक अध्ययन के लिए दो पद्धतियाँ प्रचलित थीं; एक अरस्तू की और दूसरी न्यूटन की। कुछ दिन पूर्व हमारे सामने भी दो पद्धतियों में से किसी एक को चुनने या दोनों को स्वीकार करने की समस्या उपस्थित हो गई थी। कुछ समस्याओं के समाधान के लिए न्यूटन का प्राचीन गति विज्ञान उपयोगी प्रतीत होता था परन्तु बहुतसी समस्याओं को सुलझाने में वह असमर्थ था। उनके समाधान के लिए अपेक्षावाद और 'क्वैन्टम' सिद्धान्त की आवश्यकता अनुभव की जाती थी। जैसा विलियम ब्रैग ने कहा था, हम सोमवार, बुधवार और शुक्रवार को न्यूटन के गति विज्ञान का और मंगलवार, बृहस्पतिवार तथा शनिवार को क्वैन्टम सिद्धान्त का स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग करते थे। परन्तु कुछ ही दिन पूर्व एडिन्टन ने एक नवीन समन्वयात्मक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसके आधार पर नवीन क्वैन्टम सिद्धान्त को सम्पूर्ण और निर्विवाद रूप से स्वीकार करने के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया है। न्यूटन का गति विज्ञान इस परिस्थिति में नवीन सिद्धान्त की साधारण व्यापकता का केवल एक विशेष रूप मात्र रह गया है।

पूर्वकालीन भौतिक विज्ञान का कार्य-कारण सम्बन्ध की नित्यता में दृढ़ विश्वास था। ग्रीक परमाणुवादियों के साथ इस विश्वास का जन्म दो सहस्र वर्ष से भी अधिक पहले ग्रीस में हुआ था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक 'चल सिद्धान्त' के आधार पर तथा बहुसंख्यक प्रणाली का प्रयोग कर अणुओं के सम्मिलित प्रभाव का निर्धारण करना सम्भव था। परन्तु जब सी० टी० आर० विल्सन और रदरफोर्ड ने प्रत्येक परमाणु का अलग-अलग अध्ययन करना आरम्भ किया तब यह स्पष्ट हो गया कि उनके सम्बन्ध में कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। यह जानने के लिए कि कौन रेडियोधर्मी परमाणु कुछ काल बाद विस्फोटित होगा

कोई साधन नहीं था। सम्भव है भविष्य में परमाणु गठन की बारीकियों को समझने में हमें और सफलता मिले और तब शायद परमाणु को नियमों की दृढ़-श्रृंखला में आबद्ध करने में हम सफल हों। परन्तु सम्प्रति इस सम्भावना के सत्य होने का कोई लक्षण प्रतीत नहीं होता। आज हम अधिक से अधिक केवल इतना कह सकते हैं कि किसी परमाणु के एक घंटा पश्चात् विस्फोटित होने की सम्भावना इतनी है। अर्थात् हम निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि एक घंटा बाद उसमें विस्फोट होगा कि नहीं। यदि किसी परमाणु के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करने में कभी आगे चलकर हम समर्थ भी हुए तब भी उस परमाणु में पाये जाने वाले इलेक्ट्रान की गति और स्थान का निर्धारण एक ही समय करने में हम असमर्थ ही रहेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति का मूल आधार निश्चितता पर नहीं बल्कि अनिश्चितता पर निर्भर है।

प्रश्न उठ सकता है कि यदि प्रकृति की शासन-व्यवस्था अनिश्चितता सिद्धान्त पर चलती है, तो विज्ञान उसमें बहुत अंश तक नियमितता तथा निश्चितता ढूँढ निकालने में कैसे समर्थ और सफल होता है। इसका उत्तर यह है कि विज्ञान जिन प्रणालियों और प्रयोगों को अपना साधन बनाता है, वे ही इसके लिए उत्तरदायी हैं। उदाहरण के लिए उज्वल प्रकाश वास्तव में अनियमित तरंग समूहों का संकलन मात्र है परन्तु जब हम उज्वल प्रकाश का पर्यवेक्षण प्रिज़्म या ग्रेटिंग की सहायता से करते हैं तो ये तरंगें नियमित रूप में व्यवस्थित दिखाई देती हैं। जब हम किसी परमाणु का निरीक्षण करते हैं तो हर हालत में हम कोई न कोई बाहरी उपकरण प्रयुक्त करते हैं। यह उप करण किसी न किसी रूप में परमाणु को प्रभावित करता है और उसमें परिवर्तन ला देता है और हम यही परिवर्तित परमाणु देख पाते हैं, वास्तविक परमाणु नहीं। रदरफोर्ड का विश्वास था कि उसने 'न्यूक्लियस' का आविष्कार किया परन्तु क्या यह सम्भव नहीं कि अपने विशेष प्रयत्नों और प्रणालियों द्वारा उसने पहले न्यूक्लियस का निर्माण किया और फिर अपने ही बनाये

हुए न्यूक्लियस का आविष्कार किया। ऐसे भ्रम की सम्भावना हमें सर्वदा दृष्टि में रखनी चाहिए। सबसे आधुनिक दृष्टि कोण के अनुसार ठोस पदार्थ की अपेक्षा उसका रूप अधिक वास्तविक है। क्वैन्टम सिद्धान्त में यह रूप 'तरंगों' का और अपेक्षावाद में 'वक्रता' का जामा पहन लेता है।

अभी तक हम विज्ञान को केवल सत्यान्वेषण का प्रयास मात्र समझ-कर उसकी विकास-क्रिया पर विचार करते रहे हैं। विज्ञान के व्यावहारिक पक्ष के सम्बन्ध में हमने कुछ नहीं कहा है। परन्तु 'फिशन' और शृङ्खला-बद्ध क्रिया के अविष्कार ने परमाणु शक्ति को उत्पन्न कर मानव को एक नयी परिस्थिति के सम्मुख उपस्थित कर दिया है।

यह सत्य है कि हम कुछ आविष्कारों और वैज्ञानिक सफलताओं के परिणामों के सम्बन्ध में शंकालु थे परन्तु कुछ आविष्कार ऐसे भी थे जिनकी उपयोगिता के सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं था। यही नहीं कुछ आविष्कारों के अच्छे और बुरे दोनों पहलू हम स्वीकार करते थे। सम्भव है इंजिन से कोई हानि भी होती हो परन्तु इसके द्वारा ऐसी बहुत-सी वस्तुओं का निर्माण भी होता है जो जीवन रक्षा और रोग निवारण के लिये अनिवार्य हैं। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि परमाणु बम अच्छा बुरा दोनों का ही विनाश कर देगा। इसने हमारी सम्पूर्ण सभ्यता और संस्कृति के सम्मुख जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित कर दिया है।

प्राचीन काल में जब कभी किसी नये अस्त्र का आविष्कार हुआ तो साथ ही युद्ध प्रणाली में भी परिवर्तन हो गया। ताम्र-युग के मानव पर प्रथम-प्रथम जब लौह युग के किसी मानव ने लौह अस्त्र का प्रयोग किया होगा तो निःसन्देह प्रथम व्यक्ति ने दूसरे को बर्बर और असभ्य समझा होगा और उसके अमानुषिक कृत्य पर घृणा प्रकट की होगी। बारूद पर प्रतिबंध लगाने का भी विचार कभी किया गया था। विषाक्त गैसों का प्रयोग भी निषिद्ध समझा जाता था और सर्व-प्रथम जर्मनी ने १९१६ में उनका प्रयोग किया। युद्ध के लिये उपयोगी किसी

भी नये अस्त्र को प्रयुक्त करने की उत्कट चाह पर सैनिक अधिक दिन तक विजय प्राप्त करने में समर्थ न हो सके। परन्तु आज तक जितने भी अस्त्र आविष्कृत हुए थे उनमें एक भी ऐसा नहीं था जिसके द्वारा एक ईर्षालु राष्ट्र, अपने किसी पड़ोसी राष्ट्र को इस हद तक बर्बाद कर दे कि वह फिर जीवित न हो सके। परन्तु परमाणु बम ऐसा करने में पूर्णतया समर्थ है।

सारे राष्ट्रों के वैज्ञानिक उन मूल सिद्धांतों को जानते हैं जिनपर परमाणु बम का निर्माण निर्भर है। सम्भव है आज अमेरिका के वैज्ञानिक अन्य देशों के वैज्ञानिकों की अपेक्षा इस दिशा में कुछ आगे हों। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि निकट भविष्य में ही दूसरे देशों में भी परमाणु बम निर्माण की क्रिया पूर्ण रूप से ज्ञात हो जायगी।

युद्ध की विनाश-क्षमता पर कोई प्रतिबंध लगाना असम्भव प्रतीत होता है। न यही सम्भव प्रतीत होता है कि युद्ध प्रणाली को नियंत्रित किया जाय। ऐसी स्थिति में बचाव का एक ही रास्ता है कि उच्च भावनाओं से अनुप्राणित देश सम्मिलित रूप से सर्वदा के लिये युद्ध निवारण का ही प्रयत्न करें। यही समस्या आज विश्व के राजनीतिज्ञों को चुनौती दे रही है। यदि परमाणु बम की विभीषिका उन्हें इसका समाधान मालूम करने के लिये प्रेरित और विवश कर सकी तो परमाणु बम भी अन्ततोगत्वा मानवता के लिये अभिशाप नहीं बल्कि वरदान ही सिद्ध होगा।

युग-प्रकाशन
९, फ़ैज़ बाज़ार, दिल्ली